वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का १०५ वाँ पुष्प

आर्यिका रत्नमती

लेखक

मोतीचन्द जैन शास्त्री, न्यायतीर्थ

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

हस्तिनापुर (मेरठ) उ०प्र०

प्रथम संस्करण आषाढ़ शुक्ला १४ वीर निर्वाण सं० २५१०

११०० वि० सं० २०४१ मूल्य ६.००

दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला मे दि० आर्ष मार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी,

संस्कृत, कन्नड, गुजराती, मराठी आदि भाषाओ के

न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल, खगोल,

व्याकरण, इतिहास आदि विषयो पर

लघु तथा वृहद् ग्रन्थों का मूल एवं

अनुवाद सहित प्रकाशन

होता है।

समय-समय पर धार्मिक, लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी

प्रकाशित होती रहती हैं।

ग्रन्थमाला संपादक

मोतीचन्द जैन
शास्त्री, न्यायतीर्थ

रवीन्द्र कुमार जैन
शास्त्री बी० ए०

मुद्रक—नवयुगान्तर प्रेस, शारदा रोड, मेरठ—२५०००२
फोन – ८२१२, ८६२१, टेलैक्स—०५६४—२३८—NAVY-IN

प्रस्तावना

भ० ऋषभदेव से लेकर भ० महावीर पर्यन्त चतुर्विध सघ मे साधुओ के समान आर्यिकाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। तीर्थंकरो के समवशरण मे मुनियो से आर्यिकाओ की सख्या अधिक रही है। आज भी साधुसस्थाओ की ओर दृष्टि डालने पर आर्यिकाओ की सख्या अधिक दिखती है।

इसी चतुर्विध सघ परम्परा की शृखला मे भगवान् कुन्दकुन्दाम्नाय के सरस्वती गच्छ बलात्कार गण मे बीसवी शताब्दी के महान आचार्य श्रीशातिसागर महाराज हुए, जिनके तृतीय पट्टाधीश आचार्य श्री धर्मसागर महाराज अपने विशाल चतुर्विध सघ सहित भारतवर्ष के कोने कोने मे दिगम्बरत्व की प्राचीनता को दर्शा रहे हैं। इन्ही आचार्य धर्मसागर महाराज की शिष्या आर्यिका श्री रत्नमती माताजी का जीवन चारित्र इस पुस्तिका मे दर्शाया गया है। लेखक के द्वारा इसमे माताजी के प्रारभिक जीवन से लेकर वर्तमान तक की सारी विशेषताओ का उल्लेख किया गया है। पूज्य माताजी के गृहस्थावस्था के पिता श्री सुखपालदास जी ने "पद्मनदिपचविंशतिका" नामका एक ग्रन्थ इन्हे शादी के दहेज मे देकर सच्चा दहेज का कर्तव्य पूर्ण किया। जिसका स्वाध्याय मात्र इनके जीवन के लिए ही नही किन्तु इनसे भी पूर्व आर्यिका ज्ञानमती माताजी जो इनकी प्रथम पुत्री है उनके वैराग्य का प्रधान निमित्त बना। आज वह ग्रन्थ जीर्ण अवस्था मे भी घर के समस्त सदस्यो के लिए सर्वप्रिय स्वाध्याय का शास्त्र बना हुआ है।

पूज्य रत्नमती माताजी का गृहस्थावस्था का नाम मोहिनी देवी था इनके पति श्री छोटेलाल जी भी धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। इन्होने अपने पति के जीवित अवस्था मे ही पचम

प्रतिमा तक के व्रतो को स्वीकार कर लिया था। सन् १९६९, २५ दिसम्बर को पति की समाधि के अनंतर इन्होने सप्तम प्रतिमा के व्रतों को ग्रहण किया और सन् १९७२ अजमेर मे आचार्य श्री से परिवार के तीव्र विरोधो के बावजूद भी आर्यिका दीक्षा धारण कर ली। तब से लेकर आज तक १३ वर्ष के दीक्षित जीवन मे इन्होने कितने ही भव्य जीवों को मद्य, मास मधु का, सप्त व्यसन आदि का त्याग करवाकर मोक्षमार्ग मे लगाया है।

धन्य है आपका त्यागमयी जीवन, जिन्होने भरे पूरे परिवार के मोह को छोडकर गर्मी, सर्दी आदि ऋतुओ की बाधाओ को सहन करते हुये रत्नत्रय की साधना कर रही हैं।

रत्नमती माताजी के इस विस्तृत जीवनवृत्त को पढकर निश्चित ही आदर्श महिलाओं को प्रेरणा मिलेगी कि किस प्रकार से हम अपने जीवन को तथा सन्तानों के जीवन को सवारे। उन्हे सत्संस्कारों की घूटी पिलाए तो इस देश को कई ज्ञानमती जैसी निधियाँ प्राप्त हो सकती है। और स्वय भी रत्नमती माताजी के सदृश आदर्श भी प्रस्तुत कर सकती हैं।

बाल ब्र० श्री मोतीचन्द शास्त्री ने परम पू० आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के सघ मे १६ वर्ष तक रहकर पू० रत्नमती माताजी के गृहस्थ तथा दीक्षित जीवन का बारीकी से अनुभव किया है। यदा कदा ज्ञानमती माताजी के मुख से भी सुनी हुई घटनाओ का तथा पारिवारिक सदस्यो के सहयोग से इस पुस्तक को लिखकर तैयार किया है। निश्चय ही यह भव्यो को दिशाबोध कराने मे सहायक सिद्ध होगी।

—विद्यावाचस्पति कु० माधुरी शास्त्री

संपादकीय

२० नवम्बर १९८३ को पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ का विमोचन हुआ। संसद सदस्य श्री जे० के० जैन ने ग्रन्थ का अनावरण करके पूज्य माताजी के करकमलो मे समर्पित किया। विशाल जन समूह के मध्य यह एक रोमांचक दृश्य था। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की ओर से प्रकाशित यह अभिनन्दन ग्रन्थ अपने आप मे एक संग्रहणीय और पठनीय ग्रन्थ है। इसमे विभिन्न विषयो के अन्तर्गत पूज्य रत्नमती माताजी का ब्र० मोतीचन्द जी द्वारा लिखित जीवन दर्शन पाठकों का सर्वाधिक प्रिय खण्ड रहा है। उसकी अत्यधिक मांग होने के कारण हम वीर ज्ञानोदय ग्रन्थ माला के पुष्प के रूप मे "आर्यिका रत्नमती" नाम से उनका जीवन दर्शन प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है पाठक गण बहुमात्रा में इसके द्वारा लाभान्वित हो सकेंगे।

संपादक
रवीन्द्रकुमार जैन

आर्यिकारत्नमतीमातुः गुर्वावलिः

लोकालोकप्रकाशिकेवलज्ञानज्योतिषा सकलचराचरवस्तु-साक्षात्कारिमहाश्रमणभगवद्वर्धमानस्य सार्वभौमशासन वर्धयति श्रीकुंदकुंदान्वये नंदिसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे चारित्र-चक्रवर्ती शान्तिसागराचार्यवर्यस्तत्पट्टे श्रीवीरसागरमुनीन्द्रस्त-त्पट्टाधीशो श्रीशिवसागरसूरिस्तत्पट्टस्थित श्रीधर्मसागरा-चार्योऽस्य करकमलात् वीराब्दे अष्टानवत्युत्तरचतुर्विंशतिशततमे वर्षे मार्गशीर्षमासे कृष्णपक्षे तृतीयातिथौ अजमेरपत्तने' दीक्षिता श्रमणी आर्यिकारत्नमती माता इह भूतले चिर जीयात् ।

अधुना—

वीराब्दे नवोत्तरपंचविंशतिशततमे वर्षे मार्गशीर्षमासेऽसितपक्षे जयातिथौ अद्यावधि मम संघे द्वादशवर्षायोग व्यतीत्य निर्विघ्नतथा संयम परिपालयन्ती सत्यग्रेऽपि यावज्जीव निर्बाध चारित्रे स्थेयात् । इति वर्धताम् जिनशासनम् ।

—आर्यिका ज्ञानमती

आर्यिका रत्नमती

अवधप्रांत

आदिब्रह्मा भ० श्री ऋषभदेव की जन्मभूमि अयोध्या और उसके आस-पास के क्षेत्र को भी आज अवधप्रांत के नाम से जाना जाता है। वैसे इन प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और उनके प्रथम पुत्र चक्रवर्ती भरत के समय यह अयोध्या नगरी १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौडी मानी गई है। अतः १२ को ४ कोश से गुणित करने पर १२×४=४८ कोश और ९×४=३६ कोश होते हैं। इस हिसाब से लखनऊ, टिकैतनगर, त्रिलोकपुर, महमूदाबाद आदि नगर उस समय अयोध्या नगरी की पवित्र भूमि मे ही थे। आज भी अयोध्या तीर्थ की पवित्रता से सम्पूर्ण अवध का वातावरण पवित्र बना हुआ है।

महमूदाबाद

इस अवधप्रांत मे जिला सीतापुर अन्तर्गत एक महमूदाबाद नाम का गाँव है। वहाँ पर विशाल जिनमन्दिर हैं। मन्दिर के निकट ही जैन समाज के लगभग ५० घर हैं। आज से सौ वर्ष पूर्व वहाँ श्री सुखपालदास जी सेठ रहते थे। ये अग्रवाल जातीय जैन थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम मत्तोदेवी था। सुखपाल दासजी गाँव मे धर्मात्मा के रूप में प्रसिद्ध थे। नित्य भगवान् की पूजा करते थे, स्वाध्याय करते थे। रात्रि भोजन आदि का इनका त्याग था, सात्त्विक प्रकृति के महामना श्रावक थे। इनकी पत्नी भी पतिव्रता आदि गुणो से सहित धर्मपरायणा, अत्यन्त सरल

प्रकृति की थीं। इन धर्मनिष्ठ दम्पति के चार सन्तानें हुईं—
१. शिवप्यारी देवी २. मोहिनी देवी ३ महीपाल दास
४ भगवानदास।

पिता सुखपाल जी ने अपनी प्रत्येक सन्तान पर धार्मिक सस्कार डाले थे।

मोहिनी कन्या

ईस्वी सन् १९१४ मे द्वितीय कन्या का जन्म हुआ था। पिता ने बड़े प्यार से इसका नाम 'मोहिनी' रक्खा था। यह अपने सहज गुणों से सबके मन को मुग्धमोहित अथवा प्रसन्न करती रहती थी। बचपन से माता-पिता का इस कन्या पर विशेष स्नेह था। पिताजी हमेशा मोहिनी पुत्री को साथ लेकर घूमने जाते और उसकी तरफ अधिक ध्यान देते थे। प्रतिदिन रात्रि मे अपने हाथ से बादाम भिगो देते। प्रात छीलकर मोहिनी को खिलाते और दूध देते। प्रतिदिन मन्दिर भी अपने साथ ले जाते थे। ५-६ वर्ष की वय मे इस कन्या को स्कूल मे पढ़ने भेजने लगे। थोडे ही दिनो मे मोहिनी ने ३-४ कक्षा तक अध्ययन कर लिया। मुसलमानी इलाका होने से पिता ने महीपाल पुत्र को पढ़ाने के लिये एक मौलवी मास्टर रक्खा था। वे उर्दू पढाते थे। मोहिनी कन्या की बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण थी। वह छोटे भाई के पढते समय ही उर्दू सीख गई। बाद मे सबसे छोटा भगवानदास जब मुन्ना था। उसे गोद में लेकर खिलाने मे मोहिनी ने स्कूल जाना छोड दिया। तब स्कूल से अध्यापिकायें आती और कहती—

"पिताजी! इस पुत्री को पढने जरूर भेजें। इसकी बुद्धि बहुत ही कुशाग्र है। इसके बगैर तो हमारा स्कूल सूना हो रहा है।"

पिता भी प्रेरणा देते, किन्तु मोहिनी भाई को खिलाने का बहाना बनाकर स्कूल जाने मे आनाकानी कर देती। उस जमाने मे कन्याओ को अधिक पढ़ाने की परपरा भी नही थी और वह इलाका मुसलमानी था अत माँ मत्तोदेवी ने भी कन्या को स्कूल भेजने का अधिक आग्रह नही किया।

पिता ने सस्कार डाले

पिता सुखपाल जी प्रतिदिन मोहिनी को भक्तामर, तत्त्वार्थ-सूत्र आदि पढाने लगे। वे रात्रि मे सारे परिवार को बिठाकर मोहिनी से शास्त्र पढवाते और बहुत खुश होते। पुन विस्तार से सबको शास्त्र का अर्थ समझाते रहते।

एक बार पिता ने मुद्रित ग्रन्थो के शुरूवात मे एक ग्रन्थ लिया। जिसका नाम था—"पद्मनदिपंचविंशतिका" इसे लाकर उन्होने पुत्री को दिया और बोले—

"बेटी! तुम इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करना।"

मोहिनी ने बडे प्रेम से उस ग्रन्थ का स्वाध्याय किया था। उसमे पर्व के दिन ब्रह्मचर्य व्रत के महत्त्व को पढते हुये उन्होने भगवान् के मन्दिर मे जाकर अपने मन मे ही अष्टमी, चतुर्दशी के दिन ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया तथा आजन्म शीलव्रत भी ले लिया था। यह बात किसी को विदित नही थी। मन्दिर मे भी उस समय ये सुखपालदास जी ही शास्त्र बाचते थे और सभी लोग इन्हे पडितजी कहा करते थे। पुत्र महीपालदास को इन्होने व्यायाम करना सिखा दिया था, इससे ये कुश्ती के खिलाडी बन गये थे। उस इलाके मे इन्होने बडे बडे पहलवानो से कुश्ती खेली है और कई बार प्रतियोगिता मे जीते हैं।

पिता का व्यवसाय

पहले पिताजी गाँव मे अपना कपडे का व्यवसाय करते थे, कुछ दिनो बाद ये कपडा लेकर पास के गाँव बीसवाँ मे व्यापार को जाने लगे। उस समय साथ मे पूडी बनवाकर ले जाते थे तथा कुछ चावल-दाल भी ले लेते थे। जिससे कभी-कभी अपने हाथ से खिचडी बनाकर खा लेते थे। इनका व्यवसाय मे यह नियम था कि "देवपूजा" करके ही दुकान खोलना। यदि मदिर नही हो तो "जाप्य" करके ही ग्राहक से बात करना।

इस नियम से ही आपकी अन्तसमाधि बहुत ही अच्छी हुई है। आप एक बार बीसवा ही व्यापार करने गये थे। प्रात ग्राहक आया। आपने कहा कि मैं जाप्य करके ही वार्तालाप करूँगा। वह बाहर बैठा रहा। आप शुद्ध वस्त्र लपेट कर जाप्य करने बैठे, बैठे ही रह गये। आपके प्राण पखेरू उड गये। स्वर्ग मे उत्तम गति मे पहुच गये। जब बहुत देर हो गई तब लोगो ने आपको देखा, मृत पाया। तब परिवार के लोगो को बुलाकर अन्त्येष्टि की गई थी। सच है एक छोटा नियम भी इस जीव को ससार समुद्र से पार करने मे कारण बन जाता है।

पिता ने १६ वर्ष की वय मे बडी पुत्री शिवप्यारी का विवाह बेलहरा निवासी लाला मनोहर लाल के सुपुत्र मेहरचद के साथ कर दिया। ये बडी पुत्री गार्हस्थ्य जीवन मे प्रवेश कर अपने पति के अनुकूल रहकर धर्मकार्य मे सतत लगी रहती थी। इन्होने क्रम से एक पुत्री और चार पुत्रो को जन्म दिया। जिनके नाम १. हीरामणी, २. पुतानचद, ३. वीरकुमार, ४ चून्नूलाल और ५ रज्जनकुमार है। सबके ब्याह के बाद आपने दो प्रतिमा

के व्रत ले लिये थे। वैधव्य जीवन मे आपने अपना सम्पूर्ण समय धर्मकार्यों मे लगाकर अन्त मे सल्लेखनापूर्वक मरण कर सद्गति प्राप्त कर ली है।

शिवप्यारी पुत्री का विवाह करके आपने अपनी मोहिनी पुत्री का ब्याह टिकैतनगर कर दिया। इनका विस्तार से वर्णन आगे करेंगे। यहा संक्षेप मे आपको महीपालदास और भगवानदास का भी परिचय कराये देते हैं।

सोलह वर्ष की वय मे पिता ने महीपालदास का विवाह बहराइच के सेठ बब्बूमल जैन की पुत्री मुन्नी देवी के साथ कर दिया। इनके दो पुत्र और चार पुत्रियां हैं। जिनके जिनेन्द्र कुमार, भीमसेन, राजकुमारी, सरोजकुमारी, इन्द्रकुमारी और प्रभावती ये नाम हैं। ये महीपालदास व्यायाम से तदुरुस्त पहलवान होने से उस प्रांत मे बड़े प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। कभी-कभी इनका स्वभाव उग्र हो जाया करता था जिसका कुछ दिग्दर्शन आ० ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखे गये संस्मरण मे मिल जाता है। सन् १९६६ मे इनका आकस्मिक हार्टफेल हो गया। तब से इनके बडे पुत्र जिनेन्द्र कुमार ने घर के सारे दायित्व को अच्छी तरह सम्भाल लिया। साथ ही आजकल ये समाज मे भी प्रतिष्ठित स्थान को प्राप्त अध्यक्ष है तथा कपडे के अच्छे व्यापारी है।

सेठ सुखपाल जी ने अपने चतुर्थ पुत्र भगवानदास का विवाह फतेहपुर के एक धर्मात्मा सेठ की पुत्री के साथ सम्पन्न कर दिया। इनके भी दो पुत्र, तीन पुत्रियां है। जिनके जगत-कुमार, रमेशकुमार, रत्नप्रभा, शशिप्रभा और मणिप्रभा नाम

है। ये सभी विवाहित है। दोनो पुत्र अच्छे व्यापारी है। इस प्रकार से सुखपाल जी का पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र सहित सम्पूर्ण परिवार धर्मनिष्ठ सुखी और सम्पन्न है।

अब मै आपको पूज्य ज्ञानमती माताजी की जन्मभूमि के दर्शन कराने ले चलता हू।

[२]

टिकैतनगर

अयोध्या के निकट ही एक टिकैतनगर ग्राम है जो कि बाराबकी जिला के अन्तर्गत है और लखनऊ शहर से ६० मील दूरी पर है। आज से १०० वर्ष पूर्व वहाँ के लाला धन्यकुमार जी अच्छे प्रसिद्ध धर्मात्मा श्रावक थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम फूलदेवी था। ये भी अग्रवाल जातीय, गोयल-गोत्रीय दिगम्बर जैन थे। इनके चार पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुई। पुत्र के नाम बाबूराम जी, छोटेलाल, बालचद्र और फूलचद थे। इनमे से बडे तीनो भाइयो का परिवार वटवृक्ष आज खूब हरा-भरा दिख रहा है। सबसे छोटे पुत्र फूलचद १६ वर्ष की वय मे अविवाहित ही स्वर्गस्थ हो चुके थे।

श्री छोटेलाल जी का विवाह

वह समय ऐसा था कि पुत्रो का विक्रय न होकर कही-कहीं पुत्रियो का विक्रय हो जाया करता था। पिता धन्यकुमार ने महमूदाबाद के लाला सुखपाल जी की बहुत ही प्रशसा सुन रक्खी थी और उनकी सुपुत्री मोहिनी के गुणो से भी प्रभावित थे। उन्होंने स्वय अपने सुपुत्र छोटेलाल के लिये मोहिनी कन्या की याचना की। सुखपालदास जी ने भी उनके पुत्र मे वर के

योग्य सभी गुणो को देखकर स्वीकृति दे दी, और सगाई पक्की हो गई। लाला धन्यकुमार जी अपने पुत्र की बारात लेकर महमूदाबाद पहुच गये और शुभमुहूर्त मे युवक छोटेलाल जी के साथ मोहिनी देवी का परिणय सस्कार जैन विवाह विधि से कर दिया गया। माता-पिता ने अश्रु भरे नेत्रो से अपनी प्यारी पुत्री को विदाई दी। उस समय सन् १९३२ मे मोहिनी देवी की उम्र लगभग १८ वर्ष की थी।

सच्चा दहेज

विदाई के पूर्व पिता ने अपनी पुत्री को दहेज मे यथायोग्य सब कुछ दिया, किन्तु उनके मन मे सन्तुष्टि नही हुई, तब वे "पद्मनदिपचविंशतिका" ग्रन्थ को लेकर दहेज के समय पुत्री मोहिनी को देते हुये बोले—

"बिटिया मोहिनी! तुम हमेशा इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करते रहना। इसी से तुम्हारे गृहस्थाश्रम मे सुख और शांति की वृद्धि होगी और तुम्हारा यह नरभव पाना सफल हो जावेगा।"

पुत्री मोहिनी ने पिता के द्वारा दिये गये इस दहेज को सबसे अधिक मूल्यवान् समझा और पिता भी दहेज मे ऐसी जिनवाणी रूपी निधि को देकर सच्चे पिता (पालक-रक्षक) बन गये।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

बारात टिकैतनगर वापस आ गई। सबसे पहले वरवधू को जिन मदिर ले जाया गया। वहाँ सातिशय भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा के दर्शन कर मोहिनी का मन प्रसन्न हुआ और माता-पिता के वियोग का दुख भी हल्का हो गया। घर मे मगलप्रवेश कर मोहिनी ने अपने पिताजी के द्वारा दिये गये ग्रन्थ को बहुत

बड़ी निधि के रूप मे सम्भाल कर रख लिया और नियम से नित्य ही देवदर्शन के बाद विधिवत् उसका स्वाध्याय करने लगीं।

यहाँ पर इस भरे पूरे परिवार मे मोहिनी का मन लग गया। सासु और ससुर बहुत ही सरल प्रकृति के थे, धर्मात्मा थे। जेठ, जिठानी, उनके पुत्र-पुत्री, देवर तथा ननदो के मध्य घर का वातावरण बहुत ही सुखद और मधुर था। इस घर मे सभी लोग प्रात मन्दिर जाकर ही मुँह मे पानी लेते थे। कोई भी रात्रि मे भोजन नही करता था, पानी छानकर ही काम मे लिया जाता था। प्राय: सभी स्त्री पुरुष शाम को मन्दिर मे जाकर आरती करते और शास्त्र सभा मे बैठकर शास्त्र सुनते थ। यहाँ घर के निकट ही मन्दिर होने से मन्दिर के घण्टा की, पूजा-पाठ की, आरती की आवाज घर बैठे कानो मे गूँजा करती थी।

मैनादेवी का जन्म

सन् १९३४ मे आसोज सुदी पूर्णिमा-शरद् पूर्णिमा की रात्रि मे मोहिनी देवी ने प्रथम सतान के रूप मे एक ऐसी कन्यारत्न को जन्म दिया कि जिसकी शुभ्र चाँदनी आज सारे भारतवर्ष मे फैल रही है। प्रथम सतान के जन्म लेते ही बाबा धन्यकुमार और दादी फूलदेवी ने भी अपने को धन्य माना और हर्ष से फूल उठे। मगल गीत गाये गये, दान भी बाँटा गया और दादी ने बड़े गौरव से कहा—

"भले ही कन्या का जन्म हुआ है किन्तु पहला पुष्प है चिरजीवी हो, मुझे बहुत ही खुशी है।"

इस कन्या का नाम नाना ने बडे प्यार से मैना रखा था। तब नानी ने कहा—

"यह मैना चिडिया है यह घर मे नही रहेगी एक दिन उड जायेगी।"

नानी जी के यह वचन सर्वथा फलीभूत हुये हैं। यह मैन १८ वर्ष की वय मे गृहपीजडे मे न रहकर उड गई हैं जो कि आज हम सबका कल्याण करते हुये विश्व को अनुपम निधि रही है।

इस कन्या के पूर्वजन्म के कुछ ऐसे ही सस्कार थे कि यथा नाम तथा गुण के अनुसार बचपन से ही कर्म सिद्धांत पर अटल विश्वास था।

प्रारम्भ मे यह बालिका बाबा, दादी, ताऊ, ताई, चाचा और चाची सभी की गोद मे खेली थी। पिता का तो इसे बहुत ही दुलार मिला था।

मोहिनी जी को भयकर कष्ट

मैना के बाद मोहिनी ने दूसरी कन्या को जन्म दिया। उसके बाद उन्हे जाँघ मे एक भयकर फोडा हो गया। कुछ असाता के उदय से उसका आपरेशन असफल रहा। पुन कुछ दिनो बाद आपरेशन हुआ। डाक्टर ने भी इस बार इन्हे भगवान् भरोसे ही छोड दिया था किन्तु इनके द्वारा जैन समाज को बहुत कुछ मिलना था, इसीलिये ये माता मोहिनी छह महीने से अधिक समय तक भयकर वेदना को झेलकर भी स्वस्थ हो गई और पुन गृहस्थाश्रम के सभी कार्यों को सुचारु चलाने लगीं। यह द्वितीय पुत्री स्वर्गस्थ हो गई। पुन मोहिनी ने एक कन्या

को जन्म दिया उसका नाम 'शांतिदेवी' रक्खा। इसके बाद एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ जिसका नाम 'कैलाशचंद' रखा गया। मैना अपने इस छोटे भाई को बहुत ही प्यार करती थी और उसे गोद में लेकर मंदिर ले जाकर भगवान् का दर्शन कराती, उसको गंधोदक लगाती और उसे णमोकार मन्त्र बोलना सिखाती रहती थी। चूँकि मैना को णमोकार मन्त्र पर बहुत ही विश्वास था।

मैना का अध्ययन

पाँच-छह वर्ष की होने पर कन्या मैना को पिता ने मन्दिर के पास ही पाठशाला में पढ़ने बिठा दिया। मैना की बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि वे तीन चार वर्ष में ही बहुत कुछ पढ़ गई। वहाँ पाठशाला में धार्मिक पढ़ाई ही प्रमुख थी। प्रारम्भिक गणित भी पढ़ाई जाती थी। मैना ने उसे भी पढ़ लिया।

इधर माँ मोहिनी की गोद में हमेशा छोटा बच्चा रहने से वे अपनी प्रथम पुत्री मैना को छोटी वय से ही घर के हर कामों में लगाया करती थीं। इससे ये ८-६ वर्ष की वय में ही गृह कार्य, रसोई बनाने, चौका-बर्तन धोने आदि कार्यों में कुशल हो गईं। साथ ही माँ के हर कार्य में हाथ बँटाने में मैना को रुचि भी थी। इस प्रकार मैना पाठशाला में छहढाला, रत्न-करण्ड श्रावकाचार, पद्म, तत्त्वार्थसूत्र, भक्तामर आदि पढ़ चुकी थी तभी माँ ने मैना को पाठशाला जाने से रोक दिया और घर में ही अध्ययन करने की प्रेरणा दी।

सम्बोधन करना

मैना माँ की कमजोर अवस्था—शिरदर्द आदि में उनकी

सेवा भी करती थी, और उन्हे धार्मिक पाठ सुनाकर उसका अर्थ भी समझाने लगती थी। तब माता मोहिनी को बहुत ही शान्ति मिलती थी। यह सम्बोधन की प्रक्रिया शायद माताजी को पूर्वजन्म के सस्कारो से ही मिली थी तभी तो वे आज अगणित प्राणियों को सम्बोधित कर चुकी हैं और सारे देश को भी सम्बोधन करने मे समर्थ हैं।

करुणादान का प्रेम

प्रत्येक घरो के दरवाजो पर भिखारी आते हैं, भीख माँगते हैं, गिडगिडाते हैं, मिल जाती है तो अच्छी दुआ देते हुए चले जाते हैं और नही मिलती है तो कोसते हुए वापस चले जाते हैं। किन्तु माता मोहिनी के दरवाजे पर कोई भी भिखारी आता था तो वे मैना से कहती—

'बेटी ! इमे रोटी चावल दाल आदि भोजन खिला दो और पानी पिला दो।'

मैना भी खुशी-खुशी भिखारी को खाना खिलाकर पानी पिला देती। वह बहुत-बहुत दुआ देता हुआ चला जाता। माँ का कहना था कि आजकल भिखारी प्राय भिक्षा मे मिले हुये अनाज को कपड़ो को बेचकर धन इकट्ठा करके रखते जाते हैं और बाहर से भिखारी बने रहते हैं। इसलिए वे वस्त्र, अनाज और पैसे कदाचित् ही भिखारियो को देती थी। अधिकतर भोजन ही करानी थी। उनके दरवाजे से कभी कोई भिखारी खाली नही गया।

ऐसे ही छोटे-मोटे अनेक उदाहरण दयावृत्ति के हैं जिससे ऐसा लगता है कि—

उस समय माँ और बेटी दोनो के हृदय मे छोटे-छोटे प्रसगों पर करुणा का प्रवाह भविष्य के उनके विशाल कारुणिक हृदय को सूचित करने वाला था।

तीर्थयात्रायें और व्रत उपवास

माता मोहिनी ने पतिदेव के साथ सम्मेदशिखर जी, महावीरजी, सोनागिरजी आदि तीर्थों की यात्राएँ भी की थी। समय-समय पर रविवार, आकाश-पचमी, मुक्तावली, सुगन्ध दशमी आदि कई व्रत भी किये थे। यद्यपि मोहिनी जी का शरीर स्वास्थ्य कमजोर था, व्रत करने से पित्त प्रकोप हो जाता था, चक्कर आने लगते थे, फिर भी वे साहस कर धर्मप्रेम से कुछ न कुछ व्रत किया ही करती थी। उनका यह दृढ विश्वास था कि यह शरीर नश्वर है। एक न एक दिन नष्ट होने वाला है। इससे अपनी आत्मा का जितना भी हित कर लिया जाय उतना ही अच्छा है।

माँ मोहिनी की अन्य सतान

इस तरह माता मोहिनी क्रम-क्रम से मैना, शांति, कैलाशचद श्रीमती, मनोवती, प्रकाशचद, सुभाषचन्द और कुमुदनी इस तरह चार पुत्र और पाच पुत्रियो की जन्मदात्री हो चुकी थी। इन छोटे-छोटे बालक-बालिकाओ को सम्भालने मे, उनकी बीमारी के समय सेवा शुश्रूषा करने मे, रसोई बनाने मे, और भी सभी घर के कार्यों मे माँ मोहिनी को बडी पुत्री मै.ा का अच्छा सहयोग मिल रहा था। मैना बिना किसी से सीखे ही बच्चो के स्वेटर बुन लेती थी। अच्छे से अच्छे कपडे सिलकर उन्हें पहनाती रहती थी। प्रत्येक कार्य मे मैना की कुशलता

उस गाँव मे तथा आस-पास के गाँवो मे भी प्रशसा और आश्चर्य का विषय बन गई थी।

[३]

मिथ्यात्व का त्याग

मैना प्रतिदिन प्रात उठकर वस्त्र बदलकर सामायिक करती। पुन: घर की सफाई करके बच्चो को नहला-धुलाकर आप स्नान आदि से निवृत्त हो मदिर जाकर धुले हुए शुद्ध द्रव्य से भगवान् की पूजा करती थी। मदिर से आकर स्वाध्याय करके रसोई के काम मे लगती। भोजन आदि से निवृत्त हो मध्याह्न मे घर के अन्य काम काज सम्भालकर नन्हे मुन्ने बच्चो को सभालती थी। सायकाल के भोजन के उपरात रात्रि मे मदिर मे आरती करके शास्त्र सभा मे बैठ जाती। वहाँ से आकर घर मे स्वय दर्शनकथा, शीलकथा आदि पढकर कभी माँ को, कभी पिता को, कभी भाई बहिनो को सुनाती रहती थी।

मैना ने घर मे तीज, करवा चौथ आदि त्योहारो मे गौरी पूजना, बायना बाँटना आदि मिथ्यात्व है ऐसा कहकर माँ से उन सबका त्याग करवा दिया था। बालको के भयकर चेचक निकलने पर भी शीतला माता को नही पूजने दिया था। माता मोहिनी ने भी अपनी पुत्री मैना की बातो को जैनागम से प्रामाणिक समझकर मान्य किया था और सासु की आज्ञा को भी न गिनकर मैना की बातो को मान्यता देती रहती थी। तब मैना अपनी वृद्धा दादी को भी समझाया करती थी। मैना की युक्तिपूर्ण बाते सुनकर दादी यद्यपि ज्यादा समझ नही पाती थी फिर भी सन्तोष कर लेती थी।

मां मोहिनी की चर्या

माता मोहनी भी प्रतिदिन प्रात उठकर सामायिक करती थी। स्नानादि से निवृत्त होकर मदिर मे भगवान् की पूजन करती थी। वहाँ से आकर स्वाध्याय करके रसोई बनाने मे लग जाती थी। छोटे गोद के बच्चे को दूध पिलाते समय भी माँ मोहिनी स्वाध्याय और भक्तामर आदि के पाठ किया करती थी जिससे वह माता का दूध बच्चो के लिये अमृत बन जाता था और बच्चो मे धार्मिक सस्कार पडते चले जाते थे। प्रतिदिन सायकाल मे मदिर मे आरती करने जाती थी और बच्चों को भी भेजा करती थी। प्रात: कोई भी बालक बिना दर्शन किये नाश्ता नहीं कर सकता था यह कडा नियत्रण था। यही कारण था कि सभी बालक-बालिकायें इसी धर्म के साँचे मे ढलते चले गये।

मैना को वैराग्य

अब मैना १६ वर्ष की हो चुकी थी। घर मे जब भी पिता आते। दादी जी कहने लगती—'बेटा छोटेलाल! अब बिटिया सयानी हो गई है इसके लिये कोई अच्छा वर ढूँढो और विवाह करो।

पिता कह देते—

"अच्छा देखो आजकल मे कही न कही बात करने जायेंगे।"

माँ मोहिनी भी प्राय: कहा करती थी—

"अब पुत्री के लिये योग्य वर देखना चाहिये।"

इधर मैना इन बातो को सुनकर मन ही मन सोचने लगती थी—

"भगवन् ! क्या उपाय करूँ कि जिससे विवाह बधन मे न फँसकर 'अकलक देव' के समान घर से निकलकर आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लूँ और खूब अच्छी सस्कृत पढकर धार्मिक ग्रन्थो का गहरा अध्ययन करूँ। आत्म कल्याण के पँथ को अपनाकर अपना मानव जीवन सफल करूँ।"

बात यह है कि मैना को दर्शनकथा, शीलकथा, जबूस्वामी चरित, अनतमती चरित आदि पढ-पढकर तथा खास करके 'पद्मनदिपचविंशतिका' का बार-बार स्वाध्याय करके सच्चा वैराग्य प्रस्फुटित हो चुका था। अत: एक दिम अवसर पाकर मैना ने विवाह के लिये 'ना' कर दिया। इन लोगो के अथक प्रयासो के बावजूद भी वे कथमपि गृह बधन मे पडने को तैयार नही हुई। पुण्य योग से आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज के दर्शन मिले और बाराबकी मे वह शुभ घडी आ गई कि जब मैना न सभा मे अपने हाथो से अपने केशो को उखाडना शुरू कर दिया। जनता आश्चर्य चकित हो गई। कुछ लोग विरोध मे खडे हो गये तभी बाराबकी के मोहिनी के मामा बाबूराम जी ने मैना का हाथ पकडकर केशलोच करने से रोक दिया।

फिर भी मैना हिम्मत नही हारी, धैर्य के साथ चतुराहार त्यागकर जिनेन्द्रदेव की शरण ले ली। आखिर मे माता मोहनी का हृदय पिघल गया और उन्होंने साहस करके अथवा 'निर्मोहिनी बनकर आ० देशभूषण जी महाराज से मैना को ब्रह्मचर्यव्रत देने के लिये स्वीकृति दे दी। वह भी धन्य थी और वह दिवस भी

धन्य था कि जिस घडी जिस दिन मैना ने त्रैलोक्यपूज्य ब्रह्मचर्य-व्रत को आजन्म ग्रहण किया था। सचमुच मे मैना ने उस समय एक आदर्श उपस्थित कर दिया था। आसोज सुदी १५, शरद पूर्णिमा का (सन् ५२ का) वह पावन दिवस था और वह घडी प्रात सूर्योदय क समय की थी कि जिसन मैना के जीवन प्रभात को विकसित कर उनके द्वारा अगणित भव्यो को सुरभित किया है।

मैना ने गृह त्याग किया

इसके बाद पिता छोटेलाल ने बहुत ही प्रयत्न किया कि—

'बेटी मैना! अब भी तुम टिकैतनगर चलो, भले ही घर मे मत रहना, मैं अन्यत्र कमरा बनवा दूँगा। अथवा मन्दिर मे ही रहना। किन्तु अभी तुम्हारी बहुत छोटी उम्र है अभी तुम हमारी नजर से परे न होवो। गाँव में ही रहो, तुम्हारे धर्मध्यान मे हम लोग जरा भी भी बाधा नही डालेंगे।'

किन्तु मैना ने कथमपि स्वीकार नही किया क्योंकि उन्हें तो दीक्षा चाहिये थी। सन् १९५२ का चातुर्मास आ० देशभूषण जी ने पूर्ण किया और बाराबकी से विहार कर दिया। महावीर जी तीर्थ पर आ गये।

इधर माता-पिता मैना के वियोग से दुखी हो अपने गृहस्थाश्रम को उजडा हुआ सूना-सूना देखते थे और अश्रु बहाते हुए शोक किया करते थे। माता मोहिनी की गोद मे उस समय एक पुत्री और थी जिसका मैना ने बडे प्यार से मालती नाम रक्खा था और उसे २२ दिन की छोडकर अपने जन्म स्थान के गृह-पींजडे से निकलकर सघरूपी आकाश मे उड गई थी।

[४]

आचार्य वीरसागर जी के संघ का दर्शन

सन् १९५३ की ही बात है। आ० श्री वीरसागर जी का सघ सम्मेदशिखर से विहार करता हुआ अयोध्या जी तीर्थक्षेत्र पर आ पहुचा। उस प्रान्त के लोग इतने बडे सघ का दर्शन कर बहुत ही हर्षित हुये। टिकैतनगर के श्रावको ने भी प्रयास करके आचार्यकल्प के सघ को गाँव मे ले जाना चाहा। भावना सफल हुई और सघ का शुभागमन टिकैतनगर मे हो गया। उस समय टिकैतनगर मे भगवान् नेमिनाथ की विशालकाय मूर्ति को नूतन वेदी मे विराजमान करने के लिये वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव चल रहा था। आचार्यकल्प श्री वीरसागर जी के सघ के पदार्पण से इस महोत्सव मे चार चाँद लग गये।

माता मोहिनी के हर्ष का पारावार नहीं था। वे इतने बडे सघ का दर्शन कर गद्गद हो रही थी। सघ में ४-५ आर्यिकाओं को देखकर वे रो पडी, उनका हृदय भर आया और वे सोचने लगी—"अहो ! मेरी बेटी ने तो आर्यिकाओं को देखा भी नही था पुन उसके भाव दीक्षा लेने के, केशलोच करने के कैसे हो गये। क्या उसने पूर्वजन्म मे दीक्षा ली थी।..... इत्यादि सोचते हुये वे उन आर्यिकाओ को एकटक देख रही थी और अपनी आँखो के आँसू बार-बार अपने आँचल से पोछ रही थीं। तभी आर्यिकाओ ने अनुमान लगा लिया कि "सुना था एक कन्या ने बाराबकी मे अपने आप आ० देशभूषणजी महाराज के सामने केशलोच कर दिया था। तब वहाँ पर बहुत ही हगामा मचा था, अन्ततगोत्वा वह घर नही गई थी और ब्रह्मचर्यव्रत ले

लिया था। शायद यह महिला उसी 'मैना' कन्या की माँ होगी।

एक आर्यिका ने सहसा पूछ लिया—"बाई ! तुम क्यो रो रही हो ?" मोहिनी ने कहा—"माताजी ! मेरी बेटी मैना अभी बहुत ही छोटी है। उसे वैराग्य हो गया। तब सबके बहुत कुछ रोकने पर भी वह नहीं मानी। अभी वह आचार्य देशभूषणजी महाराज के सघ मे चली गई है। पता नही अब कहाँ पर है ?" इतना कहकर वे पुनः रो पडी। तभी सघ की वयोवृद्ध आर्यिका सुमतिमती माताजी ने उन्हे अपने पास बिठाया और सान्त्वना देते हुये कहा—"तुम रोती क्यो हो ? वह कन्या अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहती है तो अच्छा ही है, बुरा क्या है ? अरे बाई ! आजकल के जमाने मे यदि किसी की लडकी कही भाग जाती है तो भी माता-पिता रोकर रह जाते हैं और उनका कुल कलकित हो जाता है। वे मुँह दिखाने मे भी सकोच करते हैं। फिर तुम्हारी लडकी ने तो बहुत ही अच्छा मार्ग चुना है। उसने तो तुम्हारे कुल को उज्ज्वल कर दिया है और तुम्हारा मस्तक ऊँचा कर दिया है।"

तब मोहिनीजी ने कहा—"माताजी, आ० देशभूषणजी महाराज के साथ मे एक भी आर्यिका नही है। जब मैना ने बाराबकी मे आठ गज की साडी पहनी तब उसे पहनना भी नहीं आया। उसने गुडिया जैसे अपने सारे शरीर को लपेट लिया था। और उसे चलना भी नही आ रहा था। तब आरा की एक महिला ने उसे साडी पहनाई थी। उसने आर्यिकाओ को देखा भी नही हैं। अतः उसे कुछ भी नहीं मालूम है। वह कही भी तुम्हे मिल जाये तो उसे अपने साथ मे ले लेना।"

मोहिनी के ऐसे भोले वाक्यो को सुनकर सभी आर्यिकायें कुछ हँसी और अच्छा, जब वह मिलेंगी तब देखेंगे, ऐसा कहकर सान्त्वना दी। इसके बाद मोहिनीजी सघ की प्रमुख आर्यिका वीरमती माताजी के पास पहुची। उनसे परिचय और वार्तालाप होने के बाद माँ ने उन्हे भी अपना दु ख कह सुनाया और बार-बार प्रार्थना की कि "हे माताजी! मेरी बिटिया जहाँ कही आपको मिल जाये तो आप उसे अपने सघ मे ले लेना।'

इधर वेदी प्रतिष्ठा के प्रमुख समय पर कुछ घटना घटी। वह इस प्रकार है कि वहाँ पर पहले से एक प्रतिष्ठाचार्य आये हुये थे। वह भगवान् को वेदी मे विराजमान करते समय वहाँ पर खडे थे। समाज के प्रमुख श्रावको ने आ० कल्प श्री वीरसागरजी से प्रार्थना की कि "महाराज! आप सघ सहित मदिरजी मे पधारें। हम लोग आपके करकमलो से भगवान् को वेदी मे विराजमान कराना चाहते हैं।" आ० क० महाराज जी वहाँ पर अपने विशाल सघ सहित आ गये। सघ के कुशल प्रतिष्ठाचार्य ब्र० सूरजमल जी भी वहाँ पर आ गये।

वहाँ के प्रतिष्ठाचार्य ने वेदी मे "श्रीकार" आदि नही बनाया था। वे अपने को कट्टर तेरापन्थी कह रहे थे। आचार्य कल्प ने ब्र० सूरजमल से कहा "तुम वेदी मे 'श्रीकार' लिखकर विधिवत् यन्त्र स्थापित कर प्रतिमा विराजमान कराओ।" वहाँ के प्रतिष्ठाचार्य उलझ गये, बोले—'भगवान् जहाँ विराजमान होगें वहाँ केशर से 'श्री' कतई नही लिखी जा सकती।' आचार्य कल्प ने ब्र० सूरजमल को कहा यहाँ विधिवत् क्रिया होगी तो मैं रुकूँगा अन्यथा चला जाऊँगा।" ऐसा सुनते ही

टिकैतनगर के प्रमुख श्रावको ने शीघ्र ही प्रतिष्ठाचार्य से निवेदन किया कि—आप अपना हठ छोड दें। इस समय हमारे परम पुण्योदय से महान् सघाधिनायक आ० क० वीरसागर जी महाराज विराजमान है। उनके आदेशानुसार ही सब विधि होगी।

इतना कहने के बाद उन लोगो ने आ० कल्प से निवेदन किया—"महाराज जी ! आप आगम विधि के अनुसार क्रिया करवाइये।" महाराज के आदेश से ब्र० सूरजमलजी ने शुद्ध केशर से 'श्रीकार" लिखकर आचार्य कल्प के हाथो से वहाँ "अचलयन्त्र" स्थापित करवाया। पुन: मन्त्रोच्चारण करते हुए आचार्य कल्प के करकमलो का स्पर्श कराकर भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा को उस नूतन वेदी मे विराजमान कराया। भगवान् को विराजमान करते समय मदिरजी मे विविध बाजे, नगाडो की ध्वनि के साथ बहुत ही जोरो से भक्तो ने जय जय घोष किया—'भगवान् नेमिनाथ की जय हो, आचार्य कल्प श्री वीरसागरजी महाराज की जय हो।" इस जयकार के नारे से सारा गाँव मुखरित हो उठा। लोगों के मन मे उस समय जो आनन्द आया वैसा आनन्द शायद पुन: नहीं आयेगा।

इस उत्सव मे पिता छोटेलालजी बहुत ही रुचि से भाग ले रहे थे और माता मोहिनी तो मानो सघ के सभी साधुओ को अपना परिवार ही समझ रही थीं। सघ के सभी साधुओ से माता-पिता को विशेष वात्सल्य मिला था। मोहिनी देवी आर्यिकाओं के पास मे आकर उनके पास बैठ कर कुछ चर्चायें किया करती थीं। और कभी कभी उन आर्यिकाओ से उनका

पूर्व परिचय पूछ लिया करती थी। जब उन्हे पता चला कि इन आर्यिकाओ मे कोई भी कुमारिका नही है। आर्यिका वीरमतीजी, आ० सुमतिमतीजी आ० पार्श्वमतीजी, आ० सिद्धमतीजी और आ० शांति-मतीजी ये पाँच आर्यिकायें प्राय वृद्धा थी। उन सबका परिचय ज्ञात कर माता मोहिनीजी ने घर मे आकर पिता को बतलाया तो वे कहने लगे कि —

"तुम्हारे भाई महीपालदास ने यह शब्द कहे थे कि कुँवारी लडकियो की दीक्षा नही होती है तो क्या सच बात है ? देखो भला, इन आर्यिकाओ मे एक भी कुँवारी नहीं है। और सभी बडी उम्र की हैं। अरे ! मेरी बेटी तो अभी मात्र अठारह साल की है।" तब माँ ने कहा ऐसा नही सोचना चाहिये। मैना बिटिया कहती थी कि भगवान् आदिनाथ की पुत्री ब्राह्मी सुन्दरी ने दीक्षा ली थी। अनन्तमती ने तथा चन्दना ने भी दीक्षा ली थी। ये सब कुमारिकायें ही थी फिर आचार्य देशभूषण जी महाराज ने भी तो यही बतलाया था कि कुमारी कन्यायें दीक्षा ले सकती हैं। कोई बाधा नहीं है।" इस बात पर पिताजी बोले—देखो, सभी लोग आज भी यही कर रहे हैं कि इस इलाके मे सैकडो वर्ष का कोई रेकार्ड नही है कि किसी ने इस तरह इतनी छोटी उम्र मे दीक्षा ली हो। जो भी हो अब तो वह दीक्षा लेगी ही, किसी की मानेगी नही क्या करना ?" इत्यादि प्रकार से घर मे चर्चा चला करती थी। जब सघ का गाँव से विहार होने लगा तब भी मोहिनीजी बार-बार आर्यि-काओ से प्रार्थना कर रही थीं —"माताजी ! मेरी पुत्री जहाँ कही तुम्हे मिले तुम उसे अवश्य ही अपने साथ मे ले लेना, वह अकेली है।" इत्यादि।

संघ टिकैतनगर से निकलकर लखनऊ, कानपुर आदि होते हुये श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र पर पहुचा। वही पर आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज विराजमान थे। दोनो संघो का मिलन हुआ। क्षु० वीरमतीजी ने अपने जीवन मे पहली बार आर्यिकाओं को देखा था अत वे बहुत ही प्रसन्न हुई और क्रम से सभी के दर्शन कर रत्नत्रय की कुशल क्षेम पूछी। आर्यिकाओ ने भी बहुत ही वात्सल्य से क्षुल्लिका वीरमती को पास मे बिठाया। रत्नत्रय कुशलता की पृच्छा के बाद वे टिकैतनगर की बातें सुनाने लगी, बोली—"तुम्हारी माँ रो-रोकर पागल हो रही है, कहती थी—"मेरी बेटी अकेली है तुम साथ ले लेना।"

इत्यादि। क्षु० वीरमतीजी सुनकर मद मुस्करा दीं और कुछ नही बोली। तभी एक आर्यिका ने कहा—"हाँ, अपने दीक्षा गुरु को भला इतनी जल्दी कौन छोड़ देगा।"

अनन्तर क्षु० वीरमती ने सघ की प्रमुख आर्यिका वीरमती माताजी के पास बैठकर बहुत सी चर्चायें की। जब वे आ० देशभूषणजी के पास दर्शनार्थ आई। महाराज जी ने पूछा—"बताओ वीरमती! इतने बडे सघ के दर्शन कर तुम्हे कैसा लगा?" माताजी ने कहा—"महाराज जी! बहुत अच्छा लगा।" तब पुन. महाराज जी ने कहा—"तुम अब इसी सघ मे रह जाओ। वृद्धा आर्यिकायें हैं। तुम्हे उनके साथ विहार करने मे सुविधा रहेगी।" तब माताजी का मन कुछ उद्विग्न हो उठा। एकदम अपरिचित सघ मे कैसे रहना? आदि। उनके मुख की उदासीनता को देखकर और उनके मनोभाव को समझकर क्षु० ब्रह्ममतीजी ने कहा—"महाराज जी! अभी बहुत छोटी है इसे घबराहट होती है। अभी ये मात्र एक माह की ही दीक्षित है।

भला एक माह की बालिका अपने मां बाप को (गुरु को) छोडकर कैसे रह सकती है ? आचार्य महाराज हँस दिये, बोले— ठीक है हमारे साथ पैदल विहार मे खूब चलना पडेगा ये कैसे चलेगी ! ..... "।

कुछ दिनो बाद आचार्य देशभूषण जी के सघ का विहार वापस लखनऊ की ओर गया ।

[५]

पुत्री के साध्वी रूप में दर्शन

माँ मोहिनी देवी अपनी बडी बहन लहरपुर वाली के पुत्र कल्याणचन्द के साथ सोनागिरि आदि तीर्थों की यात्रा करते हुये अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी पहुचती हैं। मन्दिर मे प्रवेश कर सातिशय मूर्ति भगवान् महावीर की प्रतिमा के दर्शन कर बाहर निकलती ह तो देखती है मदिर जी के नीचे एक तरफ कमरे मे कुछ यात्री दर्शन के लिये प्रवेश कर रहे है, कुछ बाहर निकल रहे हैं। अन्दर कमरे मे प्रवेश कर देखा पुत्री मैना क्षुल्लिका के वेष मे एक सफेद साडी मे वहाँ विराजमान है और उनके हाथ मे एक सुन्दर सी मयूर पख की पिच्छिका है। पास मे ही दूसरे पाटे पर एक प्रौढवयस्का दूसरी क्षुल्लिका बैठी हुई हैं। छोटी क्षुल्लिका तो अपने सामने शास्त्र रखे उसी के स्वाध्याय मे मग्न हैं और बडी क्षुल्लिका जी आये गये यात्रियो से कुछ वार्तालाप भी कर रही हैं।

मोहिनी जी के हृदय मे मोह का प्रवाह उमडा, बरबस ही नेत्रो से आसू छलक पडे। उन्होने गवासन मे बैठकर माताजी को "इच्छामि" कहकर नमस्कार किया और सिसक-सिसक कर रो

पडी। क्षुल्लिका वीरमती ने माथा ऊचा किया, जन्मदात्री जननी को देखा और सहसा बोल पड़ी "अरे! रोना क्यो?" और पुन गभीर मुद्रा मे माथा नीचा कर लिया। उसी क्षण क्षुल्लिका ब्रह्ममती जी को यह समझते देर न लगी कि ये महिला इनकी माता है। उन्होने बडे ही प्रेम से उनको सान्त्वना दी। कहने लगी—"बाई! आप रोती क्यो है? आपकी बालिका ने इतनी छोटी सी वय मे दीक्षा लेकर जगत् को आश्चर्यचकित कर दिया है। अहो! तुम्हारी कूख धन्य है जिससे तुमने इस कन्यारत्न को पैदा किया है। आज के युग मे कौनसी ऐसी माता होगी जो ऐसी साहसी, वीरागना कन्या की माता कहलाने का सौभाग्य प्राप्त कर सके।"...... इत्यादि वचनो से उनका शोक हल्का किया। पुन कुशल क्षेम के बाद मोहिनी जी ने पूछा "इनकी दीक्षा कब हुई?" क्षुल्लिका ब्रह्ममती जी ने बताया—'फाल्गुण आष्टान्हिका पर्व के अनन्तर ही सोलहकारण पर्व के प्रथम दिन अर्थात् चैत्र कृष्णा प्रतिपदा के दिन प्रात इसी प्रागण मे इनकी क्षुल्लिका दीक्षा आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज के कर कमलो से सपन्न हुई है। अब इनका दीक्षित नाम 'वीरमतीजी' है। आचार्य महाराज ने सभा मे स्पष्ट शब्दो मे यह कहा था कि घर से निकलते समय इतने भयकर सघर्षो को जिस वीरता से इसने सहन किया है, आज तक ऐसी वीरता मैंने किसी मे नही देखी, इसलिये मैं इसका 'वीरमती' यह सार्थक नाम रख रहा हू। तभी सभी मे क्षुल्लिका वीरमती की जय हो, ऐसा तीन बार जयघोष हुआ था।"

मोहिनी जी ने पुनः पूछा कि 'भला दीक्षा के समय घर वालो को सूचना क्यो नही दी गई?" क्षुल्लिका ब्रह्ममती जी

ने कहा कि "चलो आचार्य महाराज जी के दर्शन करो और यह प्रश्न आप उन्ही से पूछ लो।" तभी ब्रह्ममती तत्क्षण ही उठ खडी हुईं और वीरमती का हाथ पकडकर उठा लिया, बोली-- "चलो चलें आचार्य महाराज जी के दर्शन कर आवें।" मोहिनी जी अपने नेत्रो के अश्रुओ को पोछते हुये उन दोनो साध्वियो के साथ चल रही थी। कुछ ही दूर जीने से ऊपर चढकर पहुची। ऊपर कमरे मे आचार्य श्री आसन पर विराजमान थे। उनके पास जयपुर शहर के कतिपय विशिष्ट श्रेष्ठीगण बैठे हुये थे। दोनो क्षुल्लिकाओ एव माता ने अतीव विनय से आचार्य श्री के सामने एक तरफ गवासन से बैठकर उन्हें 'नमोऽस्तु' कहकर नमस्कार किया और माता यहाँ भी अपने अश्रुओ को न रोक सकी। रोते हुये बोली —

महाराज जी! इनकी दीक्षा के समय .. .. ह सूचना कि बीच मे ही आचार्य महाराज हसते हुये बोले—

"बाई सूचना क्या देते ? और कैसे देते ? तुम्हारे से तो हमने स्वीकृति ले ही ली थी। और तुम्हारे पतिदेव तो इसे किसी भी तरह दीक्षा नही लेने देते। वे बहुत ही मोही जीव है। इस लिए मैंने सूचना नहीं भिजवाई। देखो, हमने मार्ग मे भी इसके त्याग भाव की, दृढता की, कठोर परीक्षा ले ली थी। मुझे दीक्षा के लिये सबसे बढिया उत्तम पात्र प्रतीत हुआ फिर भला मैं अब इसकी प्रार्थना को, इसकी भावना को कहाँ तक ठुकराता ? अत जो हुआ है सो अच्छा ही हुआ है अब आप सतोष रक्खो।"

माता जी के रोते हुये चेहरे को, वीरमती क्षुल्लिका जी के वैराग्यमयी चेहरे को एकटक देखते हुए और महाराज जी की

बातो को सुनते हुए जयपर के श्रेष्ठीगण अवाक् रह गये। पुन आचार्य श्री से निवेदन करने लगे—

"महाराज जी ! इतनी छोटी सी उम्र मे यह बालिका खाड की धार ऐसी जैनी दीक्षा को कैसे निभायेगी !"

महाराज ने कहा—"भाई ! इसके वैराग्य और वीरत्व को तुम लोग सुनो, आश्चर्य करोगे।"

बाराबकी मे यह चतुराहार का त्याग कर भगवान् के मदिर मे बैठ गई और दृढ निश्चय कर लिया कि जब मैं ब्रह्मचर्यव्रत ले लूँगी तभी अन्नजल ग्रहण करूँगी। १२ घण्टे तक इसने भगवान् की शरण ली। पुन अपनी माँ को समझा कर शात कर मेरे पास ले आई। माता ने भी यही कहा—महाराज जी ! यह बहुत ही दृढ हैं तभी मैंने इसे आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत दे दिया। लगभग पाँच महीने तक इसने दीक्षित साध्वी के समान ही चर्या पाली है। मात्र एक साडी मे ही माघ पौष की ठण्डी निकाली है। यह बालिका बहुत ही होनहार है इसके द्वारा जैनधर्म की बहुत ही प्रभावना होगी।"

इतना सुनकर श्रावक लोग बहुत ही प्रसन्न हुए और क्षुल्लिका वीरमती को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हुए नमस्कार किया। पुन माता मोहिनी से बोले—

"माताजी ! अब तुम्हें भी शान्ति रखनी चाहिये। अब तो इसके उज्ज्वल भविष्य की ही कामना करनी चाहिये।"

इसके बाद मोहिनी देवी कुछ देर तक आचार्य श्री के समीप ही बैठी रही। कुछ और धार्मिक चर्चायें हुईं, सुनती रही। पुन नीचे कमरे मे अपनी सुपुत्री अथवा क्षुल्लिकाजी के पास आ गईं।

वे महावीरजी क्षेत्र पर कई दिन ठहरीं तो उन्ही क्षुल्लिकाओ के निकट ही रहती थीं रात्रि मे भी वहीं सोती थी। मात्र भोजन बनाने खाने के लिए अन्य कमरे मे जाती थीं। उन्होने बारीकी से देखा—

क्षुल्लिका वीरमती अब ब्रह्ममती क्षुल्लिका को ही अपनी माँ के रूप मे देखती हैं। प्रात काल से रात्रि मे सोने तक उनकी सारी चर्या उनके साथ ही चलती है। साथ ही बाहर जाती है, साथ ही मन्दिर के दर्शन करने जाती है और साथ ही आचार्य श्री के दर्शन करने जाती है। इनका आहार बहुत ही थोडा है, आहार मे नमक है या नही, दूध मे शक्कर है या नही इन्हे कुछ परवाह नहीं है। जब तक वे रही आहार देने जाती थी। जैसे-तैसे अपने अश्रुओ को रोककर आहार मे एक दो ग्रास देकर अपना जीवन धन्य समझ लेती थी और भावना भाती थी—

'भगवन्! ऐसा दिन मेरे जीवन मे भी कभी न कभी अवश्य आवे, मैं भी सब कुटुम्ब परिवार का मोह छोडकर दीक्षा लेकर पीछी कमण्डलु और एक साडी मात्र परिग्रह धारण कर अपनी आत्मा की साधना करूँगी।"

क्षुल्लिका वीरमती उस समय आचार्य श्री की आज्ञा से भगवती आराधना का स्वाध्याय कर रही थी। वसुनन्दिश्रावकाचार तथा परमात्मप्रकाश का भी स्वध्याय कर रही थी। माता मोहिनी मध्याह्न मे उनके पास बैठ जाती तो क्षु० वीरमती उन्हे उन ग्रन्थो के महत्त्वपूर्ण अशो को सुनाने लगती वे ध्यान से सुनती और प्रश्नोत्तर भी चलता। यह सब देखकर क्षु० ब्रह्ममती माता जी बहुत ही प्रसन्न होती। माता मोहिनी ने एक दिन एकात देखकर क्षुल्लिका वीरमती जा से कहा—

'माताजी! इस समय घर का वातावरण बहुत ही कारु-णिक है। रवीन्द्र कुमार आज छह महीने हो गये 'जीजी-जीजी' कहकर रोया करता है, बहुत ही दुबला हो गया है। सभी बच्चे अपनी मैना जीजी को पुकारा करते है और तुम्हारे पिता तो पागल जैसे हो गये हैं। जब शाम को दुकान से घर आते हैं तब बाहर के अहाते से ही—

"अरे बिटिया मैना! तुम कहाँ चली गई।"

ऐसा कहते हुए और रोते हुए घर मे घुसते हैं और चाबी का गुच्छा एक तरफ डालकर बैठ जाते है। अन्मनस्क चित्त सोचते ही रहते है। बडी मुश्किल से कुछ खाना खाते हैं। क्या करू ? कैसे करू ? मेरा मन भी अब घर मे नहीं लगता है। मन बहलाने के लिये ही, पता कितनी मुश्किल से जीवन मे पहली बार तुम्हारे पिता के अतिरिक्त मैं अकेली इन कल्याणचन्द के साथ यात्रा करने आ गई हू कि शायद वहाँ मेरी बिटिया मैना कही मिल जायेगी। भाग्य से आपका दर्शन हो गया है। ··"

इतना कहते-कहते वे रोने लगी। तब क्षुल्लिका वीरमती ने उन्हे सान्त्वना दी और समझाया—

'देखो! अनन्त ससार मे भ्रमण करते हुए हमे और आपको तथा सभी को अनन्त काल निकल गया है। भला इसमे कौन किसकी माता है। यह सब झूठा ससार है, ··· इसमे मात्र एक धर्म ही सार है।"

इत्यादि रूप मे समझाने पर जब माता मोहिनी का मन कुछ हल्का हो गया तब वे पुन बोली—

"माताजी! किसी क्षण तो मेरा भाव हो जाता है कि मैं

भी दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूँ। किन्तु यह छोटी सी बालिका (९ महीने की) मालती अभी मेरी गोद मे है। घर मे छोटे-छोटे बच्चे मेरे लिये बिलख रहे होगे। ... क्या करूँ ? गृहस्थाश्रम की इतनी बडी जिम्मेवारी इस समय मेरे ऊपर है कि कुछ सोच नही सकती हू ...।"

इस प्रकार से माता मोहिनी ने अपनी पुत्री मैना के साध्वी रूप मे प्रथम बार दर्शन किये और जैसा कुछ देखा सुना था वहाँ से घर आकर अपने पतिदेव को सुनाया, बच्चो को सुनाया। दीक्षा के समाचार सुनकर पिता आहत हुये, सहसा भूमि पर हाथ टेककर बैठ गये। और दीर्घ नि श्वास छोडते हुये बोले—'ओह ! मेरी प्यारी बिटिया मैना अब मेरे घर कभी नही आयेगी।' जोर-जोर से रोन लगे। मोहिनी जी ने सान्त्वना दी, समझाया और कहा—

"रो-रो कर अपनी आँख क्यो खराब करते हो ? जब चाहे तब बिटिया मैना के दर्शन करने चलना, अब तो वे जगत्पूज्य हो गई हैं, माताजी बन गई हैं।' इसके बाद भी बहुत दिनो तक घर मे मैना बिटिया की क्षुल्लिका वीरमती माता जी, आचार्य देशभूषण महाराज जी की और त्याग धर्म की चर्चा चलती रही। सभी भाई-बहन जीजी के अर्थात् क्षुल्लिका वीरमती जी के दर्शन के लिये आग्रह करते रहे। और समय बीतता गया। दो माह-वैशाख, ज्येष्ठ ही व्यतीत हुये थे कि सघ महावीर जी से विहार कर पुन लखनऊ होकर दरियाबाद—टिकैतनगर से ६ मील दूरी पर आ गया।

[६]

क्षु० वीरमती के प्रथम चातुर्मास का पुण्यलाभ

एक दिन मन्दिर से आकर पिताजी बोले—

"आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज अपने संघ सहित दरियाबाद आये हुये हैं। यहाँ से सतूमल आदि कुछ श्रावक महाराज जी के पास नारियल चढाकर चातुर्मास के लिये प्रार्थना करने गये थे। किन्तु लोगो का ऐसा कहना है कि मैना के बाराबकी मे केशलोच करते समय जो उपद्रव हुआ था और उनके पिता छोटेलाल जी ने भी बहुत ही विरोध किया था सो जब तक वे महाराज जी के पास प्रार्थना करने नही आयेंगे तब तक महाराज जी यहाँ चातुर्मास करने की स्वीकृति नही देंगे।"

माँ ने कहा—"हाँ, आज मंदिर जी मे कुछ ऐसी ही चर्चा मैंने भी सुनी है। मैं तो मंदिर जी मे किसी से बातें करती नही हूँ अतः कुछ पूछा नही है। तो ठीक है आप दरियाबाद चले जाओ, अपनी बिटिया के दर्शन भी कर लेवो और महाराज जी के समक्ष नारियल चढाकर प्रार्थना भी कर लेना।"

पिताजी ने कहा—"हाँ मेरी भी यही इच्छा है अब मैं भोजन करके तत्काल ही जाना चाहता हूँ।"

पिताजी दरियाबाद पहुचे। कई एक श्रावक टिकैतनगर से और भी उनके साथ थे। वे सब पहुचकर सबसे पहले क्षुल्लिका श्री वीरमती जी के स्थान पर पहुचे। वहाँ दोनो क्षुल्लिकायें एक तख्त पर बैठी हुई थी। पिता ने अपनी पुत्री को देखा, उनके हृदय मे मोह का वेग उमडा। वे अपने को नही रोक सके और सहसा रो पडे। वही पर बैठे हुये स्थानीय कुछ वृद्ध पुरुषो ने उन्हे समझाया सान्त्वना दी और कहा—

"छोटेलाल जी ! आप धन्य है आपकी पुत्री मैना जगत् मे पूज्य जगन्माता बन गई हैं। अब आपको प्रसन्न होना चाहिये, रोने की भला क्या बात है ?

जैसे-तैसे उन्होने अपने आसू रोके, क्षुल्लिकाओं को नमस्कार किया। पुनः पास मे बैठ गये और बोले —

"माताजी ! अब यह अपना चातुर्मास आप टिकैतनगर ही कीजिये।"

माताजी ने कोई उत्तर नही दिया। तो वे पुन पुन आग्रह करने लगे तब माताजी ने कहा—

"यह विषय आचार्य महाराज का है, मेरा नही है वे जहाँ चातुर्मास करेंगे मै वही रहूगी। अतः आप आचार्य महाराज से निवेदन कीजिये।"

इतना सुनकर वे सब लोग आचार्य श्री के पास पहुच गये। नमोऽस्तु करके बैठ गये। तभी महाराज जी बोल उठे —

"कहो छोटेलाल जी ! अपनी पुत्री मैना के दर्शन कर लिये।"

वे बोले —

"हाँ, महाराज जी ! अब वे पुत्री कहाँ रही ! अब तो वे माताजी बन गई हैं।"

फिर हँसते हुये बोले—

"महाराज जी ! अब यह चातुर्मास आपको टिकैतनगर ही करना है।"

महाराज जी हँस दिये और बोले—

"हाँ, तुम्हे तो अपनी माताजी के चातुर्मास कराने की लग रही है।"

सब लोग हँसने लगे—

"महाराज जी ! हमारे लिए पहले तो आप ही हैं अनन्तर वो हैं। गतवर्ष भी हम टिकैतनगर के लोगो ने आपके चातुर्मास कराने मे लाखो प्रयत्न किय किन्तु भाग्य ने साथ नहीं दिया। अब की बार तो हम लोग आपकी स्वीकृनि लेकर ही जावेंगे।"

बहुत कुछ चर्चा वार्ता के अनन्तर महाराज जी ने आखिर मे टिकैतनगर चातुर्माम की स्वीकृति दे ही दी। यद्यपि दरियाबाद और लखनऊ के श्रावको का भी विशेष आग्रह था फिर भी टिकैतनगर वालो का पुण्य काम कर गया और चातुर्मास स्वीकृति का समाचार मिलते ही टिकैतनगर मे हर्ष की लहर दौड गई।

सन् १९५३ मे आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने वर्षायोग स्थापना टिकैतनगर मे की। सघ मे क्षु० ब्रह्ममती माता जी और क्षु० वीरमती माताजी थीं। प्रतिदिन आचार्य महाराज का प्रवचन होता था और सायकाल मे श्रावक-श्राविकाये अधिक सख्या मे एकत्रित होकर गाजे बाजे के साथ आचार्य श्री की आरती करते थे। रात्रि मे भजनो का कार्यक्रम रहता था। ऐसे मधुर वातावरण मे चातुर्मास सपन्न हो रहा था। प्रतिदिन माँ मोहिनी जिनेन्द्र देव की पूजा करके गुरु का दर्शन करती तथा प्रतिदिन वे घर मे चौका लगाती थीं। तीन साधु थे और गाँव मे चौके १७-१८ थे, अत १०-१२ दिन मे ही घर मे आचार्य श्री के आहार का लाभ मिल पाता था ! फिर भी माँ समझती थी कि हमने पडगाहन किया तो हमे आहार दान का पुण्य मिल ही गया है। क्षु० ब्रह्मती जी के आहार तो बहुत बार हुए थे किन्तु क्षु० वीरमती के आहार का लाभ कम ही मिलता था। एक दिन

माताजी का पडगाहन हो गया वे घर मे आई किन्तु आगन मे कुछ गीला था अत वे उल्टे पैर वापस जाने लगी, उस समय पिताजी हडबडा कर जल्दी से सूखती हुई अपनी धोती लेकर आँगन पोछने लगे किन्तु माताजी वापस लौट गई। उस दिन पिता ने ठीक से भोजन नही किया उन्हे बहुत ही दु:ख रहा।

पिता प्रतिदिन क्षु० वीरमती जी के निकट बैठ जाते थे, और घण्टो बैठे रहते थे। माताजी अपना शिर नीचा किये स्वाध्याय करती रहती थी कुछ भी नही बोलती थीं। वे घर आकर बहुत ही उदास हो जाया करते थे और माँ मोहिनी से कहते—

"क्या करू घण्टो बैठा रहता हूँ माताजी एक शब्द भी नही बोलती हैं, मुझे बहुत ही दु ख होता है।" तब माँ कहतीं—

"तुम दु.ख म' करो उनका बिल्कुल ही नहीं बोलने का स्वभाव बन गया है। और शायद लोग कहेंगे कि ये अपने माता-पिता से बातचीत किया करती हैं इसी सकोच मे नही बोलती होगी।"

फिर भी पिताजी कहते—

"असल मे घर मे वो सबसे ज्यादा मेरे से ही बोलती थी सदा मुझे धर्म की बातें सुनाया करती थीं। स्वाध्याय के लिये आग्रह किया करती थी अब तो कुछ भी नही कहती हैं।"

इस प्रकार से समय व्यतीत हो रहा था। क्षु० वीरमती जी आचार्य श्री के पास १०-१५ दिन गोम्मटसार जीवकाण्ड का अध्ययन करती रही। गाँव के वयोवृद्ध सुप्रतिष्ठ व्यक्ति श्री पन्नालाल जी अधिकतर महाराज जी के पास ही बैठे रहते थे। उन्होने क्षु० माताजी का क्षयोपशम देखा, आश्चर्य करने लगे।

ये माता जी एक दिन मे २०—२० गाथायें याद करके सुना देती हैं। बहुत ही प्रसन्न हुए। ७०-८० गाथा होते के बाद महाराज जी ने कहा—

"वीरमती ! तुम्हारी बुद्धि अच्छी है उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध है अत तुम्हे गुरु की आवश्यकता नहीं है तुम तो स्वय ही गाथायें रट लो और उनका अर्थ याद कर लो।"

तबसे माता जी ने स्वय याद करना प्रारम्भ कर दिया था।

माँ की ममता

क्षु० वीरमती जी स्वाध्याय बहुत किया करती थीं दिन मे किसी समय भी पुस्तक को हाथ से नही छोडती थी इससे इनकी आँखो मे बहुत ही तकलीफ रहने लगी। एक वैद्य ने कहा—रात मे सोते समय इनकी आँखो पर बकरी के दूध मे भिगोकर रूई का फोया रख दिया करो। तब ब्रह्ममती माताजी ने शाम को माता मोहिनी से कहा कि तुम क्षु० वीरमती माताजी की आँखो पर बकरी के दूध का फोया रख जाया करो। उन्होंने सोचा, बकरी के दूध की अपेक्षा माँ का दूध का फोया अत्यधिक गुण करेगा इसलिए वे रोज रात्रि मे नव बजे आकर बैठ जाती। जब ये क्षु० वीरमती जी सो जाती तब वे अपने दूध का फाहा बनाकर उनकी आँखों पर रखकर चली जाती। उस समय मालती मात्र एक साल की ही उनकी गोद मे थी।

प्रभावना

टिकैतनगर चातुर्मास मे अनेक धार्मिक आयोजन हुये। एक बार आचार्य महाराज ने सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन बहुत ही सुन्दर ढग से करवाया। ध्वजा के आकार जैसा मण्डल

बनवाया। श्रावकों ने बड़े ही उत्साह से मिलकर रग-बिरगे चावल रगकर सुन्दर पचरगी ध्वजा के समान मण्डल तैयार कर दिया। विधान का कार्यक्रम बहुत ही सफल रहा। अन्त मे हवन मे कई एक नई साडियाँ हवन कुण्डो मे नीचे रख दी गई। ऊपर मात्र पत्ते बिछा दिये गये। महाराज जी ने अग्नि स्तम्भन आदि विशेष मन्त्रो से हवन कुण्डो को मत्रित कर दिया और हवन विधि करवा दी। पूर्णाहुति के अनन्तर शाम को अग्नि शात हो जाने पर सभी साडियाँ निकाली गई बिना बाधा के वे साडियाँ चमचमाती हुई निकल आई। इससे उस प्रात मे आचार्य श्री के मन्त्र ज्ञान की बहुत ही प्रशसा हुई। इस प्रभावना पूर्ण कार्य मे माता मोहिनी ने भी रुचि से भाग लिया था।

चातुर्मास समाप्ति के बाद दक्षिण कोल्हापुर जिले से क्षु० विशालमती माताजी एक महिला के साथ आचार्यश्री के दर्शनार्थ पधारी। उन्होने सघ मे एक छोटी सी क्षुल्लिका को देखा तो उन्हें उन पर बहुत ही वात्सल्य उमड पडा। वे क्षु० वीरमती को अपनी गोद मे सुला लेती थीं उन्हें बहुत ही प्यार करती थी। उनका असीम प्रेम देखकर माता मोहिनी और पिता छोटेलाल के हर्ष का पार नही रहा। क्षु० विशालमती दीक्षा से पूर्व एक कन्या पाठशाला की सचालिका और कुशल अध्यापिका रह चुकी थी। आचार्य महाराज का उन पर असीम वात्सल्य था। क्षु० विशालमती टिकैतनगर निवासियो की देवभक्ति, गुरुभक्ति देखकर बोली—

"इतने वर्ष के दीक्षित जीवन मे मैंने आज तक इतना भक्तिमान, गाँव नही देखा है।"

वे माता मोहिनी को भी बहुत ही वात्सल्य भाव से बुलाती थीं। उनसे कु० मैना के बारे मे कुछ न कुछ प्रारम्भिक बातें पूछा करती थीं और वे पिता छोटेलाल को कहा करती थी कि—

"आप सच्चे रत्नाकर हैं जो कि ऐसा उत्तम रत्न उत्पन्न कर समाज को सौंप दिया है।"

इस सब श्लाघनीय शब्दो से माता-मोहिनी और पिता छोटेलाल जी मन मे क्षु० वीरमती के उज्ज्वल भविष्य की सोचा करते थे और उस पूर्व के स्वप्न को याद कर हर्ष विभोर हो जाते थे कि जब गृहत्याग से लगभग छह माह पूर्व मैना ने स्वप्न देखा था कि 'मैं श्वेत वस्त्र पहन कर और पूजन की सामग्री हाथ मे लेकर घर से मन्दिर जा रही हूँ तथा आकाश मे पूर्ण चन्द्रमा दिख रहा है वह हमारे साथ चल रहा है। उसकी चाँदनी भी हमारे ऊपर तथा कुछ आस-पास ही दिख रही है। स्वप्न देखकर जागने के बाद मैना ने वह स्वप्न अपने माता-पिता को सुनाया था।

वैयावृत्ति भावना

सघ मे क्षु० ब्रह्ममती माताजी थी। चातुर्मास मे उन्हें एकातर से ज्वर (मलेरिया बुखार) आता था। उन्होने बताया मुझे दो-तीन वर्षों से चौमासे मे यह बुखार आने लगता है। बुखार मे वे बहुत ही बेचैन हो जाती थीं। कभी-कभी बुखार की गर्मी से बडबडाने लगती थी। उनकी ऐसी अस्वस्थता मे क्षु० वीरमती उनके अनुकूल उनकी खूब ही वैयावृत्ति किया करती थी। आचार्य श्री भी यही उपदेश देते थे कि—

"देखो, वीरमती ! वैयावृत्ति से बढकर और दूसरा धर्म नही है। इस वैयावृत्ति से तीर्थंकर प्रकृति को बध कराने वाला ऐसा पुण्य भी सचित हो जाता है।" इस प्रकार गुरु के उपदेश से तथा स्वय के धर्म सस्कारो से ओतप्रोत क्षु० वीरमती सतत ही स्वाध्याय वैयावृत्ति आदि धर्माराधना म लगी रहती थी। माता मोहिनी भी उनके अनुकूल आहार व्यवस्था, औषधिव्यवस्था और वैयावृत्ति मे भाग लेती रहती थीं।

मौनाध्ययनवृत्तित्व

आचार्यश्री ने एक बार कहा था कि—

"वीरमती ! जब तक तुम अध्ययन मे तत्पर हो तब तक अधिकतम मौन रखो क्योकि मौनाध्ययनवृत्तित्व' यह एक बहुत बडा गुण है। इसी से तुम इच्छानुसार ग्रन्थो का अध्ययन कर सकोगी।"

तब से वीरमती जी ने गुरु की इस बात को गाँठ मे ही मानो बाँध लिया था। चूँकि उन्हें बचपन से ही यह गुण (कम बोलना) प्रिय था। यही कारण था कि वे सभी से बहुत कम बोलती थी।

शिष्या विद्याबाई

महावीरजी से ही क्षु० वीरमती माताजी के साथ मे एक विद्याबाई नाम से महिला रहती थी। वह सदैव माताजी की आज्ञा मे चलती थी और अध्ययन करती रहती थी। उसकी भी सरल भावना, गुरु भक्ति और वैयावृत्ति का प्रेम अच्छा था।

इस प्रकार से धर्मप्रभावना के द्वारा अमृत की वर्षा करते हुये ही मानो चातुर्मास के बाद आचार्यश्री ने सघ सहित टिकैत-

नगर से विहार कर दिया। उस समय माता मोहिनी को बहुत ही दुःख हुआ किन्तु क्या कर सकती थी। अब वह अपना मन प्रतिदिन देवपूजा, स्वाध्याय और जिन मदिर मे ही अधिक लगाती रहती थी। घर की जिम्मेवारी होने से ही वे घर मे आती थी, अन्यथा शायद वे घर मे भी न आती। उनके इस प्रकार ज्यादा समय मदिर जी रहने से कभी-कभी पिताजी छोटेलाल जी चिढ़ जाते थे और मोहिनी जी के ऊपर नाराज भी होने लगते थे क्योकि इतने बडे परिवार की व्यवस्था छोटी-छोटी बालिकाओ के ऊपर तो नही चल सकती थी। अत इच्छा न होते हुए भी माता मोहिनी को अपने गृहस्थाश्रम को विधिवत् सम्भालना पडता था।

[७]

अन्य पुत्र-पुत्रियो का विवाह

मैना की दीक्षा के बाद ही छोटेलाल जी ने बहुत ही जल्दी करके सोलह वर्ष की वय मे ही शातिदेवी का विवाह 'मोहोना' के सेठ गुलाबचद के सुपुत्र राजकुमार के साथ सम्पन्न कर दिया था। उनके घर मे ही चैत्यालय था वहाँ पर शाति ने अपने धर्म को सम्यग्दर्शन को अच्छी तरह से पाला था।

चातुर्मास के अनन्तर कुछ दिन बाद छोटेलाल जी ने भाई कैलाशचद का विवाह वही के निवासी लाला शाति प्रसाद जी की सुपुत्री चदा के साथ सम्पन्न कर दिया। अब कैलाशचद भी अपनी सोलह वर्ष की वय मे ही गृहस्थाश्रम मे प्रवेश कर कुशल व्यापारी बन गये थे।

मैना के दीक्षा ले लेने से इधर इस घर के वातावरण मे

सतत धर्म की चर्चा ही रहा करती थी। वैसे परम्परागत सभी भाई-बहन नित्य ही मंदिर जाते थे, नियमित स्वाध्याय करते थे और धार्मिक पाठशाला मे धर्म का अध्ययन करते रहते थे।

कैलाशचन्द को रोकना

एक दिन कैलाशचन्द को अपनी जीजी मैना की अर्थात् क्षु० वीरमती माताजी की विशेष याद आई और उनके मन मे उनके पास जाने का वही रहने का भाव जाग्रत हुआ। यह बात उन्होने घर मे किसी से नही बताई और सहमा बिना कहे घर से निकल पडे। चतुराई से टिकैतनगर से रवाना होकर दरियाबाद स्टेशन पर आए। कही का टिकट लिया और रेल मे बैठ गए। सोचा कही दक्षिण मे पहुचकर माताजी का पता लगा लूंगा। इधर कैलाशचन्द के घर मे न आने से घर मे हलचल मची। चदारानी भी घबराई।

"यह क्या हुआ। कही मेरे पतिदेव भी माताजी के सघ मे पहुचकर दीक्षा न ले लेवे ?'

बस उसी समय चारो तरफ से खोजबीन चालू हो गई। तभी कैलाशचद के ससुर श्री शातिप्रसाद जल्दी से दरियाबाद स्टेशन पहुच गये और जो गाडी मिली उसी मे बैठ गये। वह गाडी आगे जब किसी भी स्टेशन पर रुकती तब उसी रेल के एक-एक डिब्बे मे कैलाशचन्द को ढूंढने लगते। आखिर भाई कैलाशचद उन्हें मिल गए और उन्होने जैसे-तैसे समझा-बुझाकर आग्रह, सत्याग्रह कर भाई कैलाशचद को वापस ले आने का पूरा प्रयास किया जिसमे वे सफल हो गये और कैलाशचन्द को घर आना ही पड़ा। तब कहीं पिता के जी मे जी आया।

आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी के दर्शन —

सन् १९५७ की बात है। आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी महाराज ने सुना आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज अपने विशाल संघ सहित जयपुर मे विराजमान हैं अब सल्लेखना तक वे जयपुर ही रहेंगे। जयपुर की खानिया के खुले स्थान पर वे अपनी सल्लेखना करना चाहते हैं। उन्हें अपने निमित्त ज्ञान से यह स्पष्ट हो गया है कि इस चातुर्मास मे (सन् १९५७ मे) उनकी सल्लेखना निश्चित है। आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से महावीरकीर्ति जी महाराज ने प्रारम्भ मे क्षुल्लक दीक्षा ली थी। इसलिए वे इन्हे अपना गुरु मानते थे। उनके हृदय मे अन्त मे गुरु की वैयावृत्ति करने की उनके सल्लेखना के समय उपस्थित रहने की उत्कट भावना जाग्रत हो उठी। अतः पूज्य श्री ने अपने संघ को लेकर तीर्थराज सम्मेदशिखर से विहार कर दिया। वे अयोध्याजी क्षेत्र पर आए। तब टिकैतनगर के श्रावको ने अत्यधिक आग्रह कर उनका विहार टिकैतनगर की तरफ करवा लिया। मोहिनी जी ने अयोध्या आकर आचार्य संघ का दर्शन किया और उनके निकट शुद्धजल का नियम लेकर आहार देने लगी। पुनः टिकैतनगर आने तक वे संघ के साथ रही। चौका बनाकर आहार देते हुए अपने गाँव तक संघ को लाईं। निसर्गतः वे साधुओ को अपना परिवार ही समझती थी।

संघ गाँव मे ठहरा हुआ था, माता मोहिनी जी ने भी चौका लगाया हुआ था। एक-दो दिन तक आचार्य महाराज का आहार न होने से उन्हें बडी बेचैनी-सी हुई। यद्यपि प्रतिदिन अन्य कई एक मुनि आर्यिका आदि के आहार का लाभ मिल रहा था। तभी उन्हें पता चला कि आचार्य महाराज प्रायः जोडे का नियम

लेकर आहार को निकलते हैं। फिर क्या था मोहिनी जी ने अपने पति से अनुरोध किया कि—

"आप भी शुद्ध वस्त्र पहनकर पडगाहन के लिए खडे हो जावें।"

यद्यपि पिताजी जब भी कानपुर आदि जाते थे घर से पूडियाँ ले जाते थे। वे ही खाते थे। कभी भी बाजार का या होटल का नही खाते थे अथवा कभी-कभी तो वे दाल-चावल ले जाते थे जिससे खिचडी बनाकर खा लेते थे। फिर भी शुद्धजल का नियम एक हौआ सा प्रतीत होता था अत पहले तो वे कुछ हिचकिचाये किन्तु आचार्यश्री को उधर आते देख वे भी स्नान कर शुद्धवस्त्र पहनकर कलश और नारियल लेकर जोडे से खडे हो गये। भाग्य से आचार्यश्री का नियम वही पर मिल गया और पिता ने भी शुद्धजल का नियम कर बडे ही भाव से जोडे से नवधाभक्ति करके आचार्यश्री को आहारदान दिया। उस समय उनको इतना हर्ष हुआ कि कहने में भी नही आ सकता था। आहार के बाद जब ये लोग गुरुदेव की आरती करने लगे तब माता मोहिनी की आँखो मे आँसू आ गये। आचार्यश्री को मालूम था कि इनकी पुत्री मैना ने आचार्य देशभूषण जी के पास मे क्षुल्लिका दीक्षा ले ली है। उसी की याद आ जाने से यह माता विह्वल हो रही है। तब उन्होने उस समय माता-पिता को बहुत कुछ समझाया और कहा—

"देखो, तुम्हारी कन्या ने दीक्षा लेकर अपने कुल का उद्धार कर दिया है।"

उस समय ब्र० चांदमल जी गुरुजी ने भी धर्मवात्सल्य से

उनकी प्रशसा की और उनके पुण्य की बहुत कुछ सराहना की।

इस तरह जब तक सघ गाँव मे रहा माता मोहिनी आहारदान देती रही और उपदेश का, आर्यिकाओं की वैयावृत्ति का लाभ लेती रही।

पुत्री श्रीमती का निकलने का प्रयास

जब सघ वहाँ से विहार कर दरियाबाद पहुचा तब टिकैत-नगर क कुछ श्रावक श्राविका और बालक बालिकायें भी सघ के साथ पैदल चल रहे थे। उनमे एक बालिका भी नगे पैर बेभान चली आ रही थी। ब्र० चाँदमली गुरुजी को यह मालूम हो गया था कि यह कन्या पिता छोटेलालजी तृतीय पुत्री है और क्षु० वीरमती की बहन हैं इसका नाम श्रीमती है। यह शादी नही करना चाहती है। सघ मे रहना चाहती है। इसलिये घर वालो की दृष्टि बचाकर यह पैदल चली आ रही है। इसी बीच जब घर मे श्रीमती के जाने की बात विदित हुई तब हो-हल्ला शुरू हो गया। यह सुनते ही पिता छोटेलालजी के बडे भाई बब्बूमल वहाँ से इक्के पर बैठकर जल्दी से दरियाबाद आ गये। उस कन्या को समझाने लगे किन्तु जब वह कथमपि जाने को तैयार नही हुई तब मसला महाराज जी के पास आ गया। ब्र० चाँदमल जी ने ताऊ को बहुत कुछ समझाने का प्रयास किया किन्तु सब निष्फल गया। वह कन्या श्रीमती बहुत ही रो रही थी। कुछ आर्यिकाओ ने भी ताऊ जी को समझाना चाहा, परन्तु भला वे कब मानने वाले थे अत उस समय कन्या को सीधे सादे लौटते न देख आगे बढे। उसको गोद मे उठा लिया और इक्के ने बिठाकर जबरदस्ती घर ले आए। तब कही घर

मे शाति हुई और पिताजी का मन ठण्डा हुआ। बहन श्रीमती अपने भाग्य को कोसकर रह गई और अपनी पराधीन स्त्रीपर्याय की निन्दा करती रही। कुछ दिनो तक उनका मन बहुत ही विक्षिप्त रहा अन्त मे पूजा और स्वाध्याय मे तथा गृहकार्य और भाई बहनो की संभाल मे उन बातो को भूल गई। इनका विवाह बहराइच के सेठ सुखानन्द के पुत्र प्रेमचन्द के साथ हुआ है।

इधर जब आचार्य सघ जयपुर पहुचा तब वहाँ देखा कि क्षुल्लिका वीरमती यही पर आचार्य श्री वीरसागर जी के सघ मे आर्यिका ज्ञानमती जी बन चुकी हैं। तब गुरुजी चाँदमल जी ने माता जी से यह श्रीमती कन्या की घटना सुनाई। माताजी को भी एक क्षण के लिए दु ख हुआ—वे कहने लगी—

"अहो! मोही प्राणी अपने मोह से आप तो ससार सागर मे डूब ही रहे है। साथ ही निकलने वालो को भी जबरदस्ती पकड-पकड कर डुबो रहे है। यह कैसी विचित्र बात है। ओह! मोह की यह कैसी विडम्बना है?

पुन मन ही मन सोचती हैं—

सचमुच मे मैंने पूर्व जन्म म कितना पुण्य किया होगा जो कि मेरा पुरुषार्थ सफल हो गया और मैं इस गृहकूप से बाहर निकल आई हू। आज मेरा जीवन धन्य है। मैंने क्षुल्लिका दीक्षा के बाद यह स्त्रीपर्याय मे सर्वोत्कृष्ट आर्यिका दीक्षा भी प्राप्त कर ली है। आश्चर्य है कि यह सयम निधि सब को सुलभ नही है। विरले ही पुण्यवानो को मिलती है।"

कुछ दिनो तक सघ की आर्यिकायें, क्षुल्लिकाये और ब्रह्मचारिणीगण आर्यिका ज्ञानमती माताजी को देखते ही 'श्रीमती

के पैदल आ जाने की और उनके ताऊ जी द्वारा उठाकर ले जाने की चर्चा सुना दिया करते थे। माताजी भी गम्भीरता से यही उत्तर दे देती थीं कि भाई ? शाति ने भी घर से निकलना बहुत चाहा था किन्तु नही निकल सकी, कैलाशचद को भी रास्ते से वापस ले जाया गया है और श्रीमती को भी ताऊजी ले गये हैं। ब्र० श्रीलालजी कहा करते कि यह कोई पूर्वजन्म के सस्कार ही हैं कि जो उन भाई बहनो के भाव भी घर से निकलकर साधु सघो मे रहने के हो रहे हैं।

[८]

आर्यिका दीक्षा के समाचार

सन् १९५५ मे क्षु० विशालमती जी के साथ (जिला सोलापुर) क्षु० वीरमती जी ने म्सवड मे चातुर्मास किया था। वहाँ से कुथलगिरि सिद्ध क्षेत्र लगभग ८० मील दूर होगा। क्षु० विशालमती ने वर्षायोग स्थापना के समय यह घोषित कर दिया था कि आचार्य शातिसागर जी महाराज की सल्लेखना के समय हम दोनो चातुर्मास के अन्दर भी कुथलगिरि जावेगी। एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर मे क्षु० विशालमती जी ने स्वप्न देखा कि सूर्य अस्ताचल को जा रहा है और उसी रात्रि मे क्षु० वीरमती जी ने स्वप्न में देखा कि मानस्तम्भ के ऊपर का शिखर गिर गया है। प्रात सामायिक आदि से निवृत्त हो दोनो माताजी परस्पर मे अपना-अपना स्वप्न सुनाने लगी। दोनो ने यह सोचा कि आज किन्ही गुरु का अशुभ समाचार अवश्य आवेगा। मध्याह्न मे ही उन्हें समाचार मिला कि चारित्रचक्रवर्ती आचार्यदेव श्री शान्तिसागर जी महाराज जी ने यम सल्लेखना

ले ली है। अब माताजी ने समाज को उपदेश मे सल्लेखनारत गुरु के दर्शन का महत्त्व बतलाया और कतिपय श्रावक श्राविकाओ के साथ कुन्थलगिरि पहुच गई। वहा पर गुरुदेव का दर्शन कर मन सतुष्ट हुआ।

इसके पूर्व क्षु० वीरमतीजी ने बारामती मे आचार्य श्री से आर्यिका दीक्षा की याचना की थी तब आचार्य श्री ने कहा था —कि वीरसागर जी के सघ मे अनेक वयोवृद्ध आर्यिकाये हैं तुम्हारी उम्र अभी बहुत छोटी है अत तुम वही जाकर आर्यिका दीक्षा ले लेना। मैंने अब दीक्षा नही देने का नियम कर लिया है। यहाँ पर पूज्यश्री ने एक दिन अपना आचार्यपट्ट वीरसागर जी को परोक्ष मे ही प्रदान कर दिया और उनके लिये सघपति गेंदनमल से पत्र लिखाकर ब्र० सूरजमल के हाथ भेज दिया। क्षु० वीरमती जी, क्षु० विशालमती के साथ और भी अन्य क्षुल्लिकाओ के पास वहा पर लगभग एक माह रही और आचार्य श्री की सल्लेखना के बाद म्सवड आकर वर्षायोग पूर्णकर वहा की कु० प्रभावती को दशवी प्रतिमा देकर और सौभाग्यवती सोनुबाई को छठी प्रतिमा देकर दोनो को साथ लेकर क्षु० विशालमती जी की आज्ञा से सन् १९५५ मे ही जयपुर मे आचार्य श्री वीरसागर जी के सघ मे आ गई थी। क्षु० वीरमती जी ने आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से सन् १९५६ मे माधोराजपुरा ग्राम मे वैशाख कृष्ण दूज के पवित्र दिवस आर्यिका दीक्षा ली थी और उस समय आचार्य श्री ने इनका नाम आर्यिका ज्ञानमती रक्खा था जो कि उस समय ज्ञानगुणो की वृद्धि से अन्वर्थ ही था। उसी समय कु० प्रभावती को

क्षुल्लिका दीक्षा हुई थी जिनका नाम क्षु० जिनमती रक्खा गया था। अनन्तर सन् १९५६ मे जयपुर मे खजाची की नशिया मे सौ० सोनुबाई को आचार्य श्री ने क्षुल्लिका दीक्षा देकर उनका नाम 'पद्मावती' रक्खा था। खानिया मे सोलापुर प्रान्त की ब्र० माणक बाई ने क्षुल्लिका दीक्षा ली थी। इनका नाम चन्द्रमती था। ये तीनो ही क्षुल्लिकाये आ० ज्ञानमती माना जी के पास मे रहती थी।

सन् १९५७ मे खानिया मे स्थित चतुर्विध सघ और आ० महावीरकीर्ति महाराज के समक्ष आसोज वदी अमावस को आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की ध्यानमुद्रा मे महामन्त्र को जपते हुये उत्तम समाधि हो गई। उसके बाद आ० महावीरकीर्ति महाराज ने आ० वीरसागर जी के प्रथम शिष्य श्री शिवसागर जी को आ० वीरसागर जी महाराज का आचार्य पट्ट प्रदान कर दिया। बाद मे आ० श्री महावीरकीर्ति महाराज नागौर की तरफ विहार कर गये। और आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज अपने चतुर्विध सघ को लेकर गिरनार जी निर्वाण क्षेत्र यात्रा के लिये विहार कर गये। सघ यात्रा के लिये दिसम्बर १९५७ मे निकला था, लगभग १९५८ मार्च मे फाल्गुन की आष्टान्हिका मे सिद्ध क्षेत्र मे पहुच गया। सबने निर्वाण क्षेत्र की वन्दनायें की। वहा पर क्षु० चन्द्रमती और क्षु० पद्मावती जी की आर्यिका दीक्षाये हुई।

यहा पर आर्यिका ज्ञानमती माताजी सघस्थ क्षुल्लिका जिनमतीजी और ब्र० राजमल जी को राजवार्तिक, गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि का अध्ययन कराती थी। उस अध्ययन मे स्वाध्याय के प्रेम से आर्यिका सुमतिमती माताजी, आर्यिका

चन्द्रमती जी और आर्यिका पद्मावती जी भी बैठती थी। ब्र० श्रीलाल जी भी प्राय बैठते थे और प० पन्नालाल जी सोनी भी कभी-कभी बैठ जाया करते थे।

आ० चन्द्रमती माताजी ज्ञानमती माताजी के ज्ञान से बहुत ही प्रभावित थी, उनकी चर्या और सरलता आदि गुणो से भी बहुत ही प्रसन्न रहती थी। वे माताजी से कभी-कभी कहा करती कि—

"जब आपके माता-पिता जीवित हैं तो भला वे लोग आपके दर्शन करने क्यो नही आते ?" यह सुनकर माताजी कुछ उत्तर नही देती थी। उनके अतीव आग्रह पर उन्होने एक बार कहा कि—

"उन्हे पता ही नही होगा कि मैं कहाँ हू।"

चन्द्रमती जी को बहुत ही आश्चर्य हुआ तव उन्होने एक बार ज्ञानमती से घर का पता पूछ लिया और चुपचाप एक पत्र लिख दिया।

पत्र टिकैत नगर पहुच गया। पिताजी पत्र पढकर घर आये और सजल नेत्रो से पत्र पढकर सुनाने लगे—

श्रीमान् सेठ छोटेलाल जी—

सद्धर्मवृद्धिरस्तु ! यहाँ ब्यावर मे आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज का विशाल चतुर्विध सघ के साथ चातुर्मास हो रहा है। इसी सघ मे आपकी पुत्री जो कि आर्यिका ज्ञानमती माता-जी हैं विद्यमान हैं। मेरा नाम आर्यिका चन्द्रमती है। मैं सघ में उन्ही के साथ अनेक दुर्लभ ग्रन्थो का स्वाध्याय करती रहती हू। मैं यह पत्र धर्म प्रेम से आपको लिख रही हू। आप यहा आकर अपनी पुत्री का दर्शन करें। उनके ज्ञान और चारित्र के विकास

को देखकर आप अपने मे बहुत ही प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। अत आपको अवश्य आना चाहिये। मेरा आप सभी के लिये बहुत-बहुत शुभाशीर्वाद है। आपने ऐसी कन्यारत्न को जन्म देकर अपना जीवन सफल कर लिया है । इत्यादि।

माँ को और सारे परिवार का आज विदित हुआ कि हमारी पुत्री मैना क्षु० वीरमती से आर्यिका ज्ञानमती हो चुकी है और वे इस समय आचार्य श्री वीरसागर जी के विशाल सघ मे है। यह वो समय था कि जब साधु सघो के समाचार ज्यादा अखबारो मे नही छपते थे और कदाचित् जैनमित्र आदि मे छप भी गये तो उन्हे सभी लोग नही पढते थे। तथा इन माता-पिता को यह विश्वास भी था कि हमारी पुत्री उचित स्थान पर उचित मार्ग पर ही है अत वे चिन्ता भी नही करते होगे। यही कारण है कि उन्हे इतने वर्षों तक इनके समाचार नही मालूम थे। पुत्री के बढते हुये चारित्र को और बढते हुये ज्ञान को सुनकर माँ का हृदय पुलकित हो उठा। स्मृति पटल पर सारी पुरानी बाते ताजी हो आई। साथ ही मोहिनी जी के मोह का उद्रेक भी नही रुक सका, उनके नेत्रो से आसू बहने लगे। उनका ऐसा भाव हुआ कि—

"मैं अभी शीघ्र ही जाकर दर्शन कर लेऊँ।"

पिताजी को ब्यावर चलने के लिये बहुत आग्रह किया गया किन्तु वे कथमपि तैयार नही हुए। उनके मन मे कुछ और विकल्प उठ खडा हुआ। इसलिये वे बोले—

"पहले कैलाश को भेज रहा हू वह जाकर दर्शन करके सारी स्थिति देखकर आवे पुन हम तुम्हे लेकर चलेगे।"

यद्यपि उनके मन मे भी मोह का उदय हो आया था। वे भी दर्शन करना चाहते थे किन्तु ।

मनोवती के मनोभाव

श्रीमती कन्या से छोटी कन्या का नाम मनोवती था। मैना ने दर्शनकथा पढकर बड़े प्यार से इस बहन का नाम "मनोवती" रक्खा था। यह मनोवती वर्षों से कहती थी कि—

"मुझे मैना जीजी के दर्शन करा दो, मैं उन्ही के पास रहूगी।" इस धुन मे वह इतनी पागल हो रही थी कि गाव मे चाहे कोई मुनि आवे या ब्रह्मचारी आवे अथवा पडित ही आ जावे वह उनके पास जाकर समय देखकर पूछने लगती—

"क्या तुम्हे हाथ देखना मालूम है? बताओ मैं अपनी जीजी के पास कब पहुच सकूँगी! मेरे भाग्य मे दीक्षा है या नही ।" इत्यादि। जब मा को इस बात का पता चलता तो वे उसे फटकारती। उन्हे किसी को हाथ दिखाना कतई पसन्द न था। इस तरह यह मनोवती जब तब रोने लगती थी और आग्रह करती थी कि मुझे माताजी के पास भेज दो।

पत्र द्वारा आर्यिका ज्ञानमती माताजी का समाचार सुनते ही मनोवती दौडी-दौडी आई और पत्र छीनने लगी। उसने सोचा "शायद अब मेरा पुण्य का उदय आ गया है। अब मुझे माँ के साथ ब्यावर जाने को अवश्य मिल जावेगा।" किन्तु अभी उनके अन्तराय कर्म का उदय बलवान् था। शायद पिता ने इसी वजह से ब्यावर जाने का प्रोग्राम नही बनाया कि—

"मैं जाऊँगा तो मोहिनी जी मानेगी नही, वे अवश्य जायेगी पुन यह मनोवती पुत्री जबरदस्ती ही चलना चाहेगी।

और यह वहाँ उनके पास जाकर मुश्किल से ही वापस आयेगी। अथवा यह वहीं रह जायेगी, दीक्षा ले लेगी तो मैं इसके वियोग का दुःख कैसे सहन करूँगा ?"

माता मोहिनी का हृदय तड़फड़ाता रहा और मनोवती भी माँ के न जाने का सुनकर बहुत रोई किन्तु क्या कर सकती थी। दोनों माँ बेटी अपने-अपने मन में अपनी स्त्री पर्याय की निंदा करती रहीं। कभी-कभी माता मोहिनी मनोवती को सान्त्वना देती रहती थी। और कहती रहती थी—

'बेटी मनोवती ! तुम इतना मत रोओ, धैर्य रक्खो मैं तुम्हें किसी न किसी दिन माताजी के दर्शन अवश्य करा दूँगी।'

पिता के आज्ञानुसार कैलाशचन्द अपने छोटे भाई सुभाषचन्द को साथ लेकर ब्यावर के लिये रवाना हो गये।

कैलाश-सुभाष को आ० शिवसागर संघ का दर्शन

सरस्वती भवन में छत पर आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी तत्त्वार्थराजवार्तिक का स्वाध्याय करा रही थीं। पास में आ० सुमतिमती माताजी, आ० सिद्धमती जी, आ० चन्द्रमती जी, आ० पद्मावती जी और क्षु० जिनमती जी बैठी हुई तन्मयता से अर्थ समझ रही थीं। एक तरफ ब्र० राजमल जी भी राजवार्तिक की पंक्तियों का अर्थ देख रहे थे। उसी समय वहाँ पर दो यात्री पहुँचे, नमस्कार किया और वहीं बैठ गये। उनकी आँखों से अश्रु बह रहे थे। पहले शायद किसी ने ध्यान नहीं दिया किन्तु जब कुछ सिसकने जैसी आवाज आयी तब किसी ने सहसा पूछ लिया—

"तुम लोग क्यों रो रहे हो ? कौन हो ?"

तभी माताजी ने सहसा ऊपर माथा उठाया और पूछा—

"आप कहाँ से आये है ?"

बडे भाई ने कुछ आसू रोककर जैसे-तैसे जवाब दिया—"टिकैतनगर से।"

पुन माताजी ने पूछा—'किनके पुत्र हो ? तुम्हारा क्या नाम है ?"

उन्होने कहा—

"लाला छोटेलाल जी के। मेरा नाम कैलाशचन्द है।"

इतना कहकर दोनो भाई और भी फफक-फफक कर रोने लगे। तभी अन्दर से आकर प० पन्नालाल जी ने सहसा उनका हाथ पकड लिया और उनके आसू पोछते हुए बोले—

"अरे ! आप रो क्यो रहे हो ?"

पडित जी को समझते हुए देर न लगी कि ये दोनो ज्ञानमती माताजी के गृहस्थाश्रम के भाई हैं। पुन उस समय आ० चन्द्रमती जी ने भी उन दोनो को सान्त्वना दी और बोली—

'तुम्हारी बहन इतनी श्रेष्ठ आर्यिका है तुम्हे इन्हे देखकर खुशी होनी चाहिये। बेटे ! रोते क्यो हो ?"

सभी के समझाने पर दोनो शान्त हुए और माताजी के चेहरे को एकटक देखते रहे। वे दोनो इस बात मे और भी अधिक दुखी हुए कि—

"जिस मेरी बहन ने मुझे गोद मे लेकर खिलाया था, प्यार दुलार किया था, आज वे हमे पहचान भी नही रही हैं।"

पडित पन्नालाल जी भी मन ही मन सोच रहे थे—

"अहो ! वैराग्य की महिमा तो देखो ! आज माताजी

अपने भाइयो को पहचान भी नही पाई । ये आप स्वय मे ही इतनी लीन हैं, ज्ञानाभ्यास मे ही सतत् लगी रहती हैं ।"

पडित जी दोनो भाइयो को अपने साथ अपने घर लिवा ले गये । रास्ते मे इन दोनो ने यही अफसोस व्यक्त किया कि—

"दुख की बात यह है कि माताजी हम लोगो सर्वथा भूल गई ।" पडित जी ने कहा—

"भाई ! दुख मत मानो । इनकी ज्ञानाराधना बहुत ही ऊची है । मैं देखकर स्वय परेशान हू । ये दिन भर तो अध्ययन कराती रहती हैं । पुन रात्री मे ११–१२ बजे तक सरस्वती भवन के हस्तलिखित शास्त्रो को निकाल-निकाल कर देखती रहती है । मैं प्रात काल आकर देखता हू तो प्राय ५०–६० ग्रन्थो को खुला हुआ पाता हू । मैं स्वय अपने हाथ से उन्हे बांधकर रखता हू । अगले दिन शाम को माताजी पुन मेरे से दो तीन अलमारिया खुलवा लेती हैं । पुन रात्रि मे ग्रन्थो का अवलोकन करती रहती हैं ।"

कैलाश ने पूछा—

"पडितजी ! ऐसा क्यो, माताजी ग्रन्थ खुले क्यो रख देती हैं ?"

पडितजी ने यहा—

'भाई ! एक दिन माताजी ने ग्रन्थ बाध दिये । वे सभी ग्रन्थ अधिक कसकर नही बधे थे किन्तु थे व्यवस्थित बधे हुए ।" मैने कहा—

"माताजी ! ग्रन्थो को शत्रुवत् बाधना चाहिये । आप मेरे जितना कसकर नही बाध सकेगी और आपको समय भी लगेगा ।

अत इतनी सेवा तो मुझे ही कर लेने दीजिये। उस दिन से प्रतिदिन मैं स्वय आकर ग्रन्थो को बाध-बाध कर जहा की तहा अलमारी मे रख देता हू।"

पडितजी ने और भी बहुत सी बातें माताजी के विषय में बताई और बहुत प्रशसा करते रहे। बोले—

"माताजी का तो मेरे ऊपर विशेष अनुग्रह है। मेरी पुत्री पद्मा आदि सब उन्ही के पास पढती है।"

माताजी से कैलाशचन्द की चर्चा

पडित पन्नालाल जी ने दोनो को स्नान कराकर भोजन कराया। अनन्तर दोनो भाई नशियाजी मे आ गये। एक-एक करके सभी मुनियो के दर्शन किये। सभी आर्यिकाओ के दर्शन किये। अनन्तर मध्याह्न मे एक बजे माता जी के पास आकर बैठ गये। माता जी ने घर के और गाव के धर्मकार्यों के बारे मे जो भी पूछा उन्होने बता दिया। किन्तु माताजी ने घर के किसी भाई-बहन की शादी के बारे मे कुछ भी नही पूछा और न कुछ अन्य ही घर की बातें पूछी। समय पाकर कैलाश ने कहा—

'माताजी! बहन मनोवती आपके दर्शनो के लिये तरस रही है। वह शादी नही कराना चाहती वह आपके पास ही रहना चाहती है।'

इतना सुनते ही माताजी एकदम चौंक पडी। अब उनका भाव कुछ ठीक से कैलाशजी से वार्तालाप करने का हुआ। उन्होने जिज्ञासा भरे शब्दो मे पूछा—

"ऐसा क्यो?"

कैलाशजी ने कहा—

"पता नही, आज लगभग दो वर्ष हो गये हैं। वह आपके लिये बहुत ही रोती रहती है। रो-रोकर वह अपनी आँखें लाल कर लेती है। वह कहती है मुझे माताजी के पास भेज दो, मैं भी दीक्षा लेऊँगी।"

माताजी ने कहा—

'तब भला तुम उसे क्यो नही लाए ?"

कैलाशजी ने कहा—

"माताजी! आपको मालूम है पिताजी का कितना कडा नियन्त्रण है।" इसी बीच कैलाश ने अपने आते समय रास्ते से वापस पकड कर ले जाने की तथा श्रीमती को दरियाबाद से ले जाने की सारी बातें सुना दी। तब माताजी ने कैलाश को समझाना शुरू किया, बोली—

'देखो इस अनादि ससार मे भ्रमण करते हुये इस जीव ने कौन-कौन से दु ख नही उठाये हैं। भला जब यह जीव इस ससार से निकलना चाहता है तब पुन उसे इस दु खरूपी सागर मे वापस क्यो डालना ? कैलाश! तुम मेरी बात मानो और जैसे बने उन मनोवती को सघ मे पहुचा दो। तुम्हारा उस पर बहुत बडा उपकार होगा . ।" और भी बहुत कुछ समझाया किन्तु कैलाशचन्दजी क्या कर सकते थे। उन्होने अन्त मे यही कहा कि "मैं क्या कर सकता हू। मेरे वश की बात नही है। पिताजी इसी कारण से स्वय आपके दर्शन करने नही आये हैं और न मा को ही आने दिया है।'

इसके बाद २, ३, दिन तक कैलाश, सुभाष वहाँ रहे। माता जी के स्वाध्याय और अध्ययन को देखते रहे। सरस्वती भवन मे

ऊपर माताजी के पास सघ की प्रमुख आर्यिका वीरमती माताजी सोती थी। माताजी के पास आ० चन्द्रमती, आ० पद्मावती, क्षु० जिनमती और क्षु० राजमती ऐसी चार साध्विया रहती थी। इनके पास कोई भी ब्रह्मचारिणी नही थी। उन आर्यिकाओ से बातचीत की, उनका परिचय लिया। सारे सघ के साधुओ की चर्या देखी। आचार्य महाराज का उपदेश सुना। पश्चात् वहा से चलकर वापस घर आ गये। मा ने आते ही कैलाशचन्द के मुख से अपनी सुपुत्री मैना अर्थात् आर्यिका ज्ञानमती माताजी के सारे समाचार सुने। मन मे बहुत प्रसन्नता हुई। उनके पास दो आर्यिकायें और दो क्षुल्लिकायें हैं, ऐसा जानकर हृदय गद्गद हो गया। उनके ज्ञान की प्रशसा पण्डित पन्नालालजी सोनी और ब्र० श्रीलालजी शास्त्री ने जैसी की थी वैसी सुनाई तो पिता का हृदय भी फूल गया। मनोवती के भी हर्ष का ठिकाना न रहा किन्तु उसे दु ख इस बात बहुत ही हो रहा था "कि मुझे ऐसी ज्ञानमती मा के दर्शन कब होगे ?"

[९]

प्रथम बार आ० शिवसागर सघ का दर्शन

पिता छोटेलाल जी और माता मोहिनी सन् १९५९ मे अज-मेरमे आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज के सघ के दर्शन करने चले। अथवा यो कहिये सन् १९५३ के टिकैत नगर चातुर्मास के पश्चात् आज वे सात वर्ष बाद सन् १९५९ मे आर्यिका ज्ञानमती माताजी के प्रथम बार दर्शन करने आये थे। छोटे धड़े की नशिया मे प्रात· आचार्य श्री का उपदेश होता था। सभी साधु साध्वियां उपस्थित रहते थे। उपदेश के अनन्तर आर्यिका

ज्ञानमती माताजी आर्यिकाओ के साथ नशिया से बाहर निकल कर बाबाजी की नशिया जा रही थी । उन्हें देखते ही रास्ते मे मोहिनीजी सहसा उनसे चिपट गई और रोने लगी । साथ मे चलने वाली आर्यिकायें भी आश्चर्यचकित हो गयीं और साथ मे चलते हुये सेठ लोग आश्चर्य से देखने लगे । माताजी भी सहसा कुछ नहीं समझ सकी । आखिर ये कौन हैं ? और क्यो रो रही हैं ? "अरे ! यह क्या !"

ऐसा कहते हुये साथ मे चलती हुई आ० सिद्धमतीजी माता जी ने ज्ञानमती माताजी से उन्हे छुडाया । माताजी ने सिर उठा कर देखा तो सामने खडे पिता छोटेलालजी भी रो रहे हैं । यद्यपि वे बहुत दुबले हो गये थे फिर भी इस अवसर पर माताजी ने उन्हें भी पहचान लिया था । साथ मे चलते हुए श्रावको ने उनका हाथ पकडा और बोले—

'सेठजी ! आप कौन हैं ! कहाँ से आये हैं ।' .....''

इसी मध्य आ० चन्द्रमतीजी को समझते देर न लगी, कि ये आ० ज्ञानमतीजी के माता-पिता हैं । अत वे शीघ्र ही बोली— ये इन माताजी के माता-पिता हैं । टिकैतनगर से आये हैं । इन्हे साथ ले चलो, नशियाजी मे एक कमरे की व्यवस्था करके इन्हे ठहराओ ।'

श्रावको ने बडे प्रेम से पिताजी का हाथ पकडा और साथ मे बाबाजी की नशिया मे ले आये । माताजी तो चर्या का समय होने से शुद्धि करके चर्या के लिये निकल गयी । इन लोगो को व्यवस्थित ठहरा दिया गया । आहार के बाद इन सभी ने आचार्य श्री के दर्शन किए । पश्चात् अन्य मुनियो का दर्शन कर

माताजी के पास आ गये। दर्शन करके रत्नत्रय कुशल पूछी। माताजी ने भी इन लोगों के धर्म कुशल को पूछा। पुन तत्क्षण ही बोली—

"क्या मनोवती को नहीं लाये ?"

मा ने दबे स्वर में कहा—

"नहीं।"

माताजी को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि देखो ये लोग कितने निष्ठुर हैं कि २—३ वर्षों से मेरे लिये रोती हुई उस बालिका को आखिर घर ही छोड आये हैं। माताजी को यह समझते देर न लगी कि शायद यह वापस न जाती इसी कारण उसे नही लाये हैं अस्तु '' ' । साथ मे शाति आई थी जो मोहोना ब्याही थी। छोटा पुत्र प्रकाश आया था जो कि इस समय लगभग १५ वर्ष का था और मा की गोद मे छोटी बिटिया माधुरी थी।

इन लागो ने यहा पर रहकर चौका किया और प्रतिदिन आहार दान का, गुरु के उपदेश सुनने का लाभ लेने लगे।

स्वाध्याय प्रेम

माता मोहिनीजी आ० ज्ञानमती माताजी की प्रत्येक चर्या को बडे प्रेम से देखा करती थी। माताजी बाबाजी की नशिया मे मन्दिरजी मे प्रात ७ से ८-३० तक पचाध्यायी ग्रन्थ का स्वाध्याय चलाती थी। उनमे आ० सुमतिमती माताजी, आ० सिद्धमतीजी, आ० चन्द्रमती जी आ० पद्मावती जी, क्षु० जिनमती और ब्र० राजमल जी बैठते थे। और ब्र० श्रीलाल जी भी बैठ जाते थे। माताजी सस्कृत के श्लोको को पढकर उसका अर्थ करके समझाती थीं। उसके बाद पात्रकेशरी स्तोत्र का भी अर्थ बताती थी। उस

समय मोहिनी जी जिनेन्द्रदेव की पूजा करके वहा स्वाध्याय मे पहुच कर सभी आर्यिकाओ को अर्घ चढाकर ५–१० मिनट बैठ जाती थी। पुन चौके मे चली जाती थी। मध्याह्न मे आ० ज्ञानमती माताजी के पास मे वहा की कन्या पाठशाला की प्राध्यापिका विदुषी विद्यावती बाई सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ का अध्ययन कर रही थी। उस समय मोहिनी जी को अधिक अवसर स्वाध्याय के लाभ का मिल जाता है। मध्य–मध्य मे अध्यापिका विद्यावती[1] जी आ० ज्ञानमती जी के ज्ञान की भूरि–भूरि प्रशसा किया करती थीं। जिसे सुनकर माता मोहिनी जी का हृदय गद्‌गद हो जाता था।

४-५ बजे के लगभग शहर की कुछ महिलायें और बालिकाये भी माताजी के पास अर्थ सहित तत्त्वार्थसूत्र आदि का अध्ययन करने आ जाया करती थीं। अनन्तर साधु सघ के सामूहिक स्वाध्याय मे माताजी पहुच जाती थी। स्वाध्याय के बाद सायकालीन प्रतिक्रमण के बाद ही सेठ जी की नशिया से सभी आर्यिकायें अपने स्थान पर आ जाया करती थी। इस प्रकार से माताजी की अत्यधिक व्यस्तचर्या देखकर माता मोहिनी बहुत ही प्रसन्न होती थी।

मत्रित जल का प्रभाव

एक दिन बहन शाति को पेट मे बहुत ही दर्द होने लगा और उसे अतिसार चालू हो गये। यह देख मोहिनी जी घबराई और झट से आकर माताजी को कहा। साथ मे यह भी बताया कि—

---

१ ये प० लालबहादुर शास्त्री इन्दौर वालो की बहन हैं।

"यह ४-५ महीने की गर्भवती है। इसकी सासु इस समय यहां भेज नहीं रही थी किन्तु यह दर्शन के लोभ से आग्रहवश आ गई है।"

माताजी ने उसी समय एक कटोरी मे शुद्ध जल मंगाकर कुछ मन्त्र पढ दिया और शांति को पिला दिया। उस मंत्रितजल से उसे बहुत कुछ आराम मिला। इसी बीच यह बात संघ की वयोवृद्धा आर्यिका सुमतिमती माताजी को मालूम हुई तो स्वयं मदिर से वहां बाहर कमरे में आई शांति को सान्त्वना दिया। इसी समय सर सेठ भागचन्दजी सोनी साहब वहां दर्शनार्थ आये हुये थे। वे प्राय: आर्यिकाओ के कुशल समाचार लेने इधर आते ही रहते थे। आ० सुमतिमती माताजी ने उनसे कहा—

"सेठजी! आप इसे किसी कुशल डाक्टरनी को दिखा दें।"

सेठानी रत्नप्रभा जी साथ मे थी उन्होंने शीघ्र ही अपनी गाडी मे बिठाकर शाति को ले जा कर डाक्टरनी के पास दिखाया। डाक्टरनी ने कहा—

"इसके पेट में बालक बिल्कुल ठीक है। चिन्ता की कोई बात नही है।" शाति हँसती हुई माताजी क पास आ गई और बाली—

"माताजी! आपके मंत्रितजल ने मुझे बिल्कुल स्वस्थ कर दिया है। अब मुझे कोई तकलीफ नही है।"

संघ की सबसे प्रमुख आर्यिका वीरमती माताजी यही माताजी के कमरे मे ही रहती थी। वे रात्रि मे २, २—३० बजे से उठकर पाठ करना शुरू कर देती थी। कभी-कभी माता मोहिनी

इधर माताजी के पास सो जाती थी तो पिछली रात्रि मे बडी माताजी के पाठ सुनकर बहुत ही खुश हो जाती थी।

संग्रहणी प्रकोप

माताजी को इन दिनो पेट की गडबड चल रही थी। आहार लेने के बाद उन्हें जल्दी ही दीर्घशका के लिये जाना पड़ता था। दिन मे भी प्राय. कई बार जाती थी। माता मोहिनी को मालूम हुआ कि इन्हे डाक्टर वैद्यो ने संग्रहणी रोग की शुरूआत बता दी है। और ये औषधि नही लेती हैं। तब मोहिनी जी को बहुत ही चिन्ता हुई। उन्होने माताजी को समझाना शुरू किया और बोलीं—

"देखो, माताजी! यह शरीर ही रत्नत्रय का साधन है इसलिये एक बार आहार मे शुद्ध काष्ठादि औषधि लेने मे क्या दोष है। आखिर श्रावको के लिये औषधिदान भी तो बतलाया गया है। इसलिये आपको शरीर से ममत्व न होते हुए भी सयम की रक्षा के लिये औषधि लेना चाहिये।"

इसके बाद आ० श्री शिवसागरजी महाराज, मुनि श्री श्रुत सागरजी आदि के विशेष समझाने से ही माताजी ने आहार मे शुद्ध औषधि लेना शुरू किया था।

आ० चन्द्रमती से माँ मोहिनीजी को विदित हुआ कि अभी सन् १९५८ मे गिरनार क्षेत्र की यात्रा के रास्ते मे इन्हें आहार मे अतराय बहुत आती थी जिससे पेट मे पानी नही पहुच पाता था और गर्मी के दिन, उस पर भी रास्ते का १४-१५ माल का प्रतिदिन पद विहार करना। इन्ही सब कारणो मे इनकी पेट की आँतें एकदम कमजोर हो गयी है जिससे कि आहार का पाचन

नही हो रहा है । और इस संग्रहणी नाम के रोग ने अपना अधि-कार जमा लिया है ।

इतनी सब कुछ अस्वस्थता में बेहद कमजोरी होते हुये भी माताजी अपने मनोबल से पठन-पाठन मे ही तल्लीन रहती थी और माता मोहिनीजी को यही समझाया करती थी—

"जिनवचनमौषधमिद"—जिनेन्द्र भगवान् के वचन ही सबसे उत्तम औषधि है। इनके पठन पाठन से ही सच्ची स्वस्थता आती है ।

शिष्यायें

माताजी के पास वही अजमेर मे केशरगज के एक श्रावक जीवनलालजी की पुत्री अँगूरीबाई[1] सागारधर्मामृत आदि पढ़ने आती रहती थी । उनके पति को डाकुओ ने मार दिया था-अत वे विरक्त चित्त हुई माताजी के पास ही रहना चाहती थी । वही शहर की एक महिला हुलासी बाई[2] भी माताजी के पास अध्ययन करती तथा माताजी की वैयावृत्ति भी किया करती थी ।

प्रकाश का पुरुषार्थ

माता मोहिनी का द्वितीय पुत्र प्रकाशचन्द वहाँ साथ मे आया था । जीजी मैना ने उसे कितना प्यार दिया था यह कुछ-कुछ उसे याद था, इस समय उसकी उम्र १५ वर्ष के करीब थी ।

---

१ ये आज आर्यिका आदिमती के नाम से आ० धर्मसागरजी महाराज के सघ मे हैं ।

२ ये भी आर्यिका सभवमती के नाम से आचार्य सघ मे रहती है ।

वह भी वहाँ माताजी के पास कभी-कभी द्रव्यसंग्रह आदि की कुछ गाथायें पढ लेता और बहुत ही शुद्ध अर्थ सहित याद करके सुना देता। माताजी ने सोचा—"इसकी बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण है क्यों न इसे संघ में कुछ वर्ष रोक लिया जाय और धार्मिक अध्ययन करा दिया जाये।"

माताजी ने उस बालक से पूछा, उसे तो मानो मन की मुराद मिल गई। वह प्रकाश भी अपनी माँ से आग्रह करने लगा कि—

"मुझे माताजी के पास छोड़ जाओ। मैं एक वर्ष मे कुछ धर्म का अध्ययन कर लूं।"

माँ मोहिनी ने हँसकर टाल दिया और सोचा इतना मोही बालक भला माँ-बाप के बगैर कैसे रह सकता है? इसे कुछ दिन पूर्व अयोध्या के गुरुकुल मे भी भेजा था, वहाँ से १०–१५ दिन मे ही भाग आया था।

अब इन लोगो के जाने का समय हो रहा था। सामान सब बन्ध चुका था। गाडी का समय हो रहा था। पिताजी प्रकाश-चन्द को आवाज दे रहे है परन्तु उसका कही पता ही नहीं है। उस दिन का जाना स्थगित हो गया। पिताजी ढूंढते-ढूंढते परेशान हो गये। देखा, तो वह नशिया के बाहर एक तरफ बगीचे म एक वृक्ष पर छिपा बैठा है। उसे उतारा गया, समझाया गया। अततोगत्वा जब वह नही माना तब ब्र० श्रीलालजी ने माता-पिता को समझाया—

"देखो, इस बालक को ४–६ महीने यहाँ संघ मे रहने दो। हमारे पास रहेगा। हम तुम्हे विश्वास दिलाते हैं। इसे ब्रह्मचर्य

धन आदि नहीं देंगे। बालक की हठ पूरी कर लेने दो। बाद में घर भेज देंगे। भाई! छोटेलालजी! यदि इस समय इसे तुम जबरदस्ती बांध कर ले आओगे। पुनः ये रास्ते से या घर से बिना कहे-सुने भाग कर आ गया तो तुम क्या करोगे? इसलिये शांति रक्खो, चिंता मत करो। इसे मैं कुछ धर्म पढ़ा दू बस, बाद मे घर से किसी को भेज देना इसे ले जायेगा ... ।"

इत्यादि समझाने बुझाने के बाद पिता ने बात मान तो ली किन्तु उनका मन बहुत ही अशांत हुआ।

मोहिनी का मोह

माता मोहिनी ने बालक की व्यवस्था के लिये चुपचाप अपने कान के ऐरन (बाले) उतारे और संघ के ब्र० राजमलजी को बुलाकर धीरे से कहा—

"ब्रह्मचारी जी! तुम इन्हे अपने पास रख लो, देखो, किसी को पता न चले! तुम इन्हें बेचकर रुपये ले लेना। उनसे इस बालक के नाश्ता, भोजन आदि की व्यवस्था करा देना।"

इतना कहकर माता ने वह सोने का गहना ब्रह्मचारीजी को दे दिया और एकान्त मे आ० ज्ञानमती माताजी से यह बात बताकर आप वहा से सकुशल रवाना हो गई।

पिताजी प्रकाशचन्द को संघ मे पढने के लिये छोडकर घर आ गये। घर में आते ही सारे बच्चे चिपट गये और आर्यिका ज्ञानमती माताजी के समाचार पूछने लगे किन्तु जब कैलाशचन्द आदि ने प्रकाश को नहीं देखा तब सब रोने लगे—

"पिताजी प्रकाश कहाँ है!"

पिताजी ने कहा—

"बेटे ! आ० ज्ञानमती माताजी के पास कुछ ऐसी चुम्बकीय शक्ति है कि क्या बताऊँ ? मैं मनोवती को तो रोती छोड़ गया था वहाँ नहीं ले गया था कि कहीं वह वहीं न रह जाये किन्तु माताजी ने तो प्रकाश को ही रोक लिया · · · · ।"

प्रकाश का वापस घर आना

अजमेर चातुर्मास के बाद संघ का विहार लाडनू की तरफ हो गया । रास्ते में मेड़तारोड, नागौर, डेह होते हुए संघ लाडनू आ गया । वहाँ पर चन्द्रसागर स्मारक भवन बनया गया था । उसमे भगवान् महावीर स्वामी की पद्मासन प्रतिमा जी को विराजमान किया था तथा आ० शांतिसागरजी, आ० वीर-सागरजी और आ० कल्प चन्द्रसागरजी की प्रतिमायें विराजमान की गई थीं । इस स्मारक भवन मे पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कराने के लिये वहाँ के भक्त श्रावक आ० शिवसागरजी महाराज को सघ सहित वहाँ पर लाये थे ।

वहीं पर आ० सुमतिमती माताजी का स्वास्थ्य अस्वस्थ होने से उनकी सल्लेखना चल रही थी । एक दिन रात्रि मे पिछले भाग मे लगभग ३–३० बजे करीब महामत्र सुनते हुये एव दैगम्बरी दीक्षा विधिवत् लेकर पूज्य माताजी ने शरीर का त्याग कर दिया था । उसी दिन प्रात कैलाशचन्द वहाँ आ गये । माताजी की अन्त्येष्टि मे भाग लिया । पुन आर्यिका ज्ञानमतीजी से बोले—

'पिताजी बहुत ही अस्वस्थ है । अत. प्रकाश को भेजना बहुत जरूरी है । मैं लेने के लिये ही आया हू ।"

यद्यपि माताजी को मालूम था कि पिता की अस्वस्थता तो

बहाना मात्र है। ये लोग प्रकाश को संघ में न रहने देकर एक दो वर्ष में गृहस्थाश्रम के बन्धन में बांध देंगे। माताजी ने बहुत कुछ समझाया-बुझाया परन्तु कैलाशचन्दजी नहीं माने, आखिर-कार प्रकाशचन्द को रोते हुए अपने साथ लिवा ले आये।

जब प्रकाशचन्द घर आ गये, पिता के साथ ही भाई बहनों को भी खुशी का पार नहीं रहा। सबने उन्हे घेर लिया और संघ के सम्मरण सुनने के लिये उत्सुकता से बैठ गये।

प्रकाशचन्द ने सुनाना शुरू कर दिया—

"संघ में रहकर मैंने पंचामृत अभिषेक पाठ, छहढाला, द्रव्य संग्रह, कातन्त्र व्याकरण के कुछ पृष्ठ ऐसी कई चीजें पढ़ी हैं। माताजी ने तो मुझे बहुत ही थोड़ा पढ़ाया है किन्तु शिक्षायें अनमोल दी हैं। उद्दण्डपने की सारी आदतें छुड़ा दी हैं। मैंने अगूरी बीजी से भी पढा है। और ब्र० राजमलजी से तथा बाबा श्रीलालजी से भी कुछ पढा है।"

विशेष संस्मरण

एक बार मैंने पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी की पूजन बनाई। मैं उसे माताजी के सामने पढ़कर अष्टद्रव्य से उनका पूजन करना चाहता था। तभी माताजी ने मुझे फटकार दिया और रोक दिया। उस समय मुझे बहुत रोना आया। बाबाजी श्रीलालजी मुझे समझाकर चुप कर रहे थे। इसी बीच माताजी उधर आ गई और बोलीं—

"बाबाजी! आप इसे शास्त्री बना दें, मैं चाहती हू यह संस्कृत का अच्छा विद्वान बन जाये, इसीलिये इसे आपके पास रखा है।"

बाबाजी बोले—

"इसकी बुद्धि तो बहुत ही अच्छी है। यदि यह मन लगाकर व्याकरण पढ़े तो अवश्य ही पंडित बन सकता है। · वास्तव में कुछ गुण तो लोगों को विरासत में ही मिल जाया करते हैं।"

इसी मध्य पं० खूबचन्द्रजी शास्त्री बोले—

'हाँ, देखो ना, भगवान् ऋषभदेव के समवसरण में भी तो उनका परिवार ही इकट्ठा हो गया था। भगवान् के तृतीय पुत्र वृषभसेन ही भगवान् के प्रथम गणधर थे, बड़े पुत्र सम्राट भरत ही तो मुख्य श्रोता थे और उन्हीं की पुत्री ब्राह्मी ही तो मुख्य गणिनी थी। यह योग्यता उनके परिवार में ही आई और अन्य किसी को नहीं मिल पाई। · मालूम पड़ता है कि भगवान को भी बहुत ही बड़ा पक्षपात था····· · ·।"

इतना कहकर वो हँस पड़े। तभी श्रीलाल बाबाजी बोले—

"हाँ यही बात तो भगवान् महावीर स्वामी के समवसरण में भी थी। वे बालब्रह्मचारी थे तो उनके मौसा राजा श्रेणिक ही उनकी सभा के मुख्य श्रोता थे, और उनकी छोटी मौसी चन्दनाजी ही आर्यिकाओं की प्रधान गणिनी थीं ।'

पुन बाबाजी गम्भीर स्वर में बोले—

"भाई! यह पक्षपात नहीं, यह तो योग्यता की ही बात है।" सुनकर माता-पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और सभी भाई-बहनों को भी प्रसन्नता हुई।

पुन पिता बोले—

"माताजी के दर्शन करके वहाँ एक महीना रहकर अच्छा

तो खूब लगा किन्तु जो वे किसी को भी संघ में रखने के लिये पीछे पड जाती हैं सो यह उनकी आदत अच्छी नही लगी।"

तब प्रकाश बोले—

"यह तो उनका कुछ स्वभाव ही है। उन्होंने ब्यावर चातुर्मास मे आ० पद्मावती और जिनमती को कैसे निकाला है ? कितने संघर्षों के आने पर भी कितने पुरुषार्थ से उन्होंने उन दोनो को दीक्षा दिलाई है। संघ में मुझे पद्मावती आर्यिका ने स्वयं यह बात बताई है। वे सौ० सोनुबाई के यहाँ हर दूसरे-तीसरे दिन आहार को जाती थीं। तब उनके पति को कहती ही रहती कि "तुम्हारी धर्मपत्नी को हम ले जायेंगे।"

उनके पुत्र पुत्रवधु आदि भी जब-जब दर्शन करने आते माताजी हर किसी को भी कहती रहतीं—

"तुम्हारी माँ को हम ले जायेंगे।"

पहले तो ये लोग खुशी से कह देते—

"बहुत अच्छा है। आप ले जाइये, वे जगत्पूज्य माताजी बन जायेंगी।"

किन्तु जब साथ ले आईं तो उनके पति लालचन्द ने दो-तीन जगह आकर सोनुबाई को ले जाना चाहा, हल्ला-गुल्ला भी मचाया किन्तु माताजी भी दृढ रहीं और हँसती रहीं तथा सोनु-बाई भी पक्की रही। आज वे ही आ० पद्मावती जी हैं। कु० प्रभावती को निकालने पर तो उसकी नानी ने बहुत ही यद्वा-तद्वा बका था किन्तु माताजी ने बुरा भी नही माना था और घबराई भी नही थी। तभी वह प्रभावती आज संघ मे क्षु० जिनमती हैं। अभी ब्यावर चातुर्मास मे भी माताजी ने कई एक

कन्याओ को घर से निकलने की प्रेरणा दी थी। यद्यपि वे नहीं निकल सकी यह बात अलग है—

इतना सुनकर पिताजी हँस पड़े। और बोले—

"सबको मूँडने मे इन्हे मजा आता है"

[१०]

कैलाशचन्द ने पुनः दर्शन किये

घर मे प्राय: जब भी आर्यिका ज्ञानमती माताजी की चर्चा चलती तभी पिता के मन मे मोह जाग्रत होता और दर्शन करने की उत्कण्ठा होती। किन्तु वे इस डर से कुछ नही कहते कि अब की बार भी जो जायेगा, माताजी उसे ही रोक लेगी। उधर मनोवती तो घर मे जब भी अपने विवाह के लिये चर्चा सुनती, रोने लगती और कहती—

"मुझे माताजी के पास भेज दो, मैं दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूँगी।"

माता मोहिनी का हृदय पिघल जाता किन्तु मोह का उदय तथा पतिदेव का बन्धन उन्हें भी मजबूर किये हुये था।

सन् १९६१ मे सीकर मे आ० शिवसागरजी के सघ का चातुर्मास हो रहा था। वही सघ मे आ० ज्ञानमती माताजी भी थी।

एक दिन माता मोहिनी ने अपने पति से माताजी के दर्शनार्थ चलने के लिये बहुत ही आग्रह किया किन्तु सफलता न मिलने पर लाचार हो अपने बड़े पुत्र कैलाशचन्द से बोली—

'बेटे कैलाश! तुम बहू चन्दा को लेकर सीकर चले जाओ और आ० ज्ञानमती माताजी के दर्शन कर आओ। दो वर्ष का

समाचार भी ले आओ, उनका स्वास्थ्य कैसा चल रहा है मेरी जानने की तीव्र ही उत्कण्ठा हो रही है।"

इतना सुनते ही कैलाशचन्दजी को प्रसन्नता हुई। उन्होंने पिता से आज्ञा ली और अपनी पत्नी चन्दा को साथ लेकर सीकर आ गये। यहा आकर इन दोनो ने आचार्य सघ के दर्शन किये और आ० ज्ञानमती माताजी से भी शुभाशीर्वाद प्राप्त किया। चन्दा की गोद मे नन्हा सा बालक था। कैलाश ने कहा—

"माताजी ! इस नन्हे-मुन्ने का नाम रख दो।'

माताजी ने उसका नाम जम्बू कुमार रख दिया।

कैलाशचन्द कई दिनो तक वहाँ रहे। सघ मे गुरुओ के उपदेश सुने, आहार देखा और माताजी की दैनिक चर्या का सूक्ष्मता से अवलोकन किया। यद्यपि माताजी का स्वास्थ्य कमजोर चल रहा था फिर भी वे सतत ज्ञानाभ्यास मे लगी रहती थी। उस समय माताजी प्रात सघस्थ कई एक आर्यिकाओ को लब्धिसार ग्रन्थ का स्वाध्याय करा रही थी। उसकी सूक्ष्म चर्चा बहुत ही गहन थी। तथा मध्याह्न म अपनी प्रिय शिष्या क्षु० जिनमतीजी को प्रमेयकमलमार्तण्ड पढ़ा रही थी जो कि न्याय का उच्चतर ग्रन्थ है।

मध्याह्न मे कभी-कभी माताजी का सभा में उपदेश भी होता रहता था। तथा ४ बजे करीब माताजी के पास कई एक महिलाये अध्ययन करती रहती थी।

कैलाशचन्द को सीकर की समाज का बहुत ही स्नेह मिला। प्राय प्रतिदिन कोई न कोई श्रावक उन्हे अपने घर जिमाने के लिये बुलाने आ जाया करते थे। जब वे टिकैतनगर जाने के

लिये तैयार हुये तभी एक महिला जो कि इन्हें बहुत ही आदर से देखती थी और चन्दा को मानो वह अपनी ही बहू समझती थीं। वे एक साडी ले आयी साथ ही नन्हें मुन्ने के लिये भी एक जोडी वस्त्र थे। चन्दा घबराई और बोली—

"अम्माजी! मैं यहा मात.जी के दर्शन करने आई हू यदि ये कपड़े भेंट मे ले जाऊंगी तो सासु जी मेरे से बहुत ही नाराज होगी इसलिये मैं क्षमा चाहती हू, मैं कतई यह भेंट नही लूंगी।'

उस महिला के बहुत कुछ आग्रह करने के बावजूद भी चन्दा ने वस्त्र नही लिये और बार-बार यही उत्तर दिया—

'अम्माजी! आपका आशीर्वाद ही हमे बहुत कुछ है। आपकी उत्तम भावना से मैं प्रसन्न हू ··· ··।'

जाते समय कैलाश ने यह बात माताजी से बता दी और सभो गुरुओ का तथा पूज्य माताजी का शुभाशीर्वाद लेकर घर आ गये। आते ही मनोवती ने बडे भाई और भावज को घेर लिया तथा रोने लगी—

"भाई साहब! आप मुझे भी माताजी के पास क्यो नही ले गये?'

कैलाश ने मनोवती को समझाने की चेष्टा की किन्तु मनोवती को सन्तोष नहीं हुआ।

सभी ने सघ के कुशल समाचार पूछे और माताजी के उच्चतम ग्रन्थो के स्वाध्याय की चर्चा सुनकर गद्गद हो गये।

दीक्षा महोत्सव देखने का अवसर

आ० ज्ञानमतो माताजो के हर्ष का पार नही था। आज उनकी शिष्यायें दीक्षा ले रही हैं। ब्र० राजमल जी भी मुनि

दीक्षा लेने वाले हैं। माताजी ने इन ब्र० जी को मुनि दीक्षा लेने के लिये भी बहुत ही प्रेरणा दी थी। इस समय जो महिलायें आर्यिका दीक्षा लेंगी उनको मंगल स्नान कराया जा रहा है। चार महिलायें चार कोनों पर खड़ी होकर कपड़े का छोर पकड़ कर कपड़े से मर्यादा किये हुये हैं। एक छोर पर खड़ी एक महिला एक हाथ से पर्दे को पकड़े हुये हैं किन्तु उसकी दृष्टि बार-बार अपने नन्हें-मुन्ने की तरफ जा रही है इस कारण पर्दा कुछ नीचा हो गया। तभी माताजी ने उस अपरिचित महिला को फटकारा—

"तुम्हे विवेक नही है! पर्दा ठीक से पकड़ो। इधर-उधर क्या देख रही हो।"

इसके बाद माताजी ने जब पुन उसकी ओर देखा तो वह महिला रो रही थी—माताजी ने कहा—

"अरे! तुम्हे इतना भी सहन नही हुआ, जरा सी बात मे रोने लगी?"

तभी उस महिला ने कहा—

"नही माताजी! मैं आपके गुस्सा करने से नही रो रही हू किन्तु आज पहली बार मैंने आपके दर्शन किये हैं, इसलिये रोना आ गया।"

तब माताजी ने उस महिला को सिर से पैर तक एक बार देखा और कुछ भी न पहचान पाने से पुन पूछा—

"तुम कौन हो? कहा से आई हो?"

उसने कहा—

"मैं श्रीमती हू, बहराइच से आई हू। मैं टिकैतनगर के

लाला छोटेलाल जी की पुत्री हू ।"

तब माताजी ने बहुत आश्चर्य व्यक्त किया और कहा—

"तुझे मैंने जब छोडा था तब तू दस-ग्यारह वर्ष की होगी । अब तो तू बडी हो गयी । तेरी शादी भी हो गयी । भला मैं कैसे पहचान पाती ?"

इतना सुनते ही श्रीमती को और भी रोना आ गया । वह सिसक-सिसक कर रोने लगी । पास मे खडी महिलाओ ने उन्हें सान्त्वना दी, शात किया पुन उसका परिचय मिलने के बाद समाज के लोगो ने उन्हे वही दग की नशिया मे एक कमरे मे ठहरा दिया । साथ मे उनके पति प्रेमचन्द्र जी आये हुये थे और श्रीमती जीजी की गोद मे छोटा मुन्ना था जिसका नाम प्रदीप कुमार था । श्रीमती जी ने उस दीक्षा समारोह को बडे ही प्रेम से देखा और अपने भाग्य को सराहा कि मैं अच्छे मौके पर आ गयी जो कि इतना बडा महोत्सव देखने को मिल गया ।

बहन श्रीमती वहाँ सीकर नगर मे कई दिनो तक रही । मुनियो के उपदेश सुने और जोडे से शुद्ध जल का नियम करके सभी मुनि आर्यिकाओ को आहार दिया । बाद मे सभी गुरुओ का शुभाशीर्वाद और माताजी की बहुमूल्य शिक्षाओ को लेकर वे अपने घर आ गयी । घर में अपने सास-ससुर को वहाँ की बाते सुनायी । अनन्तर जब पीहर आयी तब सभी भाई-बहन उन्हें घेरकर बैठ गये । माता मोहिनी और पिता छोटेलाल जी भी वही बैठे हुये थे । माँ ने पूछा—

"श्रीमती ! तुमने सीकर मे मुनि-आर्यिकाओ की दीक्षाये देखी हैं । सुनाओ दीक्षा कैसे ली जाती है ? आचार्य महाराज

भी दीक्षा देते समय क्या कहते हैं ?"

श्रीमती ने कहा—

"वहाँ पर पहले माताजी ने सभी दीक्षा लेने वाली महिलाओं को सौभाग्यवती महिलाओं से हल्दी मिश्रित आटे का उबटन लगवाया फिर गर्म जल से स्नान करवाया, अनन्तर नई साड़ियाँ पहनाई। यह सब कार्य सभा मण्डप में ही पर्दे के अन्दर किया गया। उसी पर्दे का एक छोर मुझे पकड़ने को मिल गया था और प्रदीप मुन्ने को देखने से मेरा हाथ जरा नीचा हो गया कि माताजी ने फटकार लगाई थी पुन. मैंने देखा सभी महिलायें मगलगीत-भजन गाते हुये उन दीक्षार्थिनी महिलाओं को पण्डाल मे बने मच पर ले गयी। और वहाँ माताजी के पास ही ये सब बैठ गयी। उधर ब्र० राजमल जी को मगल स्नान करा कर एक धोती दुपट्टा नया पहना कर लोग मच पर ले आये थे। मच पर इन दीक्षा लेने वालो ने पहले श्रीजिनेन्द्रदेव का पचामृत अभिषेक किया। अनन्तर हाथ मे श्रीफल लेकर आचार्यश्री से दीक्षा के लिये प्रार्थना की।

उस समय ब्रह्मचारी राजमल जी ने बहुत ही विस्तार से उपदेश दिया जिसमे उन्होने माताजी के विशेष गुण गाये। ब्र० अ गूरी का गला बैठ गया था अत वे मात्र दो शब्द ही बोल सकी। तदनन्तर सबके द्वारा प्रार्थना हो जाने के बाद महाराज जी की आज्ञा से सभी दीक्षार्थी चावल से बने हुए स्वस्तिक पर जिस पर नया कपड़ा बिछा हुआ था उस पर क्रम-क्रम से बैठ गये। महाराज जी ने मन्त्र पढ़ते हुये दीक्षा के सस्कार शुरू कर दिये। उस समय मच पर पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी भी थी।

वे क्षुल्लिका जिनमती, ब्र० अंगूरीबाई आदि के केशलोच सस्कार आदि करा रही थी ।

आचार्यश्री ने सबको दीक्षा देकर पिच्छी, कमण्डलु दिये, शास्त्र पुन उनके नाम सभा में घोषित कर दिये । मुनि का नाम अजितसागर रक्खा गया । क्षु० जिनमती और सम्भवमती के आर्यिका दीक्षा मे भी वे ही नाम रहे । ब्र० अंगूरी का आर्यिका मे आदिमती नाम रक्खा गया और ब्र० रतनीबाई की क्षुल्लिका दीक्षा हुई उनका नाम श्रेयांसमती रक्खा गया । माताजी ने ब्र० अंगूरी को घर से निकालने में जितना पुरुषार्थ किया था वह भी अकथनीय है ।

इस प्रकार दीक्षा का देखकर हमें जो आनन्द हुआ है वह वचनो से नही कहा जा सकता है । तब मोहिनी जी न कहा—

"ऐसे ही बिटिया मैना की भी क्षुल्लिका दीक्षा हुई होगी और ऐसे ही आचार्यश्री वीरसागर जी ने उन्हे आर्यिका दीक्षा दी होगी । हमारे भाग्य मे देखना नही लिखा था । इसलिये हम लोग उनकी दोनो भी दीक्षाओ को नही देख पाये ।"

तब पिता ने कहा—

"किसी ने कोई सूचना ही नही दी तो भला जाते भी कैसे ?"

मां बोली—

"समाचार मिलने पर भी न आप दीक्षा लेने के लिये स्वीकृति देते और न दीक्षा होने ही देते ·· ·।"

सबके नेत्रो मे आँसू आ गये । · · पुन कुछ क्षण खामोशी के बाद श्रीमती ने बताया—

"वहाँ पर आहार के समय का दृश्य देखते ही बनता था। जी करता था कि यहाँ से घर न आयें किन्तु क्या करें आना ही पड़ा। सब साधु एक के पीछे एक ऐसे क्रम से निकलते थे। बाद मे सभी आर्यिकायें एक के पीछे एक क्रम से निकलती थीं। यह दृश्य चतुर्थकाल के समान बड़ा अच्छा लगता था।"

पुन: मोहिनी माँ ने पूछा—

"बिटिया श्रीमती ! इन दीक्षा लेने वालो मे माताजी की शिष्यायें कौन-कौन थीं।"

श्रीमती ने कहा—

"मुझे एक दिन ब्र० शीलाबाई ने बताया था कि ब्र० राजमल जी ने माताजी के पास राजवार्तिक आदि का अध्ययन भी किया है और माताजी ने इन्हें दीक्षा के लिये बहुत ही प्रेरणा दी थी। इसलिये वे अजितसागर महाराज जी मुनि होकर भी माताजी को अपनी माँ के रूप मे देखते हैं। क्षुल्लिका जिनमती जी तो उनकी शिष्या थीं ही। इन्हे तो माताजी ने बड़े पुरुषार्थ से घर से निकाला था। क्षु० संभवमती जी को भी माताजी ने ही क्षुल्लिका दीक्षा दिलाई थी। ब्र० अंगूरी बाई की तो दीक्षा के समय माताजी की खुशी का ठिकाना नहीं था।"

इन समाचारो को श्रीमती के मुख से सुनकर छोटी बहन मनोवती बोली—

"हे भगवन् ! मुझे ऐसी माताजी के दर्शनो का सौभाग्य कब मिलेगा ? मैंने पूर्वजन्म मे पता नहीं कौन सा ऐसा पाप किया था कि जो ४–५ वर्ष हो गये मैं उनके दर्शनो के लिये तरस रही हू ....।"

इस प्रसंग में माता मोहिनी के भाव भी माताजी के दर्शनो के लिये ही उठे किन्तु पिता ने कहा—

"अगले चातुर्मास मे चलेंगे ।"

तभी सब लोग माताजी के दर्शनो की उत्कण्ठा लिये हुये अपने-अपने काम में लग गये ।

[११]

मनोवती के मनोरथ फले

मनोवती बहुत ही अस्वस्थ चल रही थी । लखनऊ के डाक्टर का इलाज चल रहा था किन्तु कोई खास फायदा नही दिख रहा था । माँ मोहिनी लखनऊ में चौक के मन्दिर में दर्शन करने जाती थीं । एक दिन देखा, पचकल्याणक प्रतिष्ठा की कुंकुम पत्रिका मन्दिर जी में लगी हुई है । बारीकी से पढने लगीं । विदित हुआ, इस समय आ० शिवसागर जी का सघ लाडनूं राजस्थान मे है । पचकल्याणक प्रतिष्ठा का अवसर है वहाँ पर आर्यिका ज्ञानमती जी भी हैं । मन में सोचने लगी—

"यह मनोवती पाँच वर्ष से माताजी के लिये तडफ रही है । इसका शरीर स्वास्थ्य इस मानसिक चिन्ता से ही खराब हो रहा है । इसको जब तक माताजी के दर्शन नही मिलेंगे तब तक इसे कोई भी दवाई नहीं लगेगी ।······ यह मौका अच्छा है । पति से पूछने पर, पता नही वे कितने मोही जीव हैं, इसे सघ मे ले जाने की अनुमति नही देंगे । मेरी समझ से तो अब मुझे इस मनोवती को माताजी के दर्शन करा देना चाहिये ।"

माँ मोहिनी के पास उस समय रवीन्द्र कुमार नाम का सबसे छोटा पुत्र वहीं पर था । सोचा—

"इसे ही साथ लेकर मैं क्यों न लाडनू चली जाऊँ।"

यद्यपि माँ मोहिनी ने आज तक कभी अकेले इस तरह रेल की सफर नहीं की थी फिर भी साहस बटोर कर भगवान् का नाम लेकर उन्होंने किसी विश्वस्त व्यक्ति से लाडनू आने-जाने का मार्ग पूछ लिया। और लखनऊ से मनोवती पुत्री तथा रवीन्द्र पुत्र का साथ लेकर लाडनू आ गईं।

माताजी के दर्शन किये, मन शांत हुआ पुन दूसरे क्षण ही घबराहट में माताजी से बोली—

"मैं तुम्हारे पिता से न बताकर लखनऊ से ही सीधे इधर आ गई हूँ। अगर वे लोग लखनऊ आये, मैं न मिली तो क्या होगा। सब लोग चिन्ता करेंगे।"

माताजी ने सारी स्थिति समझ ली। शीघ्र ही ब्र० श्रीलाल जी को बुलाया और सारी बात बता दी तथा घर का पता बताकर कहा कि—

"इनके घर तार दे दो कि ये लोग सकुशल यहाँ प्रतिष्ठा देखने आ गई हैं। चिन्ता न करें।"

ब्र० श्रीलालजी ने उनके घर तार दे दिया। अब इन्होंने यहां रहकर पचकल्याणक प्रतिष्ठा देखी और प्रतिदिन आहार दान का लाभ लेने लगी।

मनोवती की खुशी का क्या ठिकाना! मानो उसे सब कुछ मिल गया है। वह माताजी के दर्शन कर अपने को धन्य मानने लगी। माताजी के पास बैठकर उसने अपने ४-५ वर्ष के मनोभाव सुनाये और कहने लगी—

"माताजी! अब मैं घर नहीं जाऊँगी। अब तो आप मुझे

यहीं पर दीक्षा दिला दो।"

माताजी ने समझाया, सान्त्वना दी और कहा—

"बेटी मनोवती ! अब तुम संघ में आ गई हो, खूब धार्मिक अध्ययन करो, व्याकरण पढ़ो, दीक्षा भी मिल जायेगी। धीरे-धीरे सब काम हो जावेगा।"

उस समय संघ मे वयोवृद्धा और दीक्षा में भी सबसे पुरानी आर्यिका धर्ममती माताजी थी। उनका ज्ञानमती माताजी के प्रति विशेष वात्सल्य था। उन्होंने इस कन्या मनोवती के ज्ञान की और वैराग्य की बहुत ही सराहना की तथा बार-बार माँ मोहिनी से कहने लगीं—

"माँजी ! तुम्हारी कूँख धन्य है कि जो तुमने ऐसी-ऐसी कन्यारत्न को जन्म दिया है। देखो, ज्ञानमती माताजी के ज्ञान से सभी साधुवर्ग प्रभावित हैं। ये इतनी कमजोर होकर भी रात-दिन संघ मे आर्यिकाओ को पढाती ही रहती हैं। यह कन्या मनोवती भी देखो, कितने अच्छे भावो को लिये हुए है। सिवाय दीक्षा लेने के और कोई बात नही करती है। इसे भी तत्त्वार्थ-सूत्र आदि का अर्थ मालूम है, अच्छा ज्ञान है और क्षयोपशम भी बहुत अच्छा है। खूब पढ़ जायेगी। अब इसे हम लोग संघ मे ही रखेंगे, घर नही भेजेंगे।"

इन बातो को सुनकर मनोवती खुश हो जाती थी। एक दिन माताजी के साथ आ० शिवसागर महाराज के पास पहुंचकर उसने नारियल चढ़ाकर दीक्षा के लिये प्रार्थना की। महाराज जी ने कहा—

"अभी तुम आई हो, संघ में रहो, कुछ दिनों मे दीक्षा भी मिल जायेगी।"

किन्तु माँ मोहिनी घबराने लगीं, उन्होंने कहा—

"यदि यह वापस घर नहीं चलेगी तो मुझे घर में रहना भी मुश्किल हो जायेगा। इसके पिता बहुत उपद्रव करेंगे।"

तब सभी माताजी ने मनोवती को समझा-बुझाकर शान्त कर दिया।

व्रती जीवन का प्रारम्भ

एक दिन ज्ञानमती माताजी ने केशलोंच किया। मोहिनी देवी ने अपनी पुत्री के केशलोंच पहली बार देखे थे। उनके हृदय में वैराग्य का स्रोत उमड़ आया। केशलोंच के बाद वे श्रीफल लेकर आचार्यश्री के पास गईं और दो प्रतिमा व्रत लेने के लिये प्रार्थना करने लगीं। ज्ञानमती माताजी ने कहा—

"आपको उस प्रान्त में शुद्ध घी नहीं मिलेगा। पुनः रूखी रोटी कैसे खाओगी, तुम्हारा स्वास्थ्य तो बहुत कमजोर रहता है?'

उन्होंने कहा—

"कोई बात नहीं, जैसा होगा सब निभ जायेगा।"

आचार्यश्री उस समय उन्हें पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत देकर दो प्रतिमाओं के व्रत दे दिये। सारी विधि बतला दी। वैसे ये अपने घर मे प्राय शुद्ध भोजन करती थी, हाथ का पिसा हुआ आटा, शुद्ध घी और कुँये का जल मात्र इतने की ही कमी थी। दोनो समय सामायिक भी करती थी और प्रातः नित्य ही शुद्ध वस्त्र पहनकर शुद्ध धुले अष्टद्रव्य से भगवान् का पूजन करती थीं। स्वयं स्वाध्याय करती थीं और

महिलाओं की सभा में भी शास्त्र बाँचकर सुनाती थी।

अब इनका जीवन व्रतिक बन चुका था। ये मन में तो ऐसा ही सोच रही थीं कि—

"भगवन्! कब ऐसा दिन आवेगा कि जिस दिन मैं केशलोच करके घर कुटुम्ब, पति, पुत्र-पुत्रियों का मोह छोड़ करके दीक्षा लेकर संघ में रहूंगी ··· ।"

इसी प्रसंग में मनोवती ने भी ब्रह्मचर्यव्रत के लिये आग्रह किया किन्तु माँ ने कहा—"अभी मैं तुम्हें व्रत नहीं दिला सकती।" माँ की आज्ञा न होने से आचार्य महाराज ने भी टाल दिया।

माता मोहिनी जी ने देखा कि यहाँ आदिमती माताजी के कमर में वायु प्रकोप हो जाने से वे उठने-बैठने में बहुत ही परेशान हैं। आ० ज्ञानमती माताजी स्वयं अपने हाथ से उनकी वैयावृत्ति करती रहती हैं। संघ की अन्य आर्यिका जिनमती जी, क्षु० श्रेयासमती जी भी उनकी वैयावृत्ति में लगी रहती हैं। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर भी माताजी ने इनकी अस्वस्थता के कारण हर प्रसंगों में भाग नहीं लिया था। वे वैयावृत्ति को ही बहुत बड़ा धर्म समझती थी। ऐसे प्रसंग पर माँ मोहिनी भी समयोचित वैयावृत्ति में पीछे नहीं रही थी।

इन ज्ञानमती माताजी के पास में कोई ब्रह्मचारिणी न होने से सारी वैयावृत्ति आदि माताजी को ही करना पडती थीं। तभी एक दिन आर्यिका सिद्धमती माताजी ने मोहिनी जी से कहा—

"ये आपकी पुत्री जब वीरमती क्षुल्लिका थी, संघ में आई। आचार्यश्री वीरसागरजी महाराज ने भी इनसे कहा था कि—

"तुम कुछ दिन सोनुबाई और कु० प्रभावती को ब्रह्मचारिणी अवस्था मे ही रक्खो। ये दोनो कुछ दिनो तक संघ की ओर तुम्हारी सेवा करें, आहार देवें और गुरुओ की विनय करें। पश्चात् इन्हें दीक्षा दिलाना।"

किन्तु ये नहीं मानीं और झट अपने साथ ही कु० प्रभावती को क्षुल्लिका दीक्षा दिला दी। कुछ दिन बाद ही ब्र० सोनुबाई को भी आ० पद्मावती बना दिया। अभी एक वर्ष पूर्व ही यह ब्र० अंगूरी संघ में आई थी, झट से इसे भी माताजी बना दिया और ब्र० रतनीबाई को भी क्षुल्लिका दीक्षा दिला दी। तुम्हीं सोचो, भला इन्हें इतनी जल्दी क्या रहती है। हम सभी यहाँ जितनी भी आर्यिकायें हैं, सबने संघ मे कई-कई वर्षों रहकर सेवा की है। आर्यिकाओ की वैयावृत्ति की है और चौका बनाकर खूब आहार दिया है। बाद मे खूब अभ्यास हो जाने के बाद ही दीक्षा ली है। . . . देखो न, अंगूरी को कुछ अभ्यास नहीं था अतः दीक्षा लेते ही बीमार रहने लगी.... ।"

यह सब सुनकर माँ मोहिनी ने आकर एकांत में आर्यिका ज्ञानमती माताजी से सारी बातें सुना दी और अपनी तरफ से भी कुछ कहना शुरू किया। तब माताजी बोलीं—

"बात यह है कि जिसने घर छोड़ा है मुझे लगता है दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करे। अपनी वैयावृत्ति और व्यवस्था के लिये भला मैं उसे क्यों ब्रह्मचारिणी वेष में ही रहने दूँ। मैं अपने

भाग्य पर भरोसा रखती हूं। मेरा भाग्य होगा तो ये आर्यिका बनकर भी मेरी सेवा करेंगी तथा गृहस्थ लोग भी करेंगे और भाग्य नहीं होगा तो ये ब्रह्मचारिणी रहकर भी नहीं करेंगी . ... ।"

ऐसा उत्तर सुनकर और माताजी की निःस्पृहता देखकर माँ मोहिनी चुप हो गई—

यात्रा के प्रस्थान की चर्चा

एक दिन मोहिनी जी ने सुना। आ० ज्ञानमती जी अपनी शिष्या जिनमती के साथ कुछ परामर्श कर रही हैं। जिनमती ने आज तक सम्मेदशिखर जी की यात्रा नही की थी अतः वह पूज्य माताजी से शिखर जी यात्रा हेतु चलने के लिये प्रार्थना कर रही थी। माताजी कह रही थी—

"हां, कई बार ब्र० सुगनचन्द जी ने भी कहा है कि मैं आपको सम्मेदशिखर की यात्रा कराना चाहता हू और सेठ हीरा लाल जी निवाई वालों ने भी कई बार कहा है कि "माताजी ! आपकी शिखर जी यात्रा की व्यवस्था जैसी चाहो वैसी मैं करने को तैयार हू।"

किन्तु गर्मी आ रही है। चातुर्मास के बाद ही यात्रा के लिये प्रस्थान किया जा सकेगा। इसी मध्य शिखर जी की वन्दना होने तक पूज्य माताजी के चावल का त्याग चल रहा था। वे मात्र एक अन्न गेहू ही आहार में लेती थी। माताजी का इतना कमजोर शरीर और इतना अधिक त्याग देखकर माँ मोहिनी बहुत ही आश्चर्य किया करती थी।

मोहिनी जी को यहा सघ के सान्निध्य मे रहते हुये लगभग

एक महीना व्यतीत हो रहा था। अब वे घर जाने के लिये सोच रही थी कि एक दिन सहसा घर से तार आया कि ताऊजी का स्वर्गवास हो गया है। तभी मोहिनी जी ने ब्र० सुगनचन्द के साथ घर जाने की तैयारी की।

मनोवती का संघ में रहना

अब मनोवती ने जिद पकड़ ली—

"चाहे जो हो जाये अब मैं घर नहीं जा सकती। कितनी मुश्किल से मुझे माताजी मिली हैं अब मैं इन्हें नहीं छोड़ने की। मैं यही रहूंगी।"

तब ब्र० श्रीलालजी ने माता मोहिनीजी को जैसे-तैसे समझा कर उनसे स्वीकृति दिलाकर कु० मनोवती को एक वर्ष का ब्रह्म-चर्य व्रत आ० शिवसागरजी से दिला दिया। और एक वर्ष तक उसे संघ में रहने की स्वीकृति दिला दी तथा मोहिनीजी को सान्त्वना देकर घर भेज दिया।

मोहिनीजी के पास लगभग २ वर्ष की छोटी सी कन्या थी। उसका नाम माताजी ने 'त्रिशला' रखा था। मोहिनीजी अपनी इस कन्या को और रवीन्द्र कुमार को साथ लेकर ब्रह्मचारीजी के साथ अपने घर वापस आ गई। सारे पुत्र पुत्रियाँ माँ को देखते ही उनसे चिपट गये और कहने लगे—

"माँ! तुम हमे छोड़कर माताजी के पास क्यो चली गयी थीं? बताओ हम माताजी के दर्शन कैसे करेंगे।"

इधर जब पिता ने मनोवती को नही देखा तो उनका पारा गरम हो गया और वे गुस्से मे बोले—

"अरे मेरी बिटिया मनोवती कहाँ है? क्या तुम उसे आग-

मती के पास छोड़ आई ?"

मोहिनीजी ने शांति से जवाब दिया—

"वह पाँच वर्ष से रोते-रोते बीमार हो गयी थी आखिर मैं कब तक अपना कलेजा पत्थर का रखती। अब मैं क्या करूँ ?

सघ की आर्यिकाओं ने मुझे खूब समझाया और उसे एक वर्ष तक के लिये सघ मे रख लिया है। जब चाहे आप सघ मे चले जाना। सब साधु साध्वियो के और ज्ञानमती माताजी के दर्शन भी कर आना तथा जैसे प्रकाश को वापस बुला लिया था वैसे ही उसे भी ले आना । ।"

वातावरण शान्त हो गया। पुन समय पाकर सबने सघ के समाचार सुने। माँ ने दो प्रतिमा के व्रत ले लिये हैं ऐसा मालूम होते ही घर मे सबको दु ख हुआ। पिता ने सोचा—

"अब ये भी एक न एक दिन दीक्षा ले लेंगी ऐसा ही दिखता है। अत. इन्हें भी सघ मे नही भेजना चाहिये।"

पुत्र कैलाशचन्द, पुत्रवधू चन्दा आदि भी सोचने लगे—

"क्या माँ भी कभी हम लोगो को छोड़कर दीक्षा ले लेंगी, आखिर बात क्या है।"

सभी लोग तरह-तरह की आशका करने लगे तब माँ ने समझाया—

"देखो चिन्ता करने की कोई बात नही है अभी तो मैंने मात्र दो प्रतिमा के ही व्रत लिये हैं। छठी प्रतिमा तक लेकर भी गृहस्थाश्रम मे रहा जाता है, कोई बाधा नही आती है।"

सोध चतुराई

अब माँ कुएँ का ही जल पीती थी। घी नहीं खाती थीं, हाथ का पिसा आटा यदि कदाचित् न मिल सके तो खिचड़ी

बनाकर ही खा लेती थीं। इनकी सोध बनुराई में पिता छोटे लालजी कभी-कभी चिढ जाते थे और हल्ला मचाना शुरू कर देते थे। कभी-कभी तो उनका चौका छू देते। तब ये पुन. दूसरा चौका बनाकर भोजन करती थी। ये माँ मोहिनी अपने त्याग मे बहुत ही दृढ़ थीं। और आजकल की अपेक्षा बहुत ही बढ़चढकर सोध किया करती थीं। इनको क्रिया कोष मे बहुत ही प्रेम था, स्वाध्याय भी अच्छा था। सभी बातो का ज्ञान था। सभी लडके और लडकियाँ इनकी आज्ञा के अनुरूप ही शुद्ध दूध, जल आदि के लाने मे लगे रहते थे।

उधर मे इन लोगों के कुएँ से जल भरने की प्रथा नही थी। प्राय कहार नौकर नौकरानी ही पानी भरते थे। जब समय इनके लिये पुत्र या पुत्रियाँ पानी भरने जाते थे तब पिताजी को बहुत ही खेद होता था। ऐसा देखकर पिता ने घर में "हैण्डपम्प" लगवा दिया, उसमे किरमिच का वासर डलवा दिया और बोले—

"तुम अब इसका पानी अपने भोजन के काम मे ले लो। यह धरती से आया हुआ पानी बिल्कुल शुद्ध है।"

माँ मोहिनी ने सघ मे पत्र लिखा—

"क्या मैं हैण्डपम्प का पानी पी सकती हू ?"

माताजी ने उत्तर दिया—

"नही"

तब पिता छोटेलालजी के अत्यधिक आग्रह से भी मोहिनीजी ने उस हैण्डपम्प का जल नहीं पिया। आजकल तो बहुत से सप्तम प्रतिमाधारी भी हैण्डपम्प का जल पीते हैं। उस समय

माता मोहिनी ने अपने द्वितीय प्रतिमा के व्रतों को भी बहुत ही विशेषता से पाला था।

[१२]

प्रकाशचन्द की तीर्थयात्रा

एक दिन घर में मनोवती का पत्र मिलता है। पहले पिता जी पढ़ते हैं पुनः सबको सुनाते हैं। उसमें विस्तार से लिखा हुआ था कि—

पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी का सघ सम्मेदशिखरजी की यात्रा के लिये विहार कर चुका है। सघ में आ० पद्मावतीजी, आ० जिनमतीजी, आ० आदिमतीजी, क्षु० श्रेयासमतीजी ऐसी चार साध्वियाँ हैं। ब्र० सुगनचन्दजी सघ की व्यवस्था मे प्रमुख हैं। उनकी एक बहन ब्रह्मचारिणी जी साथ में हैं। एक महिला मूलीबाई और ब्र० भवरीबाई भी साथ में हैं। जयपुर से एक श्रावक सरदारमलजी साथ में हैं। एक चौका ब्र० सुगनचन्दजी का है और एक मेरा है। हम लोग कल यहाँ मथुरा मे पहुचे हैं। सघ यहां से आगरा, फिरोजाबाद, मैनपुरी, कन्नौज, कानपुर, लखनऊ होते हुये अयोध्या पहुचेगा। टिकैतनगर यद्यपि कुछ बाजू मे हैं फिर भी मेरी इच्छा है कि सघ का पदार्पण टिकैतनगर अवश्य हो। सघ मे मुझे कुछ असुविधायें हो जाती हैं, चूँकि सरदारमलजी माताजी के साथ चलते हैं अत मैं चाहती हू कि यात्रा मे भाई प्रकाशचन्दजी को आप भेज दें तो मुझे बहुत ही सुविधा रहेगी। माताजी ने सभी ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियो को नियम दे दिया है कि शिखरजी पहुचने तक रास्ते मे कोई किसी श्रावक से पैसा या कोई वस्तु नही लेना। कोई कुछ देना चाहे

तो कह देना कि आप संघ मे दो चार दिन रहकर स्वयं कुछ कर सकते हैं हम लोग कुछ नहीं लेंगे। साथ बैलगाड़ी की व्यवस्था इस गांव से अगले गाँव तक गांव वालो से ही कराने की छूट कर दी है। इसलिये मेरी सारी व्यवस्था संभालने के लिये प्रकाश का आना आवश्यक है।"

साथ ही प्रकाशचन्द को भेजने के लिये एक तार भी आ गया।

पत्र सुनने के बाद माँ ने सोचा—

"ये प्रकाश को क्या भेजेंगे, मैं कुछ न कुछ प्रयत्न कर भेजने का प्रयास करूँ।"

किन्तु हुआ इससे विपरीत, पिताजी बहुत ही प्रसन्न थे और बोले—

"देखो, कुछ नाश्ता वाश्ता बना दो। प्रकाश जल्दी चला जाये। बिटिया मनोवती को रास्ते मे बहुत कष्ट होता होगा।"

माँ का हृदय गद्‌गद हो गया। पिता ने उसी समय प्रकाश को बुलाकर सारी बात समझा दी और बोले—

"जाओ, कुछ दिन मनोवती के साथ व्यवस्था मे भाग लेवो। बाद में व्यवस्था अच्छी हो जाने के बाद जल्दी से चले आना।"

साथ मे रुपयो की व्यवस्था भी कर दी और बोले—

"बेटा! अपने खेत का चावल एक बोरी लेते आना।"

प्रकाश मथुरा आ गये। संघ वहां से विहार कर लखनऊ पहुचा। टिकैतनगर के श्रावकों ने इस आर्यिका संघ को टिकैत-नगर को चलने का आग्रह किया। माताजी ने स्वीकार कर

टिकैतनगर पदार्पण किया। माँ और पिताजी बहुत ही प्रसन्न हुये। आर्यिका अवस्था मे आज माताजी अपनी जन्मभूमि मे दस-वर्ष बाद पहुची हैं। सघ वहाँ ५–६ दिन रहा। अच्छी प्रभावना हुई। जैनेतरों ने भी माताजी के दर्शन कर अपने को और अपने गाँव को धन्य माना। यहाँ पर मनोवती और प्रकाश अपने घर ही ठहरे थे, वहीं चौका चल रहा था। अब पिताजी का मोह पुन जाग्रत हुआ उन्होने कु० मनोवती और प्रकाश दोनो को भी आगे नही जाने के लिये कहा और रोकना चाहा।

माताजी ने कहा—

"बीच मे अधूरी यात्रा मे इन्हे क्या पुण्य मिलेगा। पूरी यात्रा तो करा देने दो।"

एक दिन पिता ने दोनो को बिठाकर रास्ते के अनुभव पूछना शुरू किया, तब प्रकाश ने बतलाया।

"रास्ते मे प्रतिदिन माताजी दोनो समय म १२ से १५ मील तक चलती हैं। मैं भगवान् की पेटी और कमण्डलु लेकर साथ ही पैदल चलता हू। बाबाजी (ब्र० सुगनचन्दजी) मध्याह्न ३–४ बजे बैलगाडी पर सारा सामान लाद कर चल देते है। रात्रि मे प्राय १०–११ बजे वहाँ पर आ पाते हैं कि जहाँ माताजी ठहरती हैं। वहाँ आकर आकर घास का बोरा खोलकर घास देते हैं।

इतना सुनते ही पिताजी बोले—

"इतनी भयकर पौष, माघ की ठन्डी मे सभी आर्यिकाये एक साडी मे १०-११ बजे तक कैसे बैठी रहती हैं?"

प्रकाश ने कहा—

'जहाँ माताजी ठहर जाती हैं, वहीं स्कूल या ग्राम पंचायत का स्थान या डाक बंगला आदि कोई स्थान ढूंढकर, उन लोगों से बातचीत कर मैं तभी माताजी को वहां ठहरा देता हूं। पुनः कुंआ देखकर पानी लाकर गर्म कर कमण्डलु में भरकर मैं गाँव में चावल की घास ढूंढने के लिये चला जाता हूं। कभी तो घास मिल जाती है, तो एक गट्ठा लाकर सबको बैठने के लिये थोड़ी-थोड़ी देता हूं, कभी नहीं मिले तो ज्वार की कड़ब या गन्ने के फूंस ही ले आता हूं। उसी पर माताजी बैठकर सामायिक, जाप्य, स्वाध्याय आदि कर लेती हैं।

माँ ने पूछा—

"गन्ने की फूंस तो धार वाली रहती है इससे तो शरीर में चिर जाने का भय रहता होगा।"

"हाँ, माताजी उस पर बिना हिले डुले बैठ जाती हैं, कभी-कभीतो बाबाजी की गाड़ी देर से आने पर इसी पर आहिस्ता से लेट भी जाती हैं। हिलने डुलने या करवट बदलने से तो यह फूंस शरीर में घाव बना दे ......।"

माँ ने कहा—

"ओह! रास्ते में माताओं को कितने कष्ट हैं। ......"

प्रकाश ने कहा—

"कोई भी माताजी इसको कष्ट नहीं गिनती हैं। बल्कि बड़ी माताजी तो कहा करती हैं कि—

"हे भगवन्! ऐसी भयंकर ठण्डी में भी खुले में बैठकर रात्रि बिताने की क्षमता मुझे कब प्राप्त होगी? " पुनः आगे सुनो क्या होता है—

तब सभी लोग उत्सुकता से सुनने लगते हैं—

"बाबाजी रात्रि में २–३ घण्टे सोकर जल्दी से उठ जाते हैं और तीन बजे ही हल्ला शुरू कर देते हैं। पुनः सभी माताजी घास छोड़कर जरा सी चूरा-चारा में बैठकर प्रतिक्रमण पाठ सामायिक आदि शुरू कर देती हैं। बाबाजी सारी घास बोरो में भरकर बैलगाड़ी में सब बिस्तर बोरी लाद कर उसी में बैठकर बैलगाड़ी ४ बजे करीब रवाना कर देते हैं।.. .. "

बीच में पिता ने पूछा—

"क्यो इतनी जल्दी क्यो ? आजकल तो सात, साढ़े सात बजे दिन उगता है। छह बजे तक घास मे माताओं को क्यों नहीं बैठने देते.... ....?"

प्रकाश ने कहा—

"यदि बाबाजी इतनी जल्दी न करे तो माताजी का आहार मध्याह्न एक बजे होवे।"

"क्यो ?"

"क्योकि माताजी सुबह उठकर दिन उगते ही चल देती है। लगभग ६–१० मील तक चलती हैं। बाबाजी की बैलगाडी यदि चार बजे रवाना होती है तो ७–८ बजे तक आहार के स्थान पर पहुच पाती है। ये लोग पहले आहार के योग्य स्थान ढूंढते हैं हैं। पुन वहाँ सामान उतारकर, कपड़े सुखाकर, स्नान आदि से निवृत्त होकर चौका बनाते है। माताजी ६–३०, १० बजे तक वहां आ जाती हैं। लगभग ११ बजे तक माताजी का आहार होता है। पुन माताजी सामायिक करके १ बजे रवाना हो जाती हैं।

इसी बीच माँ ने पूछा—

"माताजी को संग्रहणी की तकलीफ थी सो रास्ते में स्वास्थ्य कैसा रहता है ?"

प्रकाश ने कहा—

"माताजी ने बताया था कि—

मथुरा आने तक तो रास्ते मे बहुत ही दस्त लगते रहे किन्तु वहाँ आकर मैंने कुछ जाप्य करना प्रारम्भ कर दिया। रास्ते भर मंत्र जपती रहती हूँ, उसी मन्त्र के प्रभाव से ही अब प्राय: माताजी को रास्ते में कोई खास तकलीफ नहीं होती है। सभी माताजी तो हमें हर समय बहुत ही प्रसन्न दिखती हैं। बल्कि रास्ते में माताजी आपस में कर्म प्रकृतियों की इतनी ऊँची-ऊँची चर्चायें करती हैं कि साथ मे चलने वाले गाँव-गाँव के नये-नये श्रावक भी आश्चर्य चकित हो जाते हैं। रास्ते में जो भी जैन के गाँव आते हैं माताजी प्राय एक दिन वहाँ ठहरती हैं और श्रावकों को बहुत ही अच्छा उपदेश सुनाती हैं। उपदेश सुनकर बड़े-बड़े लोग माताजी से बहुत ही प्रभावित होते हैं और दो चार दिन रुकने का आग्रह करते हैं। कही कहीं के श्रावक श्राविकायें तो पैर पकड कर बैठ जाती हैं। लेकिन ....माताजी तो इतनी कठोर हैं कि उन सबकी प्रार्थना को ठुकरा कर आगे विहार कर देती हैं।"

इत्यादि प्रकार से प्रकाश ने अनेक संस्मरण सुनाये जिन्हे सुनकर घर वालों को बहुत प्रसन्नता हुई। साथ ही रास्ते के कष्टो को सुनकर सिहर उठे और बार-बार कहने लगे—

"अहो ! दीक्षा लेकर पैदल चलना, रास्ते के कष्टो को

झेलना बहुत ही कठिन है।"

मनोवती ने बताया—

"प्रात प्रतिदिन जब हमारी बैलगाडी ७-८ बजे गन्तव्य स्थान पर पहुचती है, तब कपडे सुखाते हैं इससे प्राय: हम लोग इतनी भयकर सर्दी में भी गीले कपडे पहन कर ही रसोई बनाते हैं।"

मनोवती की सघ सेवा, कुशलता और योग्यता को देखकर पिताजी बहुत ही प्रसन्न थे, उन्होंने पूछा—

"बिटिया ! तुम्हें खाना कितने बजे मिलता है ?"

"खाना प्रतिदिन १२-१ बजे खाती हैं।"

तभी प्रकाश ने कहा—

"चौके की रसोई का खाना यद्यपि ठण्डा और रूखा सूखा रहता है तो भी भूखे पेट मीठा लगता है। घर मे तो मैं ऐसी रोटियाँ हाथ से भी नहीं छुऊँगा किन्तु रास्ते में बडे प्रेम से खा लेता हू।"

'और शाम को क्या खाते हो ?"

'शाम को माताजी के साथ चलता हू इसलिये प्यास लगने पर कमण्डलु का पानी पी लेता हू।"

तब पिता ने कहा—

"बेटा ! तुम घर में ५-७ बार खाते हो और रास्ते मे एक बार। अत अब सघ मे नही जाना, नही तो बहुत कमजोर हो जाओगे।"

प्रकाश ने हँसकर कहा—

"वाह ! मैं तो अभी साथ मे ही जाऊँगा और पूरी

यात्रा कराऊँगा।"

उस समय टिकैतनगर में माताजी के स्थान पर एक लड़की आती थी जो अपने गोद में किसी छोटी सी बालिका को लिये रहती थी। वह वहाँ खड़ी ही रहती और बड़ी माताजी (ज्ञानमती जी) को एकटक निहारा करती थी। एक बार माताजी ने पूछ लिया—

"तुम किसकी लड़की हो!"

वह रोने लगी और बोली—

"मैं छोटेलालजी की लड़की हू ?"

माताजी उसे आश्चर्य से देखने लगीं। पुन: पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम कुमुदनी है।"

तभी माताजी से कहा—

"तुम रोती क्यों हो, जब मैंने तुम्हें छोड़ा था तब तुम मात्र ½ वर्ष की थी। भला अब मैं तुम्हें कैसे पहचान पाती ?"

इसके बाद माताजी ने कुमुदनी को कुछ शिक्षायें दी और सान्त्वना देकर घर भेज दिया। उसी समय कुमुदनी घर तो आ गई। माँ से बोली—

"मुझे भी माताजी के साथ शिखरजी भेज दो।"

माँ ने कहा—

"इधर तेरे पिता तो मनोवती और प्रकाश को ही रोक रहे हैं। भला तुझे कैसे भेज देंगे ? . . .."

बेचारी कुमुदनी रोकर रह गई।

संघ का विहार टिकैत नगर से हो गया। क्रम-क्रम से

फैजाबाद, जौनपुर आदि होते हुए आरा पहुंच गया।

इधर कुमुदनी ने माताजी के पास आने के लिये दूध का त्याग कर दिया। सबने घर मे बहुत समझाया, गुस्सा किया, किन्तु उन्होंने कितने ही दिनों तक दूध नहीं लिया था।

पिता का प्रयास

पिता ने कैलाश से कहा—

"कैलाश! तुम आरा तार दे दो कि तुम्हारे पिताजी बहुत ही बीमार हैं, प्रकाश तुम जल्दी आ जाओ।"

पिता की आज्ञा के अनुसार कैलाश ने तार दे दिया।

आरा मे तार मिलते ही प्रकाशजी ने माताजी को बताया। उस समय वहाँ आ० विमलसागरजी महाराज संघ सहित आये हुए थे उनके पास पहुचकर घबराये हुए बोले—

"महाराजजी! मेरे पिताजी अस्वस्थ हैं ऐसा तार आया है। ···" महाराजजी ने बीच में उत्तर दिया।

"प्रकाश! तुम चिन्ता मत करो, तुम्हारे पिता स्वस्थ हैं। दुकान पर बैठे कपडे फाड रहे हैं और ग्राहक उन्हे घेरे हुए हैं।"

प्रकाश कुछ शांत तो हुये किन्तु पूर्ण विश्वास नहीं कर पायें। तभी अन्य लोगों के द्वारा महाराज के मुख से निकले अनेक शब्दों की सत्यता को सुनकर विश्वस्त हो गये और मध्य की सभी यात्रा करते हुये सकुशल संघ सम्मेदशिखर पहुंच गया।

सन् १९६३ ज्येष्ठवदी सप्तमी को सभी माताजी ने एक साथ सम्मेदशिखर पर्वत पर चढ़कर बीस टोंकों की वंदना की। उस समय माताजी को जो आनन्द आया वह अकथनीय था।

कु० मनोवती की पुन: पुन: प्रार्थना से पूज्य माताजी ने उन्हें भगवान पार्श्वनाथ की टोंक पर सप्तम प्रतिमा का व्रत दे दिया अब मनोवती ने अपने जीवन को धन्य माना और दीक्षा की प्रतीक्षा करने लगी। वहाँ के मैनेजर ने प्रकाशचन्द को तार भी दिया और पत्र भी दिया जिसमें प्रकाश को बहुत जल्दी आ जाने के लिये लिखा हुआ था। अब प्रकाशचन्द का मन उद्विग्न हो उठा तभी माताजी ने उन्हें शुभाशीर्वाद देकर भेज दिया। जयपुर के सरदारमलजी भी अपने घर चले गये। शेष सभी ब्रह्मचारिणियाँ वहीं पर रहीं। माताजी लगभग १ माह तक शिखर जी रहीं। पश्चात् उनके संघ का चातुर्मास कलकत्ता हो गया।

प्रकाशचन्द ने घर मे आकर रास्ते के अनेक अनुभव सुनाये तथा यह भी बताया कि माताजी आरा, बनारस आदि के रास्ते में वहाँ के ब्राह्मण विद्वानों से तथा संघस्थ आर्यिका जिनमतीजी से संस्कृत मे घण्टों चर्चा किया करती हैं। रास्ते में चलते-चलते पंचसंग्रह, लब्धिसार के आधार से कर्म प्रकृतियों के बंध, उदय, सत्त्व आदि के बारे में खूब चर्चायें करती रहती हैं। बनारस में पं० कैलाशचन्द सिद्धांतशास्त्री माताजी को स्याद्वाद विद्यालय दिखा रहे थे तब भी माताजी सिद्धांतशास्त्री जी के साथ संस्कृत मे ही वार्तालाप कर रही थीं। माताजी की इतनी अधिक विद्वत्ता से सभी लोग बहुत ही प्रभावित होते हैं। सुनकर माता-पिता भी बहुत ही प्रसन्न हुए।

[१३]

यन्त्र लाभ

सन् ६३ में माताजी के संघ का चातुर्मास कलकत्ते हुआ था पिता से आज्ञा लेकर कैलाशचन्द अकेले ही दशलक्षण पर्व में माताजी के सान्निध्य में पहुच गये। ११–१२ दिन रहे, माताजी के उपदेश का लाभ लिया पुन. जब घर जाने लगे तब उदास मन से माताजी के पास बैठ गये और बोले—

"माताजी ! इस समय हमारे घर की व्यापारिक स्थिति कमजोर चल रही है। पिताजी का स्वास्थ्य अब दिन पर दिन कमजोर होता जा रहा है। अत वे दुकान पर काम बहुत कम देख पाते हैं। परिवार बडा है······।'

माताजी ने ऐसा सुनकर शिक्षास्पद बातें कही और बोली—

"कैलाश ! सबसे पहले तुम पच अणुव्रत ले लो। पच अणुव्रत मे जो परिग्रहपरिमाणव्रत आता है इसको लेने वाला व्यक्ति नियम से धन मे बढता ही चला जाता है। साथ ही नित्य देव-पूजा का नियम कर लो· · ।"

भाई कैलाशचन्द ने माताजी की आज्ञा शिरोधार्य करके विधिवत् पच अणुव्रत ग्रहण कर लिये तथा देव पूजा का नियम भी ले लिया। पुन माताजी से कोई यन्त्र के लिये प्रार्थना की तभी माताजी ने सघ के चैत्यालय मे एक यन्त्र विराजमान था उसे ही कैलाशचन्द को दे दिया और बोलीं—

"देखो, इस यन्त्र को ले जाकर तुम अपने घर मे तीसरी

मंजिल पर बनी हुई एक छोटी सी कोठरी है उसी में विराजमान कर देना। प्रतिदिन इसका अभिषेक होना चाहिये, अर्घ चढ़ाना चाहिये और शाम को आरती करनी चाहिये।"

कैलाशचन्द जी ने वह यन्त्र बड़े आदर से लिया, मस्तक पर चढ़ाया। पुन: वहां से चलकर घर आ गये। घर आकर माता-पिता, पत्नी और भाई बहनों को कलकत्ते के समाचार सुनाये। माताजी के उपदेश मे जो कुछ विशेष बातें सुनते रहे थे वह सब सुनाया। तथा कलकत्ते क श्रावकों की गुरुभक्ति और अपने प्रति किये गये वात्सल्य भाव को भी बताया। तथा अनेक बातें बताईं। वे बोले—

"वहाँ दशलक्षण पर्व में प० वर्धमान शास्त्री के द्वारा दशलक्षण विधान कराया गया। बेलगछिया में बहुत बड़ा पंडाल बनाया गया। उसमें क्षमावाणी का प्रोग्राम बड़े रूप में रखा गया। श्वेताम्बर समाज मे प्रसिद्ध 'दूगड जी' और दि० जैन समाज के प्रमुख श्रीमान् साहू शांतिप्रसाद जी भी आये थे।" पुन: पिता से बोले—

"आप यहाँ मोह मे पागल रहते हो। सदा चिन्ता और दुख माना करते हो, जरा वहाँ आकर तो देखो· ···· ··।"

"माताजी के उपदेश के लिये वहां की समाज लालायित रहती है कि देखते ही बनता है। वहाँ के एक भक्त माताजी को एक विदुषी को खान और अद्भुत निधि के रूप में देखते हैं। भक्तगणों में प्रसिद्ध चांदमल जी बड़जात्या, अमरचन्द जी पहाड़िया, किशनलाल जी काला, सीताराम पाटनी, पारसमल जी बलूंदा वाले, नागरमलजी अग्रवाल जैन, सुगनचन्द जी

लुहाडिया, कल्याणचन्द पाटनी, शांतिलाल जी बड़जात्या आदि तन-मन-धन से सपत्नीक, सपरिवार माताजी की भक्ति कर रहे हैं। वहाँ बेलगछिया में प्रतिदिन ११-१२ चौके लगते हैं। बेलगछिया में रहने वाले ब्र० प्यारेलाल जी भगत और ब्रह्मचारिणी चमेलाबाई प्रमुख हैं। उनकी भक्ति भी अटूट है। ब्र० भगत ने तो मेरे सामने माताजी के चरित्र की, ज्ञान की और अनुशासन की बहुत ही प्रशंसा की है। ब्र० चमेलाबाई के चौके में माताजी का पडगाहन होते ही ब्रह्मचारिणी जी भावविभोर हो जाती हैं यहाँ तक कि उनकी आँखो से आनन्द के अश्रु झरने लगते हैं। यह मैंने स्वयं आँखों से देखा है।"

कैलाश ने यह भी बताया कि मैंने भी शुद्ध जल का नियम लेकर माताजी को आहार देना शुरू कर दिया है।

अनन्तर अपने अणुव्रत और देवपूजा के नियम को बताकर वह माताजी द्वारा दिया गया यन्त्र माँ को दे दिया तथा माताजी द्वारा कथित उपासना विधि भी बता दी। उस समय माँ को यन्त्र पाकर ऐसा लगा कि मानो अपने को कोई निधि ही मिल गई है अथवा यह यन्त्र पारसमणि ही है। उन्होंने बड़ी भक्ति से माताजी के कहे अनुसार यन्त्र को तिमंजिले कमरे मे एक सिंहासन पर विराजमान कर दिया और स्वयं देवपूजा करके आकर विधिवत् उसका न्हवन करने लगीं, अर्घ्य चढ़ाने लगी और शाम को ऊपर सामूहिक (सब मिलकर) आरती करने लगीं।

उस घर मे वह यन्त्र ऐसा फला कि आज तक भी घर में व्यापार की हानि नहीं हुई है। दिन पर दिन मोहिनीजी के पुत्रों ने अपने व्यापार बढ़ाये हैं और धन कमाते हुये धर्म भी कमाया

है । आज भी मोहिनी जी के तीनों पुत्र जो कि गृहस्थाश्रम में हैं, प्रतिदिन देवपूजा करते हैं । शक्ति के अनुसार दान भी देते हैं, स्वाध्याय भी करते हैं, हर एक साधुसंघों की सेवा में तत्पर रहते हैं और धन-जन से सम्पन्न सुखी हैं । मैं समझती हूँ कि यह सब उस माताजी के हाथ से मिले यन्त्र का और माँ मोहिनी के द्वारा की गई विधिवत् उपासना का ही फल है । आज भी माताजी अपने हाथ से जिसे यन्त्र दे देती हैं और यदि वह उनके पास अणु व्रत और देवपूजा का नियम ले लेता है तो वह निश्चित ही धन की वृद्धि समृद्धि को प्राप्त कर परिवार, पुत्र, मित्र, यश आदि को भी प्राप्त कर लेता है । ऐसे अनेक उदाहरण मेरे सामने मौजूद हैं ।

आचार्य विमलसागर जी के संघ का दर्शन

सन् १९६३ में ही इधर टिकैतनगर से १५ मील दूर बाराबंकी मे आ० विमलसागर जी महाराज का संघ सहित चातुर्मास हो रहा था । भला माँ मोहिनी अवसर क्यों चुकतीं । वे कुछ दिन के लिये बाराबंकी आईं । आचार्यश्री के संघ में मुनि आर्यिकाओं का दर्शन किया, प्रसन्न हुई । आहार दान का लाभ लेने लगी । आ० विमलसागर जी महाराज भी इनके प्रति आ० ज्ञानमती माताजी की मा के नाते बहुत ही वात्सल्य भाव रखते थे । एक बार महाराज ने आग्रह कर इन्हें तृतीय प्रतिमा के व्रत दे दिये जिसे इन्होंने बड़े प्रेम से पाला है । माँ मोहिनी को सदा ही प्रत्येक आचार्यों, मुनियों और आर्यिकाओं का आशीर्वाद तथा असीम वात्सल्य मिलता रहा है ।

नन्दीश्वरद्वीप का प्रतिष्ठा महोत्सव

सन् १९६४ मे फरवरी माह मे सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर नूतन बनाये गये नन्दीश्वर द्वीप के बावन चैत्यालयों की जिनबिंब प्रतिष्ठा का महोत्सव मनाया जा रहा था। उस समय माताजी के सघ को कलकत्ते के श्रावक शिखर जी ले आये थे। माताजी वहीं पर विराजमान थीं।

माता पिता ने सोचा--

तीर्थयात्रा, प्रतिष्ठा महोत्सव और सघ के दर्शन का लाभ एक साथ तीनो मिल जावेंगे अत ये लोग सम्मेदशिखर जी पर आ गये। यहां पर माताजी के दर्शन किये। मां ने देखा, यहाँ तो हर समय कलकत्ते के श्रावक-श्राविकायें माताजी को घेरे रहते हैं और कोई न कोई तत्त्वचर्चा या प्रश्नोत्तर यहाँ चला करता है। प्रतिष्ठा के अवसर पर पडाल मे माताजी का उपदेश भी होता था। पिता ने इतनी बडी सभा मे इतना प्रभावित उपदेश सुना तो उनका हृदय फूल गया, बहुत ही प्रसन्न हुये।

स्वय दीक्षा का निषेध

वहाँ तप कल्याणक के अवसर पर एक व्यक्ति ने अकस्मात् वस्त्र उतार कर फेंक दिया और नग्न हो गये। उसी समय किसी व्यक्ति ने कहीं से एक पिच्छी, एक कमण्डलु लाकर उन्हें दे दिया। कुछ श्रावक उनकी जय-जय बोलने लगे। उस समय वहाँ पर एक मुनि धर्मकीर्ति जी बैठे हुये थे और माताजी अपने सघसहित बैठी थीं। महाराज जी ने इस दीक्षा को अमान्य व आगम विरुद्ध बतलाया तथा माताजी ने भी यही कहा कि—

"यदि इन्हें मुनि बनना है तो विधिवत् धर्मकीर्ति मुनि से दीक्षा लेवें अन्यथा इन्हे समाज मुनि न माने।"

वहाँ पण्डित सुमेरुचन्द जी दिवाकर मौजूद थे। उन्होंने तप कल्याणक के बाद सारी स्थिति समझकर पुनः महाराज जी से और माताजी से परामर्श कर उन नग्न हुये व्यक्ति को एकान्त में ले जाकर समझाया तब वे बेचारे अपने को अपात्र देख उसी दिन रात्रि में ही कपड़े पहनकर अपने घर चले गये।

तब कहीं वहाँ समाज में शांति हुई। ऐसे और भी अनेक महत्त्वशाली प्रसंग वहाँ देखने को मिले थे। इन सभी प्रसंगों में माताजी के पास कलकत्ते के प्रबुद्ध श्रावक और ब्र० चांदमल जी गुरुजी तथा ब्र० प्यारेलाल जी भगत आकर परामर्श करते रहते थे। यह सब माताजी के अगाध आगम ज्ञान, निर्भीकता तथा दृढ़ता का ही प्रभाव था। "भला कौन से माता-पिता ऐसे होंगे जो अपनी पुत्री को इतने ऊँचे चारित्र पद पर, इतने ऊँचे ज्ञानपद पर और इतने ऊँचे गौरव पद पर प्रतिष्ठित देखकर अतिशय आनन्दित नहीं होंगे।"

अतएव माताजी की प्रभावना से प्रभावित होकर माता-पिता ने प्रतिष्ठा के बाद भी वहाँ कुछ दिन रहने का निर्णय ले लिया। कु० मनोवती उस प्रतिष्ठा के अवसर पर दीक्षा चाहती थी लेकिन शायद अभी उनकी काललब्धि नहीं आई थी यही कारण था कि अभी उन्हें दीक्षा नहीं मिल सकी।

माँ मोहिनी ने एक दिन माताजी के साथ पूरे तीर्थराज के पर्वत की पैदल वंदना की, उस समय उन्हें बहुत ही आनन्द आया और उन्होंने अपने जीवन में उस वंदना को बहुत ही महत्वपूर्ण समझा था। यह उनको अपनी पुत्री के आर्यिका जीवन के प्रति एक अप्रतिम श्रद्धा का प्रतीक था।

माँ प्रतिदिन चौका करती थी। कोई न कोई माता जी उनके चौके मे आ जाती थीं किन्तु बड़ी माताजी का आना तो प्रतिदिन वहां सम्भव नहीं था, तब पिताजी उन्हें आहार देने के लिये आस-पास के चौके में पहुंच जाते थे और आहार देकर खुश हो जाते थे। एक दिन वे चौके में बैठे किसी वस्तु को देने के लिये आग्रह कर रहे थे और माताजी ने हाथ बन्द कर लिया था तब वे बोले—

"माताजी ! एक ग्रास ले लो एक ग्रास·········· बस मैं चला जाऊंगा। नहीं माताजी, एक ग्रास लेना ही पड़ेगा·········।'

उनका इतना आग्रह देखकर चौके के लोग जिन्हें मालूम था "कि ये माताजी के पिता हैं" खिलखिला कर हँस पड़े।

पापभीरुता

एक बार माँ के चौके मे कोई महिला कुछ सन्तरे दे गई और बोली—"इन्हें आहार में लगा देना।"

माँ ने दो तीन छीलकर रख लिये क्योंकि पहले और भी सन्तरे, सेब आदि तैयार कर रख चुकी थीं। आहार के बाद वह सन्तरा बच गया। तब माँ पिता को देने लगीं। वे बोले—

"वह आहारदान में एक महिला दे गई थी अतः वह निर्माल्य सदृश है। मैं इसे कतई नही खाने का···।" तब माँ बच्चों को देने लगीं, पिता ने रोक दिया। बोले—

"बच्चो को भी नहीं खिलाना और तुम भी नहीं खाना· ····।"

तब माँ मोहिनी इस समस्या को लेकर माताजी के पास

आईं और सारी बातें सुनकर की कथा सुनाने लगीं—

"माताजी ! यदि कोई महिला चौके में जबरदस्ती फल दे जावे और वह सब आहार में नहीं उठे तो उसे क्या करना चाहिये ?"

माताजी ने हँसकर कहा—

"उसे प्रसाद समझकर खाना चाहिये ।"

यह उत्तर पिता के गले नहीं उतरा तब माताजी ने कहा—

"अच्छा इसे अन्य लोगों को प्रसाद रूप में बांट दो !"

तब वे बहुत खुश हुए और बोले—

"ठीक है, अब कल से तुम किसी के फल नहीं लेना···।"

देखो, किसी ने आहार के लिये फल दिया और यदि वह अपने खाने में आ गया तो महापाप लगेगा··।"

माताजी ने कहा—

"यदि कोई साधु को न देकर स्वयं खा लेता है तब तो उसे पाप लगता है और यदि शेष बच जाने पर प्रसाद रूप से उसे खाया है तो पाप नहीं लगेगा··। फिर भी यदि तुम्हें नहीं पसंद है तो छोड दो, मत खावो, हाथ की हाथ अन्य किसी को प्रसाद कहकर बाँट दो।"

यह थी पिता छोटेलाल जी की निःस्पृहता और पापभीरुता। यही कारण है कि आज उनकी सन्तानों पर भी वैसे ही संस्कार पड़े हुए हैं।

मोह से विक्षिप्तता

एक दिन कु० मनोवती के विशेष आग्रह से माताजी ने उसके केशों का लोंच करना शुरू कर दिया। वह बालकी-सी

कि मुझे दीक्षा लेना है तो केशलोंच का एकाध बार अभ्यास कर लूं। इसी भाव से वह केशलोंच करा रही थी। माताजी ने सोचा—

"ये लोग यहीं ठहरे हुए हैं तो बुला लूं। केशलोच देख लें.....।"

ऐसा सोचकर माताजी ने उन्हें सूचना भिजवा दी। पिता जी वहाँ कमरे में आये देखा कु० मनोवती के केशो का लोंच, वे एकदम घबरा गये और हल्ला मचाते हुए जल्दी से अपने कमरे मे भागे। वहाँ पहुंचकर माँ को बोले—

"अरे! देखो, देखो, माताजी हमारी बिटिया मनोवती के सिर के केश नोचे डालती हैं। चलो, चलो, जल्दी से रोको।" और ऐसा कहते हुए वे रो पड़े। माँ दौड़ी हुई वहाँ आई और बोली—

"माताजी! आपने यह क्या किया? देखो, इसके पिताजी तो पागल जैसे हो रहे हैं और रो रहे हैं। उनके सामने आप इसका लोंच न करके बाद मे भी कर सकती थी।"

उनकी ऐसी बाते सुनकर सभी माताजी हँसने लगी। और बोली—

"भला केशलोच देखने मे घबराने की क्या बात है। मैं भी सदा अपने केशलोच करती हू। "

पुन पिताजी वहीं आ गये और बोले—

"अरे अरे छोड दो माताजी!! मेरी बिटिया मनोवती को छोड़ दो, इसके बाल न नोचो, देखो तो इसका सिर लाल-लाल हो गया है।......।"

परन्तु उनकी बातों पर लक्ष्य न देकर माताजी हँसती रहीं कु० मनोवती के केशों का लोंच करती रहीं। मनोवती भी हँस रही थीं और मौन से ही संकेत से पिताजी को सान्त्वना दे रही थी कि—

"पिताजी ! मुझे कष्ट नहीं हो रहा है। मैं तो हँस रही हूं फिर आप क्यों दुःखी हो रहे हो और क्यों अश्रु गिरा रहे हो ?"

माताजी ने भी उन्हें सान्त्वना दी। लोंच पूरा होने के बाद मनोवती ने कहा—

"मैंने तो स्वयं ही आग्रह किया था। मैं एक वर्ष से माता जी से प्रार्थना कर रही थी। बड़े भाग्य से ही आज तीर्थराज पर ऐसा अवसर मिला है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि मैं भी एक दिन आर्यिका बन जाऊँगी।"

पिताजी उसे अपने कमरे में ले गये, खूब समझाया और बोले—

"बिटिया ! तुम अब इनके साथ मत रहो। थोड़े दिन घर चलो। बाद में फिर जब कहोगी तब कैलाश के साथ भेज देंगे ।"

लेकिन इधर माता जी के संघ का श्रवणबेलगुल यात्रा के लिये प्रोग्राम बन चुका था। अब वो पिता के साथ घर जाने को राजी नहीं हुई और पिता को समझाते हुए बोली—

"माताजी ने अभी कलकत्ते चातुर्मास में मुनि श्रुतसागर जी की लगभग १८ वर्षीया पुत्री सुशीला को घर से निकालने के लिये लाखों प्रयत्न किये हैं। महीनों प्रतिदिन सुशीला को और

उसकी मां को समझाती रहती थी । जब सुशीला बड़ी हो गई तब उसकी मां को समझा-बुझाकर माताजी ने पुत्री को ५ वर्ष का ब्रह्मचर्यव्रत दे दिया है । अभी उनके भाइयों ने उन्हें आने नहीं दिया है फिर भी वह एक दिन संघ में तो आयेंगी ही । सुशीला के भाई भी माताजी के परमभक्त थे अब कुछ माताजी से नाराज भी रहते हैं किन्तु माताजी के हृदय मे इतनी परोपकार भावना है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ।" इत्यादि समझाने के बाद आखिर पिता को लाचार होना पड़ा ।

कुमुदनी के लिये प्रयास

एक दिन माताजी को पता चला कि कुमुदनी मेरे दर्शन के लिये घर मे बहुत ही आग्रह कर रही है । किन्तु वह यहाँ आकर यदि संघ मे रह जाय तो ? इसीलिये पिता उसे नहीं लाये हैं । तब माताजी ने पिता छोटेलाल जी को बहुत समझाया । वे हँसते रहे और बोले—

"माताजी ! अब मैं तुम्हारे पास अपनी किसी पुत्री को भी दर्शन करने नहीं भेजूँगा, देखो, अभी तुमने कैसे मनोवती की खोपड़ी खाली कर दी है । वह बड़ी निष्ठुर हो ।"

माताजी क्या कर सकती थीं सोचा—उसके भाग्य मे जो लिखा होगा सो ही होगा कोई क्या कर सकता है । (इनका विवाह कानपुर मे हुआ है ।)

एक दिन कलकत्ते के सुगनचन्द लुहाडया ने वहीं पर माताजी के पास एक १८ वर्षीय युवक ब्र० सुरेशचन्द को लाकर सौंप दिया था । और ब्र० महावीरप्रसाद जी भी साथ में ही थे । एक ब्र० वृन्दावनजी बुन्देलखण्डीय थे । ब्र० भवरीबाई, ब्र० कु०

मनोवती थी, साथ में एक दो महिलायें और भी थीं।

ब्रह्मचारी चांदमल गुरुजी ने पंचमास में यात्रा का मुहूर्त निकाला और उसी के अनुरूप उन्होंने पूज्य माताजी के संघ का विहार श्रवणबेलगोल यात्रा हेतु पुरलिया की तरफ करा दिया। विहार की अगवानी में माता मोहिनी भी थीं। पिताजी भी उपस्थित थे। विहार के बाद लोग अपने घर वापस आ गये।

[१४]

मनोवती की मनोभावना सफल हुई

सन् १९६४ में हैदराबाद से किसी श्रावक का लिखा हुआ एक पत्र आया।

"आर्यिका ज्ञानमती माताजी अत्यधिक बीमार हैं।" माता-पिता बहुत दु:खी हुये। कैलाशचन्द को भेजा, "जाओ समाचार लेकर आवो कैसी तबीयत है।" कैलाशचन्द आये—देखा, माता-पाटे पर लेटी हुई हैं और बोलने अथवा करवट बदलने की भी उनकी हिम्मत नहीं है। संघ की आ० पद्मावती, जिनमती आदि आर्यिकायें परिचर्या में रत हैं। आर्यिकाओं से सारी स्थिति विदित हुई। पुन दो चार दिन बाद कुछ सुधार होने पर एक दिन मध्यान्ह में कु० मनोवती, भाई कैलाश चन्द के पास बैठी-बैठी रोने लगी, बोली—

"भाई साहब! मुझे दीक्षा दिला दो। अभी ८ दिन पूर्व भी माताजी के बारे में सभी डाक्टर वैद्यों ने जवाब दे दिया था। बोले थे अब ये बचेंगी नहीं''''' यदि माता जी को कुछ हो गया तो मैं क्या करूंगी?"

कैलाशचन्द जी ने बहुत कुछ सान्त्वना दिया किन्तु उसे

शान्ति नहीं मिली पुन वह आकर माताजी के पास रोने लगी और बोली—

"मेरे भाग्य मे दीक्षा है या नहीं ? मैं कितने वर्षों से तडफ रही हू ।" इतना कहकर उसने दीक्षा न मिलने तक छहों रस त्याग कर दिये। दो दिनो तक वह नीरस भोजन करती रही। तब कैलाशचन्द जी माताजी के पास बैठे और बोले—

"माता जी ! इसे कैसे समझाना ?... . "

माताजी धीरे-धीरे बोली—

"कैलाश ! मैंने देखा है संघ मे जिसके भाव दीक्षा के नही होते हैं उसे कैसी-कैसी प्रेरणा देकर दीक्षा दी जाती है। किन्तु · पता नहीं इसके किस कर्म का उदय है। जो भी हो, यह बेचारी दीक्षा के लिये रो-रो कर आखें सुजा लेती है। अब मुझे भी इसके ऊपर करुणा आ रही है। जब मेरे दीक्षा के भाव थे तब मैंने भी तो पुरुषार्थ करके छह महीने के अन्दर ही दीक्षा प्राप्त कर ली थी। किन्तु इसे आज ६–७ वर्ष हो गये हैं। न इसके ज्ञान मे कमी है न वैराग्य मे, मात्र इसका शरीर अवश्य कमजोर है फिर भी यह चरित्र मे बहुत ही दृढ है यह मैंने अनुभव कर लिया है। अत मेरी इच्छा है कि तुम अब इस के सच्चे भ्राता बना ।"

इतना सुनकर कैलाश जी का भी हृदय पिघल गया। वे बोले—

"आप जो भी आज्ञा दें मैं करने को तैयार हू। मैं इस का रस परित्याग पूर्ण कराकर ही घर जाऊँगा।"

माताजी ने कहा—

"तुम आज ही टीकमगढ़ चले आवो और इसकी दीक्षा हेतु आ० शिवसागर जी से आज्ञा ले आवो। यह मेरे से ही दीक्षा लेना चाहती है।"

कैलाशजी ने माताजी की आज्ञा शिरोधार्य की। वहाँ से रवाना होकर टीकमगढ़ पहुचे। आचार्य को नमोऽस्तु करके यहाँ की सारी स्थिति सुना दी।

आचार्यश्री ने भी स्पष्ट कहा—

"मेरी आज्ञा है आ० ज्ञानमती माताजी उसे क्षुल्लिका दीक्षा दे दें।"

आज्ञा लेकर कैलाशचन्द वापस हैदराबाद आ गये। कु० मनोवती की खुशी का भला अब क्या ठिकाना।

माताजी ने श्रावण शुक्ला सप्तमी को भगवान् पार्श्वनाथ का मोक्ष कल्याणक होने से उसी दिन दीक्षा देने के लिये सूचना कर दी। फिर क्या था हैदराबाद के श्रावकों के लिये यहाँ दीक्षा देखने का पहला अवसर था। भक्तो ने बड़े उत्साह से प्रोग्राम बनाया तीन दिन ही शेष थे। श्रावको ने हाथी पर बिंदोरी निकाली थी। कु० मनोवती को रात्रि के १–२ बजे तक सारे शहर मे घुमाया। इतनी मालायें पहनाई गई कि गिनना कठिन था। चन्दन के हार, नोटो की मालायें और पुष्पमालाओं से मनोवती को सम्मानित करते गये।

जाप्य का प्रभाव

श्रावण शुक्ला सप्तमी के प्रात. से ही मूसलाधार बारिश चालू हो गई। ऐसा लगा—

"खुले मैदान में दीक्षा का मंच बना है। दीक्षा वहाँ कैसे

होगी ?जनता कैसे देखेगी ?· ·· ”

कैलाश ने माताजी के सामने समस्या रखी। माताजी ने एक छोटा सा मन्त्र कैलाशचन्द को दिया और बोलीं—

“एक घण्टा जाप्य कर लो और निश्चिन्त हो जाओ, दीक्षा प्रभावना के साथ होगी।”

ऐसा ही हुआ, दीक्षा के समय दिगम्बर जैन, श्वेताम्बर जैन और जैनेतर समाज की भीड बहुत ही अधिक थी।

इधर दीक्षा के एक घन्टे पहले ही बादल साफ हो गये और आश्चर्य तो इस बात का रहा कि आर्यिका ज्ञानमती माताजी को बैठने की भी शक्ति नहीं थी सो पता नहीं उनमे स्फूर्ति कहा से आ गई कि उन्होंने विधिवत् दीक्षा की क्रियायें एक घन्टे तक स्वयं अपने हाथ से कीं और नवदीक्षिता क्षुल्लिका जी का नाम “अभयमती” घोषित किया, अनन्तर ५ मिनट तक जनता को आशीर्वाद भी दिया। दीक्षा विधि सम्पन्न होने के एक घन्टे पश्चात् पुन मूसलाधार वर्षा चालू हो गयी। तब सभी लोगो ने एक स्वर से यही कहा—

“माताजी में बहुत ही चमत्कार है, धर्म की महिमा अपरम्पार है·· ·· ·· ।” अगले दिन भाई कैलाशजी ने सजल नेत्रो से क्षुल्लिका अभयमती माताजी को आहार दिया उन्हें दूध, घी आदि रस देकर मन सन्तुष्ट किया। अब उन्हे यह समाचार माता-पिता को सुनाने की आकुलता थी अत' बडी माताजी की आज्ञा लेकर उधर से भगवान् बाहुबलि की (श्रवणबेलगोल की) वन्दना करके वापस घर आ गये।

इधर आ० ज्ञानमती माताजी को भी स्वास्थ्य लाभ होता

गया। उधर कैलाशजी के मुख से माताजी की अस्वस्थता सुनी, पुनः मनोवती की दीक्षा के समाचार सुनकर माँ मोहिनी रो पड़ीं। वे बोलीं—

"मैंने कौन से पापकर्म संचित किये थे कि जो अपनी दोनों पुत्रियों की दीक्षा देखने का अवसर नहीं मिल सका।.... ."

पिताजी को भी बहुत खेद हुआ किन्तु उस समय आने-जाने की इतनी परम्परा नहीं थी कि जो झट ही रेल में सफर करके आकर दर्शन कर जाते। अस्तु।

पिता ने पूछा—

"माताजी को ऐसी सीरियस स्थिति क्यों हुई थी। क्या बीमारी थी?"

कैलाशजी ने बताया—

"माताजी को संग्रहणी की तकलीफ सन् १९५७ से है। अभी वैशाख, ज्येष्ठ की भयंकर गर्मी में माताजी ने १५-१५, १८-१८ मील पद विहार किया। रास्ते में आहार में अन्तराय भी होता रहता था। शरीर को बिल्कुल नहीं संभाला। फलस्वरूप हैदराबाद प्रवेश करने के ३-४ दिन पूर्व से ही उन्हें खून के दस्त शुरू हो गये थे फिर भी वे चलती रहीं। नतीजा यह निकला, पेट का पानी खतम हो गया और आँतों ने एकदम जवाब दे दिया। यहाँ तक कि छटाँक भर जल या अनार का रस भी नहीं पच सकता था। आहार में जरा सा रस और जल लेते ही उल्टियाँ चालू हो जातीं और खून के दस्त होते रहते। जैनेश्वरी दीक्षा की चर्या इतनी कठोर है कि २४ घण्टे में एक बार जो भी पेट में जा सके ठीक, इन्हीं सब कारणों से उनके

जीवित रहने की आशा नही रह गई थी। किन्तु कुछ पुण्य हम लोगो का शेष था, यही समझो कि जिससे वहाँ के भक्तों के और सघस्थ आर्यिकाओ के पुरुषार्थ से कलकत्ते से वैद्यराज केशवदेव जी आये आठ दिन वहाँ रहे उन्होने जल मे तक औषधि-काढ़ा मिश्रित किया।

तथा स्वय माताजी की प्रेरणा से वहाँ ब्र० सुरेशचन्द ने श्रावण सुदी एकम से पूर्णिमा तक सोलह दिन के पक्ष मे विधिवत् शांति विधान का अनुष्ठान किया है। इसी के फलस्वरूप माताजी अब स्वास्थ्य लाभ कर रही हैं।"

हैदराबाद में श्रीमान् जयचन्द लुहाड्या, मांगीलाल जी पाटनी, सुआलाल जी (डोरनाकल) जीऊबाई धर्मपत्नी नानकचद नन्दलाल जी, चम्पालाल जी, अक्षयचन्द जी आदि धर्मभक्तो के द्वारा की गई सघ की तन-मन-धन से जो भक्ति है यह भी बहुत ही विशेष है।

कैलाशजी की सारी बातें सुनकर पिताजी सोच रहे थे—

"अहो, जैनी दीक्षा कितनी कठोर है और कु० मनोवती ने भी अपने मनोभाव सफल कर लिए हैं। देखो, मैंने उसे कितना रोका! कितना दुःख दिया! यह सब मेरी पिता के नाते एक ममता ही तो थी किन्तु जिसके भाग्य में जो होता है सो होकर ही रहता है।'

इधर माताजी ने ब्र० सुरेश को भी आचार्य शिवसागर जी के सघ मे भेजकर क्षुल्लक दीक्षा दिला दी। आज ये सुरेश मुनि सम्भवसागर जी के नाम से प्रसिद्ध हैं। मुनि होने के बाद भी इन्होने माताजी के पास बहुत दिनो अध्ययन किया है और उन

की शिक्षाओ को वे अमूल्य रत्न समझते हैं। माताजी ने अपने इन ब्रह्मचारी शिष्य को मुनिपद पर पहुंचाकर उन्हें श्रद्धा से सदा 'नमोऽस्तु' किया है। गुरुजन अपने आश्रित भक्तो को यदि अपने बराबर पूज्य बना देते हैं तो वे महान गिने जाते हैं, किन्तु माता जी की महानता और उदारता उन गुरुओ से भी बढ़कर है कि जो अपने आश्रित भक्तो-बालको को अपने से भी अधिक महान और पूज्य बना देती हैं और उनकी भक्ति मे; उन्हें आगे बढ़ाने मे कोई कमी नही रखती हैं। ऐसे उदाहरण एक नहीं कई हमारे सामने रहे हैं।

[१५]

महामस्तकाभिषेक

सन् ६७ मे श्रवणबेलगोला मे भगवान् बाहुबली की विशालकाय प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक समारोह मनाया जा रहा था। सर्वत्र प्रान्त से यात्रियो की भीड दक्षिण में उमडती चली जा रही थी। टिकैतनगर से पिता छोटेलाल जी ने भी मोहिनी जी के विशेष आग्रह से अपने पुत्र सुभाषचन्द और पुत्र-वधू सुषमा को साथ लेकर लखनऊ से जाने वाली एक बस द्वारा यात्रा का प्रोग्राम बना लिया। उस अवसर मे इन लोगो ने अनेक यात्रायें कीं। खासकर श्रवणबेलगोल मे भगवान बाहुबली का महामस्तकाभिषेक देखा। वहाँ पर अत्यधिक जनता की भीड के कारण इनकी बस गाँव के बाहर सुदूर स्थान पर रुकी थी। वहाँ से आकर मोहिनी जी मन्दिर में भगवान का दर्शन करती। श्रवणबेलगोल में सुभाष को साथ लेकर पैदल दो-तीन मील पर जाकर कही कुआँ ढूंढ पाती। सुभाष पानी भरकर देते और ये

भुना हुआ आटा पानी में घोलकर पी लेतीं, पानी पी लेतीं, वापस चली आतीं। कभी निकट कुआँ यदि किसी जगह मिल गया तो खिचड़ी बनाकर खा लिया। इनके साथ गाँव की छोटी साहू की माँ भी गईं थीं उन्हे भी वे शुद्ध भोजन कराती थीं। इस प्रकार व्रती जीवन होने से इन्हें यात्रा के मार्ग में बहुत ही कष्ट उठाने पड़े, साथ ही पिताजी ने भी अस्वस्थता के कारण बहुत ही कष्ट का अनुभव किया। जो भी हो महान् यात्रा का पुण्य लाभ तो मिला ही मिला।

निराशा

अब ये लोग चाहते थे कि कहीं हमे इधर दक्षिण में ही विचरण करती हुई आ० ज्ञानमती माताजी के संघ का दर्शन मिल जावे। बहुत कोशिशें की, दूर दूर तक ढूंढते फिरे परन्तु ये लोग दर्शन नहीं पा सके। अंत में दर्शनों की आशा में निराशा लेकर ही ये लोग वापस घर आ गये। अब माँ और पिता के दुःख का पार नहीं रहा। वे सोचने लगे—

"ओह! सारी यात्रा मे माताजी के संघ के, हमारी दोनों पुत्रियों के दर्शन हमे नहीं हो पाये। आखिर उनका संघ है कहाँ?" तभी कुछ यात्रियों ने बताया कि—

"उस अवसर पर माताजी बड़वानी (बावनगजा) तीर्थक्षेत्र पर ठहरी हुई थीं। शायद महाभिषेक के बाद वे जल्दी ही वहाँ से विहार कर गईं और रास्ते में थीं। मुझे भी श्रवणबेलगोल में आ० सुपार्श्वमती जी ने बताया कि "मोतीचन्द! आपके गाँव सनावद मे महान विदुषी ज्ञानमती माताजी ससंघ पहुंच रही हैं। आपको जल्दी ही अपने घर पहुंच जाना चाहिये।" मैं यथा समय घर आया। माताजी का संघ

सनावद में चैत्र सुदी १५ को आया। पुण्ययोग से संघ के चातुर्मास का लाभ हम सनावद निवासियों को प्राप्त हुआ। माताजी अपने साथ में श्रवणबेलगोल के श्रेष्ठी धरणेन्द्रया की पुत्री शीला को अपने साथ ले आई थी। इनके लिये भी माताजी को बहुत पुरुषार्थ करना पड़ा था। उस समय यह ब्र० शीला थी। आज ये आर्यिका शिवमती बनकर माताजी के पास ही हैं।

पहला और अन्तिम पत्र

पिता छोटेलाल जी को कुछ दिन बाद पता चला कि माताजी अपने संघ सहित इस समय सनावद (म० प्र०) में वर्षा योग स्थापना कर चुकी हैं। उन्होंने अपने हाथ से एक लम्बा चौड़ा ३-४ पेज का पत्र लिखा और माताजी के पास सनावद डाल दिया। पत्र तीन दिन बाद माताजी को मिला, माताजी ने उसे पढ़ा। उसमें पिता ने अपनी आत्मा के कुछ कष्टों को लिखा था और सर्वत्र आस लगाने पर भी आपके तथा क्षु० अभयमती के दर्शन नहीं हो सके इस गहरी वेदना को भी कई एक पंक्तियों में व्यक्त किया था। इसके अतिरिक्त माँ के हृदय की व्यथा को भी लिख दिया था कि वे तुम दोनों के दर्शनों के लिये कितनी छटपटाती रहती हैं। इसके बाद अपने स्वास्थ्य के बारे लिखा था कि अब मैं शायद ही आपके दर्शन कर पाऊँगा। अब मेरा स्वास्थ्य रेल, मोटर से सफर के लायक नहीं रहा। इत्यादि।

पत्र पढ़कर माताजी ने मध्यस्थता धारण कर ली। संघ की अन्य आर्यिकाओं ने भी पत्र पढ़ा तथा क्षु० अभयमती जी ने भी

पत्र पढा। किन्तु बडी माताजी की पूर्ण उपेक्षा देखकर कोई कुछ भी प्रतिक्रिया नही कर सका। काश! उस समय माताजी क्या अपने किसी भक्त से पिता के प्रति दो शब्द सान्त्वना के नही लिखा सकती थी? क्या दो शब्द आशीर्वाद के नही लिखा सकती थीं? मुझे यह घटना ज्ञात कर आश्चर्य के साथ दुःख भी हुआ।

पिता छोटेलाल ने घर मे पत्र के प्रत्युत्तर की बहुत दिनों तक प्रतीक्षा की किन्तु जब एक महीना व्यतीत हो गया और कोई जवाब नही आया, तब उनके मन पर बहुत ही ठेस पहुची।·· ·· समय बीतता गया, बात पुरानी होती गयी।

क्षु० अभयमती के दर्शन

उन्होंने सन् १९६८ मे जैनमित्र में पढा। आ० शिवसागर के संघ का चातुर्मास प्रतापगढ़ मे हो रहा है। वहीं पर आर्यिका ज्ञानमती माताजी संघ सहित आ चुकी हैं। पिता ने मोहिनी जी के आग्रह से प्रतापगढ़ का प्रोग्राम बनाया। साथ में कैलाशचन्द, पुत्रवधू चन्द्रा, रवीन्द्र कुमार और एक पुत्री कामिनी को लाये थे। यहाँ इनके आते ही संघ मे स्थित मैंने इनका स्वागत किया। समाज को उनका परिचय देकर सेठ मोतीलाल जी जौहरी की कोठी के सामने एक कमरे मे इन्हे ठहराया गया। यहाँ आकर इन लोगो ने पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी और क्षुल्लिका अभयमती जी के दर्शन किये, अपार आनन्द का अनुभव किया। क्योंकि ५ वर्ष बाद माँ-पिता ने माताजी का दर्शन किया था। पिताजी इस समय कुछ स्वस्थ थे अतः प्रतिदिन शुद्ध वस्त्र पहनकर आहार दान देते थे।

यहीं पर सघस्थ मुनि सुबुद्धिसागर जी के पुत्र, पुत्रवधू आदि से इनका परिचय हुआ। कलकत्ते मे चांदमल जी बडजात्या आये हुए थे उनके भी परिचय हुआ। माताजी सन् ६३ से ६७ तक पाच वर्ष यात्रा करने मे रही थी। उनके पृथक् चातुर्मास में उनके साथ अनेक शिष्य-शिष्यायें मिली थी। जो सब इस समय यहीं पर थे।

शिष्य-शिष्याओं का परिचय

कलकत्ते चातुर्मास मे कु० सुशीला को ५ वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया था। वह और उसकी माँ बसन्तीबाई दोनो इन्ही के सानिध्य मे थी। ब्र० कु० शीला, कु० मनोरमा और कु० कला भी थी। ब्र० गेंदीबाई थी तथा मैं (मोतीचद) और यशवत कुमार भी वहीं सघ मे थे। हम सभी पूज्य माताजी के पास ही अध्ययन कर रहे थे। एक बार मोहिनी ने माताजी से पूछा—आपने इन सबको कैसे निकाला।

माताजी ने क्रम-क्रम से सबका इतिहास सुना दिया। सुशीला कला की हँसमुख वृति और चचल प्रवृत्ति, शीला की गम्भीरता, यशवत की कार्य कुशलता और मेरी पुत्र भावना से माता-पिता बहुत ही प्रसन्न होते थे और इन सबको निकालने मे माताजी को कितने सघर्ष झेलने पडे हैं। ऐसा सुनकर पिताजी बहुत ही आश्चर्य करने लगे।

मैं और यशवत तो टिकैतनगर परिवार से इतने प्रसन्न थे कि ऐसा लगता था मानो हमे कोई निधि ही मिल गई है। हम दोनो माता-पिता की तथा उनके चौके की हर एक व्यवस्था में लगे रहते थे। वहाँ पिताजी ने देखा कि ज्ञानमती माताजी सतत

पढ़ने-पढ़ाने में ही लगी रहती थीं। माताजी का जिस दिन सभा में उपदेश हो जाता था उस दिन वहाँ की समाज माताजी के ज्ञान की बहुत ही प्रशंसा करने लगती थीं। वहाँ एक बार सर सेठ भागचन्द जी सोनी अजमेर, सेठ राजकुमार सिंह इन्दौर आदि महानुभाव आये हुये थे।

उस दिन आ० शिवसागर महाराज ने पहले माताजी का ही उपदेश करा दिया। उस उपदेश से समाज तो प्रभावित हुआ ही। माँ मोहिनी और पिता छोटेलाल जी भी बहुत ही प्रसन्न हुये।

एक दिन आर्यिका चन्द्रमती जी ने इन्हे ज्ञानमती जी के सभी शिष्य-शिष्याओं के बारे में अच्छा परिचय कराया। वहाँ पर माँ ने यह भी देखा आर्यिका जिनमती जी भी ज्ञानमती से बहुत ही प्रभावित हैं।

आ० शिवसागरजी की उदारता

एक दिन क्षु० अभयमती की किसी माताजी के साथ कुछ कहा-सुनी हो गई। बात उसी क्षण महाराज जी के पास आ गई। आ० महाराज ने दोनो साध्वियो को ७-७ दिन के लिये रसो का परित्याग करा दिया। इस घटना के दो दिन बाद माँ मोहिनी सहसा आचार्य महाराज के पास आकर बैठ गईं और काफी देर तक बैठी ही रही किन्तु कुछ भी बोली नही।

दूसरे दिन आचार्य महाराज ने आहार को निकलते समय क्षु० अभयमती को अपने साथ आने का संकेत कर दिया। वह आचार्यश्री के पीछे-पीछे चली गई। महाराजजी सीधे माँ मोहिनी के सामने जाकर खड़े हो गये। अभयमती वहीं खड़ी हो गई। माँ-पिता ने बड़ी भक्ति से आचार्यश्री की प्रदक्षिणा देकर

उन्हे चौके में ले आकर नवधाभक्ति की । क्षु० अभयमती को भी पडगाहन कर चौके मे बिठाया । आचार्यश्री की थाली परोस जाने के बाद उन्होने दूसरी थाली परोसने को भी सकेत किया । माँ को उनके रस परित्याग की बात मालूम थी अत वे नीरस परोसने लगी । तभी महाराज ने सकेत कर उस थाली मे दूध, घी आदि रस रखा दिया । पुन महाराज जी का आहार शुरू हो गया । बाद मे महाराज ने अभयमती को भी दूध, घी, नमक लेने का सकेत दिया । गुरुदेव की आज्ञानुसार अभयमती जी ने रस ले लिये । माता-पिता आचार्यदेव की इस उदारता को देखकर बहुत ही आश्चर्यान्वित हुए । मध्याह्न में आकर माँ मोहिनी ने सारी बातें आर्यिका ज्ञानमती माताजी को सुना दीं और बोली—

"देखो, आचार्यश्री ने गलती पर अनुशासन भी किया और मैं कल मध्याह्न मे देर तक उनके पास बैठी रही थी । शायद इससे मेरे हृदय मे इसके त्याग का दुख जानकर ही आज स्वय मेरे चौके मे आप भी आये और अभयमती को भी लाकर उन्हें रस दिला दिया । सच मे गुरु का हृदय कितना करुणार्द्र होता है ।"

रवीन्द्र कुमार को व्रत

माताजी ने वही एक दिन रवीन्द्र कुमार को समझाया था कि—

"तुम अब एक वर्ष सघ मे रहकर धार्मिक अध्ययन कर लो ।"

रवीन्द्र जी ने कहा—

"मैं अभी बी ए तक पढूंगा।"

तब माताजी ने रवीन्द्र को कुछ उपदेश देकर समझाकर दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया और यह भी नियम दे दिया कि—

"जब तुम नया व्यापार शुरू करो या विवाह करो उसके पूर्व सघ में आकर मेरे से आशीर्वाद लेकर जाना।"

मामाजी ने यह बात माँ को बता दी।

कामिनी के लिये माताजी का प्रयास

माँ मोहिनी की कामिनी पुत्री लगभग १३ वर्ष की थी। यह समय-समय पर माताजी के पास आकर बैठ जाती और कुछ न कुछ धर्म का अध्ययन करती रहती। माताजी ने देखा, इसकी बुद्धि बहुत ही कुशाग्र है। यह लडकी गणित मे भी कुशल है। तभी माताजी ने उसे सघ मे कुछ दिन रहकर धर्म अध्ययन करने की प्रेरणा दी, वह भी तैयार हो गई। अब क्या ? माताजी ने जैसे-तैसे समझा-बुझाकर माँ को राजी कर लिया कि वो कामिनी को ४–६ महीने के लिये यहाँ छोड जावें। चूंकि सघ में साडी पहनना पडेगा। अत कामिनी ने माँ से आग्रह कर पेटीकोट ब्लाऊज भी बनवा लिया और माँ से एक साडी भी ले ली।

पिताजी प्राय प्रतिदिन आकर १०–१५ मिनट आ० ज्ञानमती माताजी के पास बैठते थे। वे कभी-कभी घर और दुकानो की कुछ समस्यायें भी रख देते थे और समाधान अथवा परामर्श की प्रतीक्षा करते रहते थे। माताजी ऐसे प्रसगो पर बिल्कुल मौन रहती थी। तब वे अपने कमरे मे आकर मोहिनी जी से कहते—

"देखो, मैंने अमुक-अमुक विषयों पर माताजी से परामर्श चाहा किन्तु वे कुछ भी नहीं बोलती हैं।" माँ कहतीं—

"वे घर सम्बन्धी चर्चाओं मे परामर्श नही देंगी। चूँकि उनके अनुमतित्याग है।'

पिताजी चुप हो जाया करते थे। एक दिन पूज्य ज्ञानमती जी ने पिता से कहा—

"इस कामिनी की बुद्धि बहुत अच्छी है, तुम इसे मेरे पास २-४ महीने के लिये छोड जावो। कुछ थोडा धार्मिक अध्ययन कराकर भेज दूंगी।"

इतना सुनकर पिताजी खूब हँसे और बोले—

"आपने मनोवती को माताजी बना दिया। उसे कितने कष्ट सहन करने पडते हैं सो मैं देख रहा हू। अब तुम्हारे पास किसी को भी नहीं छोडूँगा।"

माताजी का भी कुछ ऐसा स्वभाव हो था कि उनके पास जब भी पिता आकर बैठते। वे कामिनी के बारे में ही उन्हें समझाने लगतीं और अति आग्रह करतीं कि—

"इसे छोडकर ही जाओ·· ।"

पिताजी कभी हँसते रहते, कभी चिढ़ जाते और कभी उठ कर चले जाते। अपने स्थान पर जाकर माँ से कहते—

"देखो ना माताजी कितनी स्वार्थी हैं। मैं चाहे जितनी बातें ही पूछता रहता हू एक का भी जवाब नही देती हैं। किन्तु अब कामिनी बिटिया को रखने के लिये मैं जैसे ही उनके पास पहुचता हू वे मुझे समझाना शुरु कर देती हैं। · "

इतना कहकर वे खूब हसते और कामिनी से कहते—

"कामिनी बिटिया ! तुम माताजी की बातो मे नही आना हाँ, देखो ना, तुम्हारी बहन मनोवती को इन्होने कैसी आर्यिका बना दिया है।"

तब कामिनी भी खूब हँसती और कहती—

"मैं तो यदि रहूगी तो दीक्षा यहॉ ही ले लूँगी । मैं तो मात्र कुछ दिन पढ़कर घर आ जाऊँगी।"

एक दिन माताजी ने कु० कमा और मनोरमा का परिचय कराकर पिता से कहा—

'बाँसवाड़ा के सेठ पन्नालाल की ये दो कन्यायें हैं। एक बार वहाँ उपदेश मे मैंने कहा कि यदि प्रत्येक एक-एक गाँव से एक-एक कन्या भी हमे देने लग जावें और वे मेरे पास पढ़कर गृहस्थाश्रम मे भी रहे तो आज गाव गाव मे सती मनोरमा और मैना सुन्दरी के आदर्श दिख सकते हैं। इसी बात पर पन्नालाल ने अपनी दो कन्याये हमारे पास छोडी हैं। ऐसे ही आप भी इस कन्या को हमारे पास मात्र पढ़ने के लिये छोड दो वापस घर ले जाना । ।" किन्तु पिताजी हँसते ही रहे। उन पर इन शिक्षाओ का कुछ भी असर नही हुआ।

जब टिकैतनगर जाने के लिये इन लोगो ने तारीख निश्चित कर ली, सब सामान बध गया । तब कामिनी ने एक छोटी सी पेटी मे अपना सब सामान रख लिया और इधर-उधर हो गई। पिताजी ने हल्ला-गुल्ला मचाकर उसे ढूँढ लिया और गोद मे उठा कर जाकर तागे मे बैठ गये। जब सब वहाँ से रवाना होकर स्टेशन पर आ गये तब उनके जी मे जी आया।

पुन रास्ते में मोहिनीजी से बोले—

"अब तुम्हे कभी भी सघ में नहीं लाऊंगा और न कभी बच्चों को ही।"

माता मोहिनी जी, रवीन्द्र कुमार आदि माताजी के वियोग से हुए दुःख को हृदय मे समेटे हुए तथा सघ मे साधुओं की चर्या और गुणों की चर्चा करते हुये अपने घर आ गये।

[१६]

महावीर जी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

सन् १६६६ मे फाल्गुन मास में कैलाश जी ने दुकान से घर आकर सघ से आया हुआ एक पत्र सुनाया। जिसे मैंने (मोतीचद ने) लिखा था उसमे यह समाचार था कि—

"सघ यहां महावीर जी क्षेत्र पर विराजमान है, फाल्गुन सुदी में शातिवीरनगर मे भगवान् शान्तिनाथ की विशालकाय प्रतिमा का पचकल्याणक महोत्सव होने जा रहा है। इस अवसर पर अनेक दीक्षाओ के मध्य क्षु० अभयमती जी की आर्यिका दीक्षा अवश्य होगी। अत आप माँ और पिताजी को अन्तिम बार उनकी इस दीक्षा के माता-पिता बनने का लाभ न चुकावें। अवश्य आ जावे।"

उस समय यद्यपि पिताजी को पीलिया के रोग से काफी कमजोरी चल रही थी वे प्रवास में जाने के लिये समर्थ नही थे। फिर भी माँ ने आग्रह किया कि—

"यह अन्तिम पुण्य अवसर नहीं चुकाना है। भगवान् महावीर स्वामी की कृपा से आपको स्वास्थ्य लाभ होगा। हिम्मत करो, भगवान्, तीर्थ और गुरुओं की शरण में जो होगा सो ठीक ही होगा .....।"

कैलाशचन्दजी ने भी साहस किया। रुग्णावस्था में भी पिता को साथ लेकर माँ की मनोकामना पूर्ण करने के लिये महावीर जी आ गये। वहाँ आकर देखते हैं—बड़ा ही गमगीन वातावरण है। अकस्मात् फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को मध्याह्न में आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज की समाधि हो गई है। सभी साधु साध्वियों के चेहरे उदास दिख रहे हैं। और यहाँ अब आचार्य पट्ट मुनि श्री धर्मसागर जी महाराज को दिया जाय या मुनि श्री श्रुतसागर जी महाराज को ?

साधुओं की सभा मे यह जटिल समस्या चल रही है। खैर! उन्हें इन बातो मे क्या लेना-देना था। वे वहाँ कटला मे ही धर्मशाला मे ठहर गये।

माँ ने सभी साधुओ के दर्शन किये किन्तु पिताजी कही नहीं जा सके वे अपने कमरे से ही दरवाजे के पलग पर बैठे-बैठे दूर से साधुओ का दर्शन कर लेते थे। वे पीलिया रोग से उस समय काफी परेशान थे। कई बार उन्होने पूज्य ज्ञानमती माताजी के दर्शन के लिये कैलाशजी से भावना व्यक्त की। कैलाश ने माताजी से प्रार्थना भी की किन्तु माताजी कुछ धार्मिक आयोजनो से व्यस्त भी रहा करती थी। वे नही आती थी।

माँ मोहिनी की मनोभावना पूर्ण हुई

इधर फाल्गुन शुक्ला अष्टमी का भगवान के तप कल्याणक दिवस मुनिश्री धर्मसागर जी को चतुर्विध सघ के समक्ष आचार्य पद प्रदान किया गया और नवीन आचार्य के करकमलो से उसी दिन ग्यारह दीक्षायें हुई। कैलाशचन्द जी इतनी भीड में भी पिता को सभा मे ले आये। उन्होने दीक्षायें देखी और क्षु०

अभयमती की आर्यिका दीक्षा में माता-पिता के पद को स्वीकार कर उनके हाथ से पीताक्षत, सुपारी, नारियल आदि भेंट में प्राप्त किये। इस लाभ से वे बहुत ही प्रसन्न हुये। इस दीक्षा के अवसर पर आ० ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सनावद के यशवन्त कुमार ने सीधे मुनि दीक्षा ली थी। ब्र० अशरफी बाई और ब्र० विद्याबाई ने भी आर्यिका दीक्षा ली थी। क्षु० अभय मती का नाम अभयमती ही रहा। यशवतकुमार का नाम मुनि वर्धमानसागर रक्खा गया, ब्र० अशरफीबाई का नाम आ० गुणमती प्रसिद्ध हुआ और विद्याबाई का नाम आ० विद्यामती रखा गया। इन दीक्षाओ को सम्पन्न कराने मे आ० ज्ञानमती माताजी ने बड़े ही उत्साह से भाग लिया था।

मैंने (मोतीचन्द जी ने) भी अपने चचेरे भाई यशवन्त को दीक्षा दिलाने मे बहुत ही प्रेम और उत्साह से कार्य किया था। इसके बाद प्रतिष्ठा के दो कल्याणक भी सानन्द सम्पन्न हुये। प्रतिष्ठा के बाद भीड कम हो गई। तब माँ मोहिनी ने वहाँ कुछ दिन और रहकर धर्मलाभ लेने का निर्णय किया।

मालती के ऊपर माताजी द्वारा सस्कार

प्रतिदिन शाम का प्रतिक्रमण के बाद माताजी अपने स्थान पर बैठती थीं। सघ की बालिकायें कु० सुशीला, कु० शीला, कु० कला, कु० विमला आदि माताजी को घेर लेती थीं। वे दिन भर जो कुछ पढती थी, माताजी उसी से सबधित प्रश्न पूछना शुरू कर देती थी। लडकियाँ उत्तर भी देती थी। कु० सुशीला हास्य-विनोद भी करती रहती थी। वहाँ पर मालती भी आकर बैठ जाती और चुपचाप सब देखती सुनती रहती। एक दिन माताजी ने पूछा—

"मालती ! तुम्हें ऐसा जीवन प्रिय है क्या ?"

मालती पहले चुप रही फिर भी बोली—

"मुझे यहां छोड़ेंगे ही नहीं ।"

माताजी ने पूछा—"तुमने अपने भविष्य के लिये क्या सोचा है ?"

मालती ने कहा—

"कुछ भी नहीं।"

माताजी ने कहा—

"अच्छा, आज रात्रि में सोच लो, कल हमें बताना !"

दूसरे दिन मालती ने कहा—

"माताजी ! मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दे दो ।"

एक दो दिन माताजी ने उसकी दृढ़ता देखी अनन्तर व्रत देने का आश्वासन दे दिया । यह बात किसी को विदित नहीं हुई ।

पिता को ज्ञानमतीजी के अन्तिम दर्शन

पिताजी पीलिया से परेशान थे । बार-बार कैलाशजी से माताजी को बुलाने के लिये कहते और कैलाशजी आकर माताजी से प्रार्थना किया करते किन्तु पता नहीं क्यो ? माताजी टाल दिया करती थीं । एक दिन माताजी कैलाशजी के साथ उनके कमरे में गईं । पिताजी देखते ही रो पड़े और बोले—

"माताजी ! अब हमें इस जीवन मे आपके दर्शन नहीं होंगे ।"

माताजी वहां दो मिनट के लिये खड़ी हुईं, आशीर्वाद दिया और बोलीं—

"घबराते क्यो हो ? · "

बाद में माताजी जल्दी ही वापस चली आईं । पता नहीं उन्हें वहाँ बैठकर पिता को कुछ शब्दों में शिक्षा देने में, क्यों संकोच रहा ....।

पिताजी चाहते थे कि आ० ज्ञानमतीजी मेरे पास कुछ देर बैठकर कुछ कहें, बोलें, सुनावें ....किन्तु उनकी इच्छा पूरी नहीं हो पाई... । दो चार दिनों में ही घर वापस जाने का प्रोग्राम बन गया ।

मालती को व्रत

इन लोगों का सामान बस में चढ़ाया जा रहा था । इसी मध्य माताजी ने मालती को ऊपर ले जाकर एक वृद्ध मुनिराज से दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत दिला दिया । और नीचे आकर बस में बैठने जा रही माँ मोहिनी से बता दिया । वे घबराईं और बोलीं—

"आपने यह क्या किया ? घर में मेरे ऊपर क्या बीतेगी ? ऐसे ही तुम्हारे पिता अस्वस्थ हैं वे सुनते ही और भी परेशान होंगे ?"

अस्तु ज्यादा बोलने का समय ही नहीं था । ये लोग सकुशल अपने घर आ गये ।

पिताजी को सदमा

मालती ने घर में बताया—

"मैंने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया ।" तब पिताजी को बहुत धक्का लगा । उन्होंने बहुत कुछ समझाया बुझाया । और विवाह के लिये सोचने लगे । तभी दैवयोग से वहाँ टिकैतनगर में आ० श्री सुबलसागरजी महाराज के संघ का चातुर्मास हो

गया। महाराजजी ने भी मालती के ब्रह्मचर्य व्रत को सराहा, प्रोत्साहन दिया, तब मालती ने महाराज की आज्ञानुसार एक दिन सभा मे श्रीफल लेकर महाराजजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। इससे टिकैतनगर मे आचार्यश्री ने और श्रावको ने भी मालती की तथा इस परिवार की मुक्तकठ से प्रशसा की। किन्तु पिता के मन पर मालती के व्रत का इतना सदमा हुआ कि वे पुन बिस्तर से नही उठ सके।

प्रकाशचन्द को माताजी का दर्शन

इसी सन् १९६९ मे आ० धर्मसागरजी के सघ का चातुर्मास जयपुर मे हो रहा था। प्रकाशचन्द अपनी पत्नी ज्ञानादेवी को, बच्चो को बहन माधुरी और भतीजी मजू को साथ लेकर सघ के दर्शनार्थ आ गये। सन् ६३ मे माताजी को सम्मेदशिखर पहुचाने के बाद प्रकाशचन्द छह वर्ष बाद सघ के दर्शनार्थ आये थे। यहाँ वे लोग कुछ दिन ठहरे थे।

यहाँ पर मैंने माताजी द्वारा रचित "उषावदना" पुस्तिका दस हजार प्रति छपाने का निर्णय किया और प्रकाशचन्द के परिवार से ही व्यवस्था करा ली। तथा एक ज्योतिर्लोक भी छपा रहे थे जिसको पिताजी के नाम से कर दिया। प्रकाशजी ने कहा—मैं घर जाकर रुपये भेज दू गा।

माधुरी का संस्कार

यहाँ पर माताजी के पास कु० सुशीला, शीला, कला आदि गोम्मटसार जीवकाण्ड पढ रही थी और कातन्त्र व्याकरण भी पढ़ती थीं। माताजी ने कु० माधुरी की बुद्धि कुशाग्र देखकर उसे वही गोम्मटसार और व्याकरण पढ़ाना शुरू कर दिया साथ ही यह भी समझाना शुरू कर दिया कि—

"तुम कुछ दिन यहाँ रहकर कुमारी कला के साथ धार्मिक अध्ययन कर लो फिर घर चली जाना।"

एक बार माधुरी, मजू के मन में भी यह बात जँच गई। पुन: वे प्रकाशचन्द के जाते समय सघ मे नहीं रह सकीं और साथ ही घर चली गईं। घर पहुचते ही पिता ने माधुरी को छाती से चिपका लिया और बोले—

"बिटिया ! तुम माताजी के पास नही रहीं अच्छा किया · ·· · ।"

प्रकाशचन्द ने सघ की बातें माता-पिता को सुनायीं कि—

"वहाँ सघ मे माताजी मध्याह्न १ बजे से ४ बजे तक मुनि श्री दयासागरजी, श्री अभिनदनसागरजी, श्री सबमसागरजी, श्री बोधिसागरजी, श्री निर्मलसागरजी, श्री महेन्द्रसागरजी, श्री सभवसागरजी और श्री वर्धमानसागरजी को गोम्मटसार जीव-काड, कल्याण मन्दिर आदि ग्रन्थो का स्वाध्याय कराती हैं। इसमे आर्यिकायें भी बैठती हैं, तथा मोतीचन्दजी भी बैठते हैं। पुन आहार के बाद अपने स्थान पर कुछ आर्यिकाओ को प्राकृत व्याकरण पढाती हैं। प्रतिदिन प्रात. ७ बजे से ६–३० बजे तक मुनिश्री अभिनन्दनसागरजी, श्री वर्धमानसागरजी आदि को तथा आ० आदिमतीजी और अभयमतीजी को और मोतीचन्द को तत्त्वार्थ राजवार्तिक और अष्टसहस्री पढ़ाती हैं। इनकी सारी दिनचर्या बहुत ही व्यस्त रहती है।" सुनकर सब लोग बहुत ही प्रसन्न हुए।

जब माधुरी ने माताजी के पास पढी हुई गोम्मटसार की ३४ गाथायें आ० सुबलसागरजी को कठाग्र सुनाईं तो वे हर्ष विभोर हो गये और बोले—

"इन माता मोहिनी की कूंख से जन्म लिये सभी सन्तानों को बुद्धि का क्षयोपशम विरासत में ही मिला है। प्रत्येक पुत्र-पुत्रियों की बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण है · · ···।" इस प्रकार आ० सुबलसागरजी महाराज माधुरी से प्रतिदिन गोम्मटसार की वे ३४ गाथायें कठाग्र सुना करते थे और गद्गद् हो जाया करते थे।

पिता की समाधि

इसी १६६६ की २५ दिसम्बर को पिताजी ने आ० ज्ञानमती माताजी के दर्शनों की भावना को लिये हुए तथा महामत्र का श्रवण करते हुए इस नश्वर शरीर को छोड़कर समाधिमरण पूर्वक अपना परलोक सुधार लिया और स्वर्ग सिधार गये। इनकी समाधि के कुछ ही दिन पूर्व आ० सुमतिसागरजी महाराज ससघ टिकैतनगर आये थे। उन्होंने घर आकर पिता को सम्बोधित किया। पिता ने बड़े प्रेम से सघ के दर्शन किये और माँ ने घर में सभी ने उनके आहार का लाभ लिया था।

पिताजी के स्वर्गवास के बाद सघ से मैं माताजी की आज्ञा लेकर आया। समय पाकर मैंने माँ से कहा—

"माताजी ने ऐसा कहा है कि अब आप सघ मे चलें और अपनी आत्मा का कल्याण करें। अब घर मे रहकर क्या करना·· ·· ·· ।"

माँ ने यह बात कैलाशचन्द आदि पुत्रो के सामने रखी। तब सभी पुत्र रो पडे और बोले—

"अभी-अभी पिता का साया सिर से उठा ही है भला हम लोग अभी ही आपके बगैर कैसे रह सकेंगे··· ··?"

माँ ने भी सोचा—अभी चारो तरफ से मेहमानो का आना चालू है अत तत्काल ही आना नहीं बन सकेगा। तब उन्होंने कु० मालती के आग्रह को देखकर उसे सघ मे भेजने का निर्णय किया और अपनी जिठानी को भी साथ करके मेरे साथ इन दोनो को भेज दिया। मैं वहाँ से रवाना होकर आचार्य सघ में आ गया। इस समय सघ निवाई के पास एक छोटे से गांव में ठहरा हुआ था। मालती ने माताजी का सान्निध्य पाकर अपार हर्ष का अनुभव किया।

आचार्यकल्प सन्मतिसागरजी के दर्शन

पिताजी के स्वर्गवास को १४–१५ दिन ही हुए थे कि टिकैतनगर मे आ० कल्प श्री सन्मतिसागरजी महाराज अपने सघ सहित आ गये। माँ मोहिनीजी ने बहुत ही धैर्य रखा था और अपने पुत्र, पुत्रवधू तथा पुत्रियों को भी समझाती रहती थीं, घर मे रोने-धोने का वातावरण नहीं था। अतः माँ ने चौका किया और महाराजजी को आहार दिया। जब सघ वहाँ से विहार करने लगा तब मोहिनीजी चौका लेकर उनके सघ की व्यवस्था बनाकर अपनी बडी बहन को साथ लेकर कानपुर तक उन्हें पहुचाने गईं। इन आ० क० सन्मतिसागरजी महाराज ने एक बार सभा मे माँ मोहिनीजी की प्रशसा करते हुये कहा कि—

"किसकी माँ ने ऐसी अजवाइन खाई है जो कि आ० ज्ञानमती माताजी जैसी कन्या को जन्म दे सके···।"

एक बार महाराजजी ने मोहिनीजी से यह भी बताया कि—

"मैं जब क्षुल्लक था एक बार संघ से अलग बगरू (जयपुर

के पास) चला गया था। जब माताजी वहाँ आई वे मुझे सम्बोधित कर आचार्यश्री वीरसागरजी के पास वापस अपने साथ ले आईं। तब आचार्यश्री उनसे बहुत ही प्रसन्न हुए थे। मैंने माताजी के पास प्रतिक्रमण का अर्थ देववदना विधि, आलाप पद्धति आदि ग्रन्थ भी पढे हैं।" इत्यादि।

[१७]

सन् १९७० मे आचार्य सघ का चातुर्मास टोंक (राजस्थान) में हुआ था।। उस समय माँ, कैलाशजी, सुभाषजी, दोनो पुत्रवधू (चन्द्रा, सुषमा) तथा छोटी पुत्री त्रिशला को लेकर सघ मे दर्शनार्थ आईं। यहाँ लगभग एक महीना रहने का प्रोग्राम था। प्रतिदिन चौके मे दो चार साधुओ का आहार हो जाता था। यहाँ पर भी माताजी प्रतिदिन प्रात २—३ घण्टे और मध्याह्न मे ३ घण्टे तक बराबर मुनि आर्यिकाओ और ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियो को अध्ययन कराती रहती थीं। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन रात्रि में १०-११ बजे तक अष्टसहस्री ग्रन्थ का अनुवाद लिखा करती थीं। माँ मोहिनीजी माताजी के प्रात ४ बजे से लेकर रात्रि के ११ बजे तक के परिश्रम को देख कर दग रह जाती थी। और स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिये उन्हें मना भी किया करती थीं। लेकिन माताजी हँसकर टाल देती थी।

इसी मध्य सोलापुर से प० वर्धमान शास्त्री आये हुए थे। वे पडगाहन के लिये माँ के चौके मे ही खडे होते थे। उन्हे भी माँ मोहिनी के प्रति बहुत ही आदर भाव था। वे समय-समय पर सोलापुर मे माताजी के चातुर्मास के समय के सस्मरण सुना-सुनाकर माताजी की प्रशसा किया करते थे और माँ से कहा करते—

"माताजी ! आपने ज्ञानमती माताजी जैसी कन्यारत्न को जन्म देकर जैन समाज को बहुत बडी निधि प्रदान की है। आपने अपने जीवन को तो धन्य कर ही लिया है। अपने सारे पुत्र-पुत्रियो को भी धन्य बना दिया है। हमें बताओ तो सही भला आपने अपने पुत्र पुत्रियो को क्या घूंटी पिलाई थी ?...... इस परिवार के सदस्यो ने पूर्व जन्म मे एक साथ कोई महान् पुण्य किया होगा जो कि एक जगह एकत्रित हुए हैं और सभी धर्म मार्ग मे लगे हुए हैं।"

सन् ६९ मे मालती के आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेने के बाद भाई सुभाष ने भी विरक्त मन से एक वर्ष के लिये ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था।

वे अब यहाँ आचार्यश्री के पास कुछ और अधिक दिनो के लिये ब्रह्मचर्य व्रत लेना चाहते थे। माताजी ने सुभाष और सुषमा से कहा—

"दोनो ही जोडे से दीक्षा ले लो।"

तभी सुषमा घबरा गई। उसकी उम्र मात्र २० वर्ष की होगी। उसकी गोद मे एक कन्या सुगन्धबाला ही मात्र एक वर्ष की थी। सुषमा को पुत्र की इच्छा थी...। अतः सुभाषजी आगे नहीं बढ सके।

एक मास उपवास के बाद पारणा का लाभ

यहाँ माताजी से पास मे रहने वाली आ० पद्मावती माताजी ने भाद्रपद मे एक मास का उपवास किया था। मध्य में केवल तीन बार जल लिया था। ये माताजी आ० ज्ञानमती द्वारा पढ़ाते समय दिन के ४–५ घन्टे तक बराबर उन्ही पास बैठी रहतीं।

कोई भी उन्हें किन्चित् विश्राम के लिये कहता तो वे कहती—

"मुझे अम्मा की अमृतमयी वाणी से जो तृप्ति होती है जो आराम मिलता है वह लेटने से नहीं मिलेगा।"

जब ३१ उपवास के बाद बत्तीसवें दिन ये आहार को निकली तब माँ मोहिनीजी के पुण्योदय से इनका पड़गाहन उन्हीं के यहाँ हो गया। एक मास उपवास के बाद उनकी पारणा करा कर इन लोगो को बड़ा ही आनन्द आया। इस अवसर पर पद्मावती माताजी की पुत्री बाल-ब्रह्मचारिणी कु० स्नेहलता भी आई हुई थी।

सप्तम प्रतिमा के व्रत

एक दिन मोहिनीजी ने आचार्यश्री के समक्ष श्रीफल लेकर सप्तम प्रतिमा के व्रत हेतु याचना की। आचार्यश्री ने बड़े प्रेम से उन्हें सप्तम प्रतिमा के व्रत दे दिये। वैसे माँ मोहिनी ने पिता के स्वर्गवास के बाद ही अपने केश काट दिये थे और तब से सफेद साड़ी ही पहनती थी। अब तो ये ब्रह्मचारिणी हो गई। यद्यपि माताजी ने मोहिनी से आग्रह किया था कि—

"अब आप घर का मोह छोड़कर संघ में हो रहो।"

किन्तु उन्होने कहा—"अभी मैं घर जाकर कामिनी की शादी करूँगी। अगली बार आकर रहने का प्रोग्राम बना सकती हूँ।"

त्रिशला का अध्ययन

माँ मोहिनी की सबसे छोटी पुत्री का नाम त्रिशला है। यह उस समय लगभग १०–११ वर्ष की थी। माताजी ने इसे और भाई कैलाशचन्द के पुत्र जम्बूकुमार को द्रव्य-संग्रह की कुछ

गाथाओं पढ़ा दीं । दोनों ने याद करके सुना दी । माताजी खुश हुईं और माँ से कहा—

"आप कु० त्रिशला को कुछ दिनों के लिये यहीं संघ में छोड़ दो । यह कुछ धार्मिक अध्ययन कर लेगी । देखो, पुराने जमाने में मैना सुन्दरी आदि ने आर्यिकाओं के पास ही अध्ययन किया था तो वे आज भी समाज में आदर्श महिलायें मानी जाती हैं ।"

इत्यादि शिक्षा से मोहिनीजी तो प्रभावित थी ही । कु० मालती ने भी अपना मन बहलाने के लिये छोटी बहन को बहुत कुछ समझाया । माताजी के शब्दों में गजब का ही आकर्षण था । त्रिशला भी कुछ दिनों यहाँ रहकर धर्म पढ़ने के लिये रुक गई । अन्ततोगत्वा भाई कैलाशचन्द जी को लाचार होना पड़ा । अब त्रिशला भी अपने पुरुषार्थ में सफल हो गई । ये लोग एक माह के बाद घर चले गये ।

त्रिशला ने माताजी से आग्रह किया—

"मैं आपसे ही पढ़ूँगी ।"

माताजी ने कहा—

'मैं तो मुनियों को, मालती को कर्मकाण्ड पढ़ा रही हूं । मुझे कर्मकाण्ड ही पढ़ना पड़ेगा ।"

उसे मन्जूर था । माताजी ने उसे कुछ गाथायें पढ़ा दी उसने अर्थ सहित याद करके सुना दी । माताजी को आश्चर्य हुआ फिर उन्होंने उसे कर्मकाण्ड, अष्टसहस्री के सारांश आदि ऊँचे विषय ही पढ़ाये । और उसका शोलापुर "शास्त्री प्रथम खण्ड" का फार्म भरा दिया । अब संघ लश्वा, मालपुरा आदि में विहार कर रहा था । प्रतिक्रमण के बाद शाम को सभी मुनि, आर्यिकायें,

ब्रह्मचारीगण आदि आचार्यश्री धर्मसागर जी के पास एकत्रित हो जाते थे। आचार्यश्री त्रिशला से कर्म प्रकृतियो के बध उदय, बध व्युच्छित्ति आदि के प्रश्न कर लेते थे। वह गाथा बोलकर अर्थ करके अच्छा उत्तर दे देती थी। उस समय आचार्य महाराज भी खूब कौतुक करते थे और सभी साधु तथा उपस्थित श्रावको को भी बडा आनन्द आता था।

उन दिनो माताजी के पास कर्मकाण्ड, सर्वार्थसिद्धि, अष्ट-सहस्री, ग्रन्थ आदि का अध्ययन मुनियो मे श्री अभिनन्दनसागर जी, सम्भवसागरजी, वर्धमानसागरजी आदि कर रहे थे। तथा सघस्थ कु० विमला, कु० सुशीला, शीला, कला, मालती आदि भी ये ही विषय पढ रही थी। और मैं भी उन दिनो राजवार्तिक, अष्टसहस्री आदि ग्रन्थो का अध्ययन कर रहा था।

त्रिशला का घर आना

सघ टोक से विहार कर टोडाराय सिंह गाँव मे पहुच गया। घर से प्रकाशचन्दजी वहा आये और बोले—

"कामिनी का विवाह होने वाला है। अत माँ ने कहा है कि त्रिशला और मालती को लिवा लाओ।"

यद्यपि माताजी भेजना नही चाहती थी फिर भी "मैं वापस त्रिशला को निश्चित भेज जाऊँगा" ऐसा वचन देकर प्रकाशजी दोनो बहनो को साथ लेकर घर के लिये रवाना हो गये।

आचार्य श्री का जयन्ती समारोह

यहाँ टोडराय सिंह मे आ० श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से श्रावको ने पौषशुक्ला पूर्णिमा को आचार्यश्री का जयन्ती समारोह मनाना निश्चित किया। रथयात्रा का प्रोग्राम

कराया गया। उसी दिन (पूर्णिमा को) पूज्य माताजी ने अष्ट-सहस्री ग्रन्थराज का अनुवाद पूर्ण किया था। सनावद से रत्न-चन्द जी पाड्या धर्मपत्नी कमलाबाई सहित आये हुवे थे। उन्होंने बड़े ही भक्ति भाव से माताजी द्वारा अनुवादित कापियों को ऊँचे आसन पर विराजमान कर उनकी पूजा की और आचार्य श्री के जयन्ती समारोह की रथयात्रा के साथ मे ही एक पालकी मे अष्टसहस्री ग्रंथ और अनुवादित कापियो को विराज-मान कर उनका भव्य जुलूस निकाला गया था।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

सन् १९७१ मे टोंक मे माघ महीने मे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन होने से श्रावक गण पुन आचार्य संघ को वापस अपने गाँव ले आये। यहाँ प्रतिष्ठा के अवसर पर टिकैतनगर से भाई कैलाशचन्दजी और रवीन्द्र कुमारजी आये थे। साथ मे टिकैतनगर के प्रद्युम्नकुमार भी आये थे। यहाँ प्रतिष्ठा में माता जी की प्रेरणा से एक संगमरमर का ३ फुट ऊँचा सुमेरु पर्वत जिसमे १६ प्रतिमायें बनी हुई थी वह भी प्रतिष्ठित हुआ था। भाई कैलाशचन्दजी उसे टिकैतनगर ले जाने को बोले। तभी प्रद्युम्नजी ने उसका न्योछावर देकर अपने नाम से टिकैतनगर ले जाने का निश्चय कर लिया।

रवीन्द्र कुमार संघ में

माताजी ने रवीन्द्रकुमार को प्रेरणा दी कि—

"तुम २–३ माह संघ में रहकर मोतीचन्द के साथ शास्त्री कोर्स की तैयारी करके परीक्षा दे लो।" माताजी ने इन्हे सम-झाने मे कोई कसर नही रक्खी। अन्त मे उनका प्रयत्न सफल

हुवा और रविन्द्र कुमार ने संघ में ही रहकर कर्मकाण्ड, राज-वार्तिक, अष्टसहस्री आदि का अध्ययन मनन चालू कर दिया। फरवरी माह चल रहा था, बम्बई की परिक्षायें अप्रैल में होती हैं। मात्र दो ढाई माह में शास्त्री के तीनो खण्ड के कर्मकाण्ड, राजवार्तिक, अष्टसहस्री आदि का अध्ययन कर रवीन्द्र कुमार ने तीनों खण्डो की परीक्षायें एक साथ उत्तीर्ण कर लीं। जिन्हे मैंने तीन वर्ष में किया था। मुझे माताजी के परिवार के सदस्यो (भाई बहनो) की इतनी तीक्ष्ण बुद्धि पर आश्चर्य भी होता था और साथ ही महान् हर्ष भी।

इसके बाद मालपुरा मे रवीन्द्र कुमार की इच्छा से माताजी ने हम लोगो को समयसार ग्रन्थ का स्वाध्याय कराना प्रारम्भ कर दिया। जिसमे हम लोगों ने माताजी के मुख से निश्चय व्यवहार की परस्पर सापेक्षता को अच्छी तरह से समझा था। इस समय संघ मे रवीन्द्र कुमार, कु० मालती और कु० त्रिशला तीनो ही थे। इनका अध्ययन और इनके समक्ष तत्त्वचर्चायें खूब ही चला करती थीं।

[१८]

माँ मोहिनी का घर से अन्तिम प्रस्थान

सन् १९७१ मे संघ का चातुर्मास अजमेर शहर मे हो रहा था। माता मोहिनी अपने बड़े पुत्र कैलाशजी, उनकी पत्नी चन्दा को साथ लेकर संघ के दर्शनार्थ आईं। उस समय उनके साथ पुत्री कु० माधुरी और कैलाशचन्दजी की पुत्री मंजू भी आई थी। यहाँ पर संघ में आ० पद्मावती जी ने गतवर्ष के समान इस बार भी भाद्रपद में एक माह का उपवास किया था।

माताजी के अत्यधिक आग्रह करने पर भी इस बार पद्मावती जी ने २१ दिनों तक जल भी ग्रहण नहीं किया। २२वें दिन उन्होंने चर्या के लिये उठकर मात्र थोड़ा सा गर्म जल लिया। यह अन्तिम जल उन्हे देने का सौभाग्य माता मोहिनीजी को मिला था। इस दिन उन पद्मावतीजी के गृहस्थाश्रम के पतिदेव ने भी जल दिया था। इस प्रकार माँ मोहिनी अपने परिवार सहित प्रतिदिन कई एक साधुओं का पड़गाहन कर उन्हें आहार देती थी और अपना जीवन धन्य समझती थी।

माधुरी को ब्रह्मचर्य व्रत

इधर माताजी अपने स्वभाव से लाचार थीं। इसलिये ही उन्होंने माधुरी को समझाना शुरू कर दिया था। जब माधुरी समझ गई और दृढ़ हो गई तब माताजी ने उसे चुपचाप मंदिरजी में एकान्त में बुलाकर कहा—

"जाओ किसी को पता न चले, चुपचाप श्रीफल लेकर आ जाओ।"

माधुरी आ गई और माताजी ने उसे भगवान् के समक्ष ही आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया। माधुरी ने प्रसन्न हो झट से माताजी के चरण छुये और अपने स्थान पर चली गई। उस दिन भाद्रपद शुक्ला दशमी (सुगंधदशमी) थी।

समाधि देखना

आसोज वदी प्रतिपदा को सायंकाल में आ० पद्मावती जी की प्रकृति बिगड़ी। संघ के सभी साधुगण आ गये। आचार्य श्री भी आ गये। पद्मावतीजी ने बड़ी शांति से आचार्य श्री के, सभी साधुओं के दर्शन किये और सबसे क्षमा याचना की। उसी

समय देखते-देखते उन्होंने साधुओं के मुख से महामन्त्र सुनते हुए इस नश्वर देह को छोड़कर स्वर्गपद प्राप्त कर लिया। माता मोहिनी ने भी उनकी समाधि देखी और बोलीं—

"कि ये पद्मावती माताजी ज्ञानमती माताजी के साथ छाया के समान रहती थीं।"

माताजी ने भी इनकी समाधि बड़ी तन्मयता से कराई थी। उन्होंने ३२वें उपवास के दिन प्राण छोड़े थे।

इसके दूसरे ही दिन मासोपवासी आ० शांतिमतीजी की भी सल्लेखना हो गई। इन दोनों माताजी की सल्लेखना मोहिनीजी ने बड़ी तन्मयता से देखी। पश्चात् वे कैलाशजी के साथ केशरिया जी की यात्रा करने चली गईं। उधर मुनिश्री श्रुतसागरजी के संघ का दर्शन किया। मोहिनीजी पुन वापस अजमेर आ गईं। और कैलाशजी को समझाकर घर भेजते समय यही सान्त्वना दी कि—

"तुम एक महीने बाद आकर मुझे ले जाना, अभी मैं कुछ दिन आ० अभयमतीजी के पास रहना चाहती हूं।"

इस बार अभयमतीजी ने अजमेर क पास ही किशनगढ़ में आ० ज्ञानसागरजी के संघ सान्निध्य में चातुर्मास किया था। वे उनके पास अध्ययन कर रही थीं।

माँ मोहिनी किशनगढ़ जाकर अभयमतीजी के पास एक माह करीब रहीं। पुन वापस अजमेर आ गईं।

[१६]

आर्यिका रत्नमती

दीपावली के बाद एक दिन मोहिनीजी माताजी के पास आकर सहसा बोलीं—

"माताजी ! अब मेरी इच्छा घर जाने की नहीं है । कैलाश प्रकाश, सुभाष तीनो लडके योग्य हैं, कुशल व्यापारी हैं। माधुरी, त्रिशला अभी छोटी हैं । कुछ दिनो बाद इनकी शादी ये भाई कर देंगे । अब मेरा मन पूर्ण विरक्त हो चुका है । मैं दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना चाहती हू ।

माताजी तो कई बार प्रेरणा देती ही रहती थी अत वे इतना सुनते ही बहुत प्रसन्न हुई और बोली—

"आपने बहुत अच्छा सोचा है । जब लो न रोग जरा गहे तब जो झटिति निज हित करो ।" इस पक्ति के अनुसार अभी आपका शरीर भी साथ दे रहा है । अत अब आपको किसी की भी परवाह न कर आत्म साधना मे ही लग जाना चाहिये ।

• • अच्छा, एक बात मैं आज आपको और बता दूं । मैने सुगन्ध दशमी के दिन माधुरी को ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया है, अत उसकी तो शादी का सवाल ही नहीं उठता है ।"

इतना सुनते ही मोहिनी जी को आश्चर्य हुआ और बोली—

"अभी माधुरी की उम्र १३ वर्ष की होगी । ये ब्रह्मचर्य व्रत क्या समझे • • ! अभी से व्रत क्यो दे दिया, हाँ कुछ दिन सघ मे रखकर धर्म पढा देती ये ही अच्छा था • । खैर ! अब मैं किसी के मोक्षमार्ग मे बाधक क्यो बनूं ! जिसका जो भाग्य होगा सो होगा । मुझे तो अब आर्यिका दीक्षा लेनी है ।"

माताजी ने उसी समय रवीन्द्र कुमार को बुलाया और माँ के भाव बता दिये। रवीन्द्र का मन एकदम विक्षिप्त हो उठा। वे बोले—

"आपका शरीर अब दीक्षा के लायक नही है। आपको बहुत ही कमजोरी है। जरा सा बच्चे हल्ला मचा दे उतने मे तो आपके सिर में दर्द होने लगता है। दीक्षा लेकर एक बार खाना, पैदल चलना, केशलोच करना ... ... यह सब आपके वश की बात नही है।"

किन्तु मोहिनीजी ने कहा—

"मैंने सब सोचकर ही निर्णय किया है ... । अत अब तो मुझे दीक्षा लेनी ही है।"

माताजी ने रवीन्द्र की विक्षिप्तता देखी तो उसी समय उन्होने मुझे बुला लिया। रवीन्द्र कुछ कारणवश जरा इधर-उधर हुये कि माताजी ने मेरे से सारी स्थिति समझा दी। और बाजार से श्रीफल लाने को कहा। मैं तो खुशी से उछल पडा और जल्दी से जाकर श्रीफल लाकर माँ मोहिनी के हाथ मे दे दिया। मोहिनीजी उसी समय माताजी के साथ सेठ साहब की नशिया मे पहुची और आचार्यश्री के समक्ष श्रीफल हाथ मे लिए हुये बोली—

"महाराज जी ! मैं आपके कर कमलो से आर्यिका दीक्षा लेना चाहती हू।'

ऐसा कहकर आचार्यश्री के समक्ष श्रीफल चढा दिया। महाराज प्रसन्न मुद्रा मे आ० ज्ञानमती माताजी की ओर देखने लगे। सभी पास मे उपस्थित सघ के साधु वर्ग प्रसन्न हो मोहिनी

जी की सराहना करने लगे और कहने लगे—

"आपने बहुत अच्छा सोचा है। गृहस्थाश्रम में रहकर सब कुछ कर्त्तव्य आपने कर लिया है अब आपके लिये यही मार्ग उत्तम है।"

आचार्य महाराज बोले—

"बाई! तुम्हारा शरीर बहुत कमजोर है। सोच लो……
… …यह जैनी दीक्षा खांडे की धार है।'

मोहिनीजी ने कहा—

"महाराज जी! संसार में जितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं उनके आगे दीक्षा मे क्या कष्ट है। अब तो मैंने निश्चित ही कर लिया है।"

माताजी ने वहाँ से अतिविश्वस्त एक श्रावक जीवनलाल को टिकैतनगर भेज दिया कि जाकर घर वालों को समाचार पहुंचा दो। घर से तीनो पुत्र, पुत्र वधुएँ, ब्याही हुई चारो पुत्रियाँ, चारो जमाई और माधुरी, त्रिशला और मोहिनीजी के भाई भगवानदासजी ये सभी लोग अजमेर आ गये।

सभी लोग मोहिनीजी को चिपट गये और रोने लग गये। सभी ने इनकी दीक्षा रोकने के लिये बहुत ही प्रयत्न किये। आचार्यश्री से मना किया और मोह में आकर उपद्रव भी करने लगे। आश्चर्य इस बात का हुआ। रवीन्द्रजी भी भी उसी मे शामिल हो गये चूंकि अभी उन्होने ब्रह्मचर्य व्रत नही लिया था न सदा संघ में रहने का ही उनका निर्णय हुआ था। इन सब प्रसंगों मे मोहिनीजी पूर्ण निर्मोहिनी बन गईं और अपने निर्णय से टस से मस न हुईं। अन्ततोगत्वा उनकी दीक्षा का कार्यक्रम बहुत ही

उल्लासपूर्ण वातावरण मे चला। साथ मे कु० विमला, तथा ब्र० फूलाबाई की भी दीक्षा हुई थी। मगसिर वदी तीज का (दि० ५-११-१९७१ का) यह उत्तम अवसर अजमेर समाज मे ऐतिहासिक अवसर था।

दीक्षा के पूर्व माता मोहिनी ने व्रतिको को प्रीति भोजन कराया। उसमे कुछ खास लोगो को भी आमन्त्रित किया। सरसेठ भागचन्द सोनी को भी बुलाया था। सेठ साहब से पाटे पर बैठने के लिये निवेदन किया किन्तु सेठ साहब सबकी पक्ति मे ही बैठ गये और बोले—

"हम सभी धर्म-बन्धु समान हैं सबके साथ ही बैठेंगे।'

उनकी इस सरलता और निरभिमानता को देखकर सभी को बहुत हर्ष हुआ। ये सेठ साहब प्रतिदिन मध्याह्न मे माताजी के पास समयसार के स्वाध्याय मे बैठते थे। साथ मे सेठानीजी और उनकी पुत्रवधू भी बैठती थीं। दीक्षा के प्रसग मे भी सेठ जी हर कार्य मे सहयोगी बने हुये थे।

प्रथम केशलोंच

दीक्षा के दिन मोहिनीजी के सिर के बाल बहुत ही छोटे-छोटे थे, लगभग एक महीना ही हुआ था जब उन्होने केश काटे थे। अत इतने छोटे केशो का लोच करना, कराना बहुत ही कठिन था। माताजी चुटकी से केश निकाल रही थी। सिर लाल-लाल हो रहा था। उनके पुत्र पुत्रियाँ ही क्या देखने वाले सभी लोग ऐसा लोच देख-देखकर अश्रु गिरा रहे थे। और मोहिनीजी के साहस और वैराग्य की प्रशसा कर रहे थे।

दीक्षा के अवसर पर अनेक साधुओ ने यह निर्णय किया कि

माता मोहिनी ने अनेक रत्नों को पैदा किया है। सचमुच में ये साक्षात् रत्नो की खान हैं। अत. इनका नाम रत्नमती सार्थक है। इसी के अनुसार आचार्यश्री ने इनकी आर्यिका दीक्षा में इनका नाम रत्नमती घोषित किया। फूलाबाई का दीक्षित नाम निर्मलमती रखा गया और कुमारी विमला का शुभमती नामकरण किया गया।

अपनी जन्मदात्री माता की आर्यिका दीक्षा के अवसर पर आर्यिका अभयमतीजी भी किशनगढ से अजमेर आ गई थी। आ० ज्ञानमतीजी को तो ऐसे ही दीक्षा दिलाने मे बहुत ही खुशी होती थी पुन इस समय खुशी का क्या कहना! इस समय तो उनकी जन्मदात्री माँ एव घर निकलने मे भी सहयोग देने वाली सच्ची माँ दीक्षा ले रही थी। इस प्रकार से बहुत ही विशेष प्रभावना पूर्वक ये तीनो दीक्षाये आचार्यश्री धर्मसागरजी महाराज के करकमलो से सम्पन्न हुई हैं। अजमेर मे एक राज० मोइनिया इस्लामिया उ० मा० विद्यालय, स्टेशन रोड के प्रांगण में यह दीक्षा कार्यक्रम रखा गया था जहाँ पर अगणित जैन जैनेतर लोगो ने भाग लिया था।

रविन्द्र कुमार का घर वापस आना

माँ की दीक्षा के बाद भाई कैलाशचन्द जी आदि ने सोचा—

"अब यहाँ सघ मे रवीन्द्रकुमार जी को छोडना कदापि उचित नही है। नही तो ये भी ब्रह्मचर्य व्रत ले लेंगे। इन्हे तो घर ले जाकर नई दूकान की योजना बनवानी चाहिये। जिसमें इनका दिमाग व्यस्त हो जाय और माँ के वियोग को भी भूल जाँय.......।"

तभी तीनों भाइयों ने रवीन्द्र को समझा-बुझाकर घर चलने के लिये तैयार कर लिया और माताजी के पास आज्ञा लेने आये। यद्यपि माताजी की इच्छा नहीं थी और न रवीन्द्र ही मन से जाना चाहते थे किन्तु भाइयो के आग्रह ने उन्हें लाचार कर दिया। तब माताजी को आज्ञा देनी पडी। इधर माधुरी त्रिशला को भी ये लोग ले जाना चाहते थे कि वे दोनो रोने लगीं बोलीं—

"कुछ दिन हमे माँ के पास रहने दो। फिर जब आवोगे तब हम चलेंगे।" इन सभी लोगो ने दो तीन दिन रहकर अपनी माँ —आर्यिका रत्नमतीजी को और सभी साधुओं को आहारदान दिया। एक दिन आर्यिका ज्ञानमतीजी इनके चौके मे आ गई उन्ही के साथ आर्यिका अभयमतीजी आर्यिका रत्नमतीजी को भी पडगाहन कर लिया। एक साथ तीनो माताजी को सभी भाइयो ने, बहुओ ने, सभी बेटियों ने और सभी जमाइयो ने आहार देकर अपने जीवन को धन्य माना था। अनन्तर ये लोग अपनी माँ के वियोग की आतरिक वेदना को अन्तर मे लिये हुये और आ० ज्ञानमती माताजी के त्याग भाव की, हर किसी को मोक्षमार्ग मे लगाने के भाव की चर्चा करते हुए रवीन्द्र को साथ लेकर अपने घर आ गये।

घर में भाइयो की प्रेरणा से इन्होने कुछ दिनो बाद नवीन दूकान खोलने का विचार बनाया। पुरानी दूकान के ऊपर ही एक सुन्दर दूकान बनवाना शुरू कर दी।

[२०]

माताजी ब्यावर में

इधर आचार्यश्री धर्मसागरजी ने संघ सहित अजमेर से काछू की तरफ विहार कर दिया। मार्ग मे पीसांगन में ज्ञानमती माताजी कतिपय आर्यिकाओ के साथ ठहर गई। आचार्य देश-भूषणजी महाराज का संघ इधर अजमेर आकर दिल्ली जाने वाला था, माताजी आर्यिका दीक्षा के बाद लगभग १७ वर्षों मे अपने आद्यगुरु का दर्शन ही नहीं कर पाई थी। इसलिये वे आचार्यश्री की आज्ञा लेकर अपने गुरुदेव के दर्शनार्थ रुक गई। मुनि सम्भवसागरजी और वर्धमानसागरजी जो कि माताजी के पास रहकर उनके मार्ग दर्शन से ही मुनि बने थे ये दोनो भी आ० देशभूषणजी के दर्शनार्थ आचार्यश्री आज्ञा लेकर वहीं पीसांगन मे रुक गये। आचार्य धर्मसागरजी शेष संघ सहित काछू पहुच गये। और माताजी को ब्यावर के भक्तों ने आग्रह कर ब्यावर विहार करा दिया।

माताजी ब्यावर मे सेठ साहब चम्पालाल रामस्वरूपजी की नशिया में ऐ० पन्नालाल सरस्वती भवन मे ठहर गई। दोनों महाराजजी मंदिर के नीचे कमरे म ठहर गये।

रत्नमती माताजी की चर्या

अजमेर से विहार कर रत्नमती माताजी यहाँ ब्यावर तक पैदल आई थी। इनका स्वास्थ्य ठीक था। उसके अतिरिक्त मनोबल विशेष था। दीक्षा लेते ही दोनो समय संघ के साथ प्राकृत प्रतिक्रमण थी। अन्य आर्यिकाओ को प्रात दीक्षा के बाद संस्कृत भक्तिया और प्राकृत का पाठ अनेक बार पढ़ाना पड़ता

है तब कही वे पढ पाती है किन्तु ये स्वय शुद्ध पढने लगी । इन्हे किसी से पढने की आवश्यकता नहीं पडी । ये ही सस्कार इनकी सारी सन्तानो मे रहे हैं ।

गृहस्थावस्था मे ये नित्य ही त्रिकाल सामायिक मे "काल अनन्त भ्रम्यो जग मे सहिये दुख भारी ।" यह हिन्दी भाषा की सामायिक करती थी । माताजी ने कहा—

"अब आप आचारसार आदि ग्रन्थो म मान्य देववदना विधि की सामायिक करिये । ये ही प्रामाणिक है ।"

रत्नमती माताजी ने उसी दिन से वही सामायिक करना शुरू कर दिया । इसमे श्री गौतम स्वामी रचित सस्कृत चैत्यभक्ति और श्री कुंद-कुंद देव रचित प्राकृत पचगुरु भक्ति का पाठ है । इस प्रकार दोनो समय प्रतिक्रमण और तीनो काल सामायिक विधिवत् करते रहने से इन्हें एक महीने के अन्दर ही ये पाठ कठाग्र हो गये ।

रत्नमती माताजी एक बार ज्ञानमती माताजी से बोली—

"आपको तो सस्कृत व्याकरण मालूम है । आप सामायिक की भक्तियो का अर्थ समझ लेती हैं किन्तु मुझे तो अर्थ का बोध नही हो पाता है अत आप इसका हिन्दी पद्यानुवाद कर दे तो बहुत ही अच्छा हो ।"

माताजी ने इसके पूर्व ही टोक मे इस देववदना विधि का हिन्दी पद्यानुवाद किया हुआ था सो उन्होने इनको दिखाया । ये बहुत ही प्रसन्न हुई और इसे शीघ्र ही मुद्रित कराने की प्रेरणा दी । फलस्वरूप वह पुस्तक "सामायिक" नाम से प्रकाशित हो गई । रत्नमती माताजी उस पुस्तक से हिन्दी "सामायिक"

पढकर चैत्यभक्ति आदि का अर्थ समझ कर गद्गद हो जाती थीं ।

ब्यावर मे प्रात प्रतिदिन माताजी का उपदेश होता था । और मध्याह्न मे छहढाला की कक्षा चलती थी और अनन्तर उपदेश होता था । ब्यावर के सभी पुरुष अधिक सख्या मे भाग लेते थे । साथ ही सेठ हीरालाल जी स्वय ही उपदेश और कक्षाओ मे उपस्थित रहते थे । रत्नमती माताजी भी दोनो समय उपदेश मे बैठती थी । आ० ज्ञानमती माताजी तो दिन भर प्राय. राजवार्तिक, अष्टसहस्री आदि ग्रन्थों के अध्यापन मे व्यस्त रहती थी । उस समय जैनेन्द्र प्रक्रिया का अध्ययन भी करा रही थीं । जिसे मुनि वर्धमानसागर, आ० आदिमतीजी, मोतीचन्द, कु० मालती, कु० माधुरी, त्रिशला, कला आदि पढते थे । इन सबका अध्ययन देखकर रत्नमती माताजी बहुत ही प्रसन्न होती थीं । यहाँ सघ नशिया मे ठहरा हुआ था और चौके शहर म होते थे । सेठ हीरालालजी रानीवाला, प० पन्नालालजी सोना, रावका, सोहनलालजी अग्रवाल आदि भक्तो की भक्ति से आ० रत्नमतीजी भी प्रतिदिन आहार का इतनी दूर जाया करती थी । उनकी चर्या पूर्णतया व्यवस्थित रहती थी ।

जम्बूद्वीप रचना मॉडल

अजमेर मे कई बार माताजी ने सेठ साहब भागचन्दजी सोनी से जम्बूद्वीप रचना के बारे मे परामर्श किया था । सेठ साहब की विशेष प्रेरणा थी कि एक कमरे मे इस जम्बूद्वीप का मॉडल बनवाना चाहिये । ब्यावर के प्रमुख भक्तगण जिसमें सेठ हीरालाल रानीवाला, धर्मचन्द मोदी आदि ने भी माताजी से

आग्रह करके पचायती नशिया के मन्दिर जी के एक कमरे में यह मॉडल बनवाना चाहा। माताजी की आज्ञा से मैंने कारीगरो को हर एक चीजो का माप बताया और बैठकर बहुत ही श्रम के साथ सीमेण्ट से जम्बूद्वीप का भव्य मॉडल तैयार करवाना शुरू कर दिया। इस कार्य में आ० रत्नमती माताजी को बहुत ही प्रसन्नता हुई।

अष्टसहस्री प्रकाशन

सेठ हीरालालजी रानीवाला की विशेष प्रेरणा और आर्थिक सहयोग से मैंने अष्टसहस्री प्रकाशन का कार्य भी अजमेर मे शुरू कर दिया। इसे दिल्ली आने पर दिल्ली मे मँगाकर यहीं प्रेस मे प्रथम खण्ड छपवाया है।

आचार्य संघ का दर्शन नहीं हुआ

इधर आ० देशभूषणजी महाराज अजमेर नहीं आये। वहाँ उनके दर्शन का लाभ माताजी को नहीं मिल सका।

प्रत्युत् कुछ ही दिनो मे एक दूसरा आकस्मिक समाचार मिला कि—

"आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी महाराज का महसाना मे समाधिमरणपूर्वक स्वर्गवास हो गया है।"

इस घटना से माताजी को कुछ विक्षिप्तता हुई चूंकि इनसे ही माताजी ने अष्टसहस्री के कुछ अंश और राजवार्तिक का अध्ययन किया था। आचार्य श्री का माताजी को अप्रतिम वात्सल्य मिला था। माताजी ने गुरुवर्य की श्रद्धांजलि सभा कराई। उनके मन मे कई दिन शरीर की नश्वरता का चितन चलता रहा। धीरे-धीरे ग्रीष्म ऋतु आ गई।

सोलापुर बम्बई की परीक्षा देने वाली संघस्थ छात्रायें कु० माधुरी, त्रिशला, कला आदि अपने शास्त्रीय विषयों की तैयारी कर रही थी ।

इधर माताजी को रवीन्द्र के लिये चिंता हो रही थी कि—

"यदि रवीन्द्र अधिक दिन घर रहेंगे तो गृहस्थाश्रम मे फँस जायेंगे ।"

इसीलिये माताजी ने मालती से कई एक पत्र लिखाये थे कि कि रवीन्द्र कुमार अब संघ मे आ जाये । माताजी याद कर रही हैं ।"

रवीन्द्र का पत्र

तभी घर से रवीन्द्र कुमार जी का एक पत्र आया कि—

"मैंने दूकान के ऊपर एक नया कमरा बनवाकर उसमें उपहार साड़ी केन्द्र नाम से एक नई दूकान खोलने का निर्णय किया है । तदनुरूप दि० १२ अप्रैल १९७२ को उसका उद्घाटन का मुहूर्त है । इस अवसर पर यदि भाई मोतीचन्द जी यहाँ आ जावें तो भले ही मैं उनके संघ मे आ सकता हूं । अन्यथा मेरा आना कठिन है· · ।"

मुझे उस समय ज्वर आ रहा था । मैं चादर ओढ़कर सोया हुआ था । कुछ ही देर बाद मे माताजी मंदिर आईं वहीं बरामदे मे मेरा कमरा था । माताजी ने वह पत्र मुझे दे दिया । पढ़ते ही मेरा बुखार भाग गया मैं उठकर बैठ गया और पसीना पोंछने लगा । मैंने कहा—

"माताजी ! मैं टिकैतनगर जाऊँगा ।"

माताजी बोली—

"अभी तो तुम्हे चार डिग्री बुखार था।" तुम कैसे जा सकोगे ?

मैंने कहा—

"नही, अब देख लो मुझे बुखार नही है। मेरे मन मे इतनी प्रसन्नता हुई कि जैसे मानो अपने घर ही जाना है।"

मैं अगले दिन रवाना हुआ, टिकैतनगर पहुचा। मुहूर्त पर नई दुकान का उद्घाटन हुआ। बाद मैं मैंने रवीन्द्र कुमार को साथ ले चलने का प्रोग्राम बनाया। इसी प्रसग मे भाई कैलाशचन्द और प्रकाशचन्द आदि ऐसे चिपट गये बोले

"रवीन्द्र को हम लोग किसी हालत मे भी नही भेजेंगे।"

कुल मिलाकर बडे ही श्रम से रवीन्द्र का प्रोग्राम ब्यावर के बन पाया। मैं खुश हुआ साथ मे रवीन्द्र को लेकर ब्यावर आ गया। माताजी को भी हार्दिक प्रसन्नता हुई। यहाँ रवीन्द्र कुमार जी कई दिन रहे। प्रतिदिन माताजी की यही प्रेरणा चलती रही कि—

"अब तुम आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर ही घर जाना अन्यथा एक दिन विवाह के बन्धन बँध जावोगे। देखो, यह मनुष्य पर्याय आत्म हित के लिये मिली है। इसे नश्वर भोगो में लगाकर व्यर्थ मत करो। जिस शरीर से आत्म निधि प्रगट की जा सकती है उसमे इस चञ्चल लक्ष्मी के कमाने का कार्य क्या मायने रखता था। ।"

इत्यादि प्रकार से बहुत सी शिक्षास्पद बाते कहा करती थी। आखिरकार माताजी की शिक्षाओ का रवीन्द्र के ऊपर भी प्रभाव पड ही गया। रवीन्द्र ने ब्रह्मचर्य व्रत लेने की इच्छा

जाहिर की। तत्क्षण ही माताजी ने मेरे से कहा--

"तुम इन्हे साथ लेकर नागौर चले जाओ। वहाँ आचार्यश्री धर्मसागर जी से इन्हें व्रत दिलाकर ले आवो।"

हम दोनो नागौर पहुच गये। रवीन्द्र ने श्रीफल चढाकर, आचार्य श्री से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया। संघ के सभी साधुओं को भी बहुत ही प्रसन्नता हुई। नागौर की जैन समाज ने भी रवीन्द्र कुमार का अच्छा सम्मान किया। हम दानो खुशी-खुशी ब्यावर आ गये। यहाँ पर भी मैंने समाज को सारी बातें बताईं। मैंने इनके परिचय का छोटा सा फोल्डर तैयार किया, छपवा लिया और और समाज से सभा का आयोजन कर इन्हे फूलमालाओ से सम्मानित किया। रत्नमती माताजी ने भी शुभाशीर्वाद दिया कि---

"तुम अपने जीवन मे धर्मरूपी धन का खूब सग्रह करो तथा त्याग मे आगे बढ़ते हुये एक दिन अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।"

माताजी ने भी यही आशीर्वाद दिया कि---

"इस नश्वर शरीर से ही अविनश्वर सुख प्राप्त किया जा सकता है। अब तुमने वनिता बेडी को तो काट दिया है इसलिये घर कारागृह मे मत फँसना। अभी तुम्हारी विद्या अध्ययन की उम्र है अत इसका मूल्याकन कर घर-दूकान का मोह छोडकर जल्दी ही सघ मे आ जावो।"

रवीन्द्र ने माताजी के शुभाशीर्वाद को, शिक्षाओ को ग्रहण किया। कुछ दिन वहाँ और ठहरे। इसी मध्य सोलापुर की परिक्षायें आरम्भ हो गयी। समस्त बालिकाओ ने प्रश्न पत्र किये।

अनन्तर रवीन्द्र कुमार सभी माताजी का और दोनो महाराजो का आशीर्वाद लेकर वापस घर आ गये।

नई दुकान, नया उत्साह

चूंकि इन्होने स्वयं नई दुकान खोली थी, नया उत्साह था। नये जीवन के साथ नई कमाई का, स्वयं की कमाई का पैसा साथ मे होना उन्हें आवश्यक महसूस हो रहा था।

माताजी भी अब निश्चिन्त थी सोचती थी---

"अब यह कितने दिन घर रहेंगे। कितने दिन दुकान करेंगे। अब ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है तो मोक्ष मार्ग मे तो लग ही गये हैं। एक न एक दिन संघ मे रहकर आत्म-साधना को ही अपना लक्ष्य बनायेंगे।"

दिल्ली विहार

इसी मध्य फलटन के माणिकचंद गांधी आये हुये थे उन्होने वहाँ जम्बूद्वीप मॉडल बनते हुये देखा बहुत प्रसन्न हुये और बार-बार माताजी से प्रार्थना करने लगे-

"इस निर्वाणोत्सव प्रसंग मे यह रचना अभूतपूर्व रहेगी। अखिल भारतीय स्तर पर इसका प्रचार होना चाहिये। आप दिल्ली पधारे तो अच्छा रहेगा।"

सरसेठ भागचन्द की भी यही प्रेरणा थी। सेठ हीरालालजी, रानीवाला से परामर्श करने मे उन्होने भी इसी बात को पुष्ट किया। दिल्ली के पारसादीलालजी पाटनी का भी विशेष आग्रह रहा। साथ ही महासभा के अध्यक्ष और परमगुरु भक्त चांदमलजी (गोहाटी) का विशेष आग्रह था कि---

"माताजी ! आप दिल्ली पधारें। निर्वाण महामहोत्सव को सफल करने की बहुत बड़ी जिम्मेदारी आप जैसे साधु-साध्वियो पर है। यह कार्य भी आपकी पवित्र प्रेरणा से दिल्ली जैसी महानगरी मे ही होना चाहिये। दिल्ली भारत की राजधानी होने के साथ ही जैन समाज का भी एक केन्द्र स्थान है।"

घर से प्रकाशचन्दजी आये थे। उन्होने भी माताजी को दिल्ली विहार के लिये प्रेरणा दी। तब माताजी ने रत्नमती से परामर्श कर उनकी अनुमति ली। दोनो मुनि और सघ की आर्यिकाओ से बातचीत करके मुझे नागौर आचार्यश्री की आज्ञा लेने भेज दिया। आचार्यश्री की आज्ञा प्राप्त कर माताजी ने ब्यावर से विहार कर दिया। नसीराबाद मे आ० कल्प श्रुतसागर जी महाराज के सघ के दर्शन किये। दो तीन दिन रहकर यहाँ से अजमेर आकर यहाँ से सघ का विहार दिल्ली की तरफ हो गया। और आषाढ सुदी ११ को दिल्ली पहाडी धीरज पर सघ आ गया। साथ मे मुनि सभवसागरजी और वर्धमानसागरजी भी थे और तीन आर्यिकाये थी। यहाँ कूचासेठ मे आ० देश-भूषणजी महाराज का दर्शन कर माताजी को असीम आनन्द हुआ।

[२१]

दिल्ली चातुर्मास

यहाँ के प्रसिद्ध मुनि भक्त जयनारायणजी, महावीर प्रसाद जी, वशेश्वरदास जी, डा० कैलाशचन्द राजाटायज, कर्मचन्द जी आदि तथा महिलाओं मे प्रमुख परसन्दीबाई, बोखतबाई, शरबती-

बाई आदि सभी ने संघ का चातुर्मास पहाडी धीरज पर ही हो ऐसी प्रार्थना की। तदनुसार आषाढ़ शुक्ला १४ को वर्षायोग स्थापना हो गई। यह सन् १९७२ का चातुर्मास बहुत ही महत्व पूर्ण रहा है।

इधर मालती, माधुरी और त्रिशला को उनके भाई, सुभाष-चन्द जी आकर घर लिवा ले गये। संघ मे दो मुनि चार आर्यिकायें थीं। ब्रह्मचारिणी छुहाराबाई, कु० सुशीला, शीला और कला थीं और मैं (मोतीचन्द) था। प्रतिदिन प्रात माता जी का और महाराज जी का प्रवचन होता था। यहाँ पर ७-८ चौके लगते थे। सभी व्यवस्था बहुत सुन्दर थी। यहीं पर एक क्षुल्लिका ज्ञानमती रहती थी। वे भी संघ की वैयावृत्ति मे बहुत ही रुचि लेती थीं।

अस्वस्थता, गुरु का आशीर्वाद

सावन मे गर्मी अधिक पड जाने से और रास्ते का अधिक पदविहार का श्रम होने से पूज्य ज्ञानमती माताजी का स्वास्थ्य बिगड गया। संग्रहणी का प्रकोप बढ गया। तब माताजी का डिप्टीगंज तक चौकों में जाना कठिन हो गया। आहार बिल्कुल कम हो गया। इससे समाज को कुछ दिनो उपदेश का लाभ कम मिल पाया। इसी प्रसंग पर एक दिन आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज स्वयं माताजी को आशीर्वाद देने के लिए वहाँ आ गये और उपदेश में बोले—

"ये ज्ञानमती आर्यिका मेरी ही शिष्या हैं, इन्होने घर छोडते समय जो पुरुषार्थ किया है वह आज पुरुषो के लिये भी असम्भव है। इनका स्वास्थ्य अस्वस्थ सुनकर मैं इन्हे शुभाशीर्वाद

देने आया हूं । अभी इन्होंने जो अष्टसहस्री ग्रन्थ का अनुवाद किया है वह एक अभूतपूर्व कार्य किया है । ये जल्दी ही स्वास्थ्य लाभ करें, इनसे समाज को बहुत कुछ मिलने वाला है । इतनी सुयोग्य अपनी शिष्या को देखकर मेरा हृदय गद्‌गद हो जाता है ।"

इत्यादि प्रकार से आचार्यश्री के वचनामृत को सुनकर जनता भाव विभोर हो गई । माताजी के प्रति श्रद्धा का स्रोत उमड पडा । महाराज जी ने रत्नमती माताजी को बहुत-बहुत आशीर्वाद देते हुए कहा कि—

"आपने अपने जीवन मे इस सर्वोत्कृष्ट आर्यिका पद को ग्रहण कर एक महान आदर्श उपस्थित किया है । इस वय में भरे पूरे परिवार बहू-बेटो के सुख को, घर को छोडकर कौन दीक्षा लेता है । विरले ही पुण्यशाली होते हैं । आपका धर्मप्रेम तो मुझे उसी समय दिख गया था कि जब मैना के घर से निकलते समय समाज के और अपने पति के इतने भयकर विरोध के बावजूद भी आपने सबकी नजर बचाकर आकर मेरे से इनको दीक्षा देने के लिये स्वीकृति दे दी थी । आपको मेरा यही आशीर्वाद हैं कि आपकी सयम साधना निर्विघ्न होती रहे और अन्त मे समाधि का लाभ हो ।"

इस प्रकार गुरु का आशीर्वाद प्राप्त कर रत्नमती माताजी का हृदय गद्‌गद हो गया । उन्होने बार-बार गुरुदेव को नमस्कार कर उनके चरण स्पर्श किये और अपने को धन्य माना ।

जम्बूद्वीप योजना

यहाँ पर जम्बूद्वीप योजना की चर्चा फैल चुकी थी । डॉ०

कैलाशचन्द, लाला श्यामलाल जी ठेकेदार, महावीरप्रसाद जी (मनामा वाले), कर्मचंद जी आदि पुरुष और महिलाओ मे परसन्दी आदि सभी सक्रिय रुचि ले रहे थे। मैं प्राय प्रतिदिन इसके लिए जगह की खोज मे इधर उधर लोगो से मिलता रहता था और यत्र तत्र जगह भी देखता रहता था।

डा० कैलाशचन्द ने एक कुशल इन्जीनियर के० सी० जैन, सुप० इन्जीनियर पी० डब्लू० डी० के परामर्श से मॉडल तैयार करवा रहे थे। धीरे-धीरे माताजी को भी स्वास्थ्य लाभ हो रहा था। तब तक महापर्व पर्यूषण आ गया।

पर्यूषण पर्व

माताजी ने प्रतिदिन डेढ-दो घण्टे तत्त्वार्थसूत्र पर अपना प्रवचन किया। जयनारायण जी तथा और भी अनेक भक्तो ने स्पष्ट शब्दो मे कहा—

"इतनी उम्र मे हम लोगो ने ४०–४५ विद्वानो द्वारा तत्त्वार्थसूत्र का प्रवचन सुना है किन्तु जितना रहस्य सरल शब्दो मे माताजी ने सुनाया है और जितना इस नीरस को सरस तथा रोचक बना दिया है वैसा आज तक हम लोगो ने किसी से भी नही सुना है।"

माताजी की विद्वत्ता से वहाँ इतनी भीड हुई कि पता नही कितने लोग धर्मशाला के बाहर यत्र-तत्र दूकानो पर बैठकर सुनते थे और कितने ही जगह के अभाव मे दु खी हो वापस चले जाते थे। डॉ० कैलाशचन्द ने उन सभी उपदेश के कैसेट तैयार कर लिये थे।

आर्यिका दीक्षा

पूज्य माताजी की प्रेरणा से पहाडी धीरज की एक महिला

मैनाबाई और शाहदरा की एक महिला मनभरी को यही पहाड़ी धीरज पर आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज के करकमलो से आर्यिका और क्षुल्लिका दीक्षा दिलाई थी। ये दोनो माताजी के अनुशासन मे ही रहती थी।

रत्नमती माताजी का उत्साह

आ० रत्नमती माताजी वृद्धा होकर भी डिप्टीगज तक चौकों मे आहार के लिए जाती रहती थी और चार छह दिनो बाद शहर मे यहाँ से दो मील दूर आचार्यश्री के दर्शन करने जाया करती थीं।

इधर निर्वाणोत्सव के प्रसग मे जो भी कार्यक्रम आयोजित किये जाते उनमे भी भाग लेती रहती थी और माताजी का उपदेश सुनकर तो बहुत ही हर्षित होती थी।

मध्याह्न में मुनि सम्भवसागर जी, आर्यिका आदिमती जी, श्रेष्ठमती जी आदि के साथ बैठकर चौबीस ठाणा, सिद्धान्त प्रवेशिका आदि की चर्चायें किया करती थी। इन्हे चर्चा मे बड़ा आनन्द आता था तथा करालबाग, माडलबस्ती आदि के मन्दिरो के दर्शन करने भी बहुत बार जाती रहती थी।

संस्थान की स्थापना

माताजी की प्रेरणा और कार्यकर्ताओ के सक्रिय सहयोग से यही पर दिगम्बर जैन इन्स्टीट्यूट आफ कास्मोग्राफिक रिसर्च (त्रिलोक शोध सस्थान) की स्थापना हुई। साथ ही श्री वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला की भी स्थापना हुई। जिसका प्रथम पुष्प अष्टसहस्री ग्रन्थ यहीं छप रहा था। संस्थान की स्थापना के समय माताजी की प्रेरणा से मैंने स्वय पहले २५०००) की

रकम लिखी थी पुन ला० श्यामलाल जी आदि सक्रिय होकर लिखाते गये थे।

प्रभावना

इस चातुर्मास के मध्य अनेक विधान सम्पन्न हुये। पुन आष्टाह्निक पर्व मे बहुत ही प्रभावना के साथ सिद्धचक्र मण्डल विधान सम्पन्न हुआ। इन विधि विधानो को भी माताजी की आज्ञा से मैं रुचि से कराता था।

चातुर्मास के मध्य ही माताजी को सब्जी मण्डी कैलाश नगर वैदवाडा आदि के भक्तगण भी एक-दो बार अपने मन्दिरो मे ले गये थे और वहाँ उपदेश, केशलोंच आदि कराये थे। जिस मे माताजी के गुणों की सुरभि दिल्ली मे सर्वत्र फैल रही थी। रत्नमती माताजी की शात तथा गम्भीर मुद्रा से भी भक्तगण बहुत प्रभावित होते थे।

गुरुदर्शन

माताजी स्वस्थ होते ही प्राय दो-चार दिन सभी साध्वियों को साथ लेकर कूचा सेठ मे आचार्यश्री के दर्शन करने जाती रहती थीं। समय-समय पर इस जम्बूद्वीप रचना हेतु आचार्यश्री से मार्गदर्शन लिया करती थी। इस सन्दर्भ मे आचार्यश्री ने कई बार कहा कि—

"यह दिल्ली है, ज्ञानमतीजी तुम्हे अनुभव नहीं है। मैं यहाँ ७-८ चातुर्मास कर चुका हू। यहाँ किसी पुण्य कार्य को सम्पन्न कराना बहुत ही दुर्लभ है। स्थानाभाव खास कारण बन जाता है। मैं यहाँ निर्वाणोत्सव के अवसर पर एक विशालकाय मूर्ति की स्थापना अथवा विशालकाय कीर्तिस्तम्भ बनवाना चाहता

हूं । मीटिंगें होती हैं किंतु कार्य हो नहीं पा रहा है ।…"

शेष में सचमुच ही आचार्य महाराज यहां किसी विशेष निर्माण योजना को सजीव नहीं करा सके ।

प्रत्येक अवसरों पर आ० रत्नमती माताजी भी संघ साथ मे दो मील पैदल चली आतीं और वापस चली आती थीं । कभी थकावट महसूस नहीं करती थीं । चातुर्मास के बाद घर से रविन्द्र कुमार, मालती और त्रिशला यहां संघ में आ गये थे और अपने अध्ययन आदि मे सलग्न हो गये थे ।

कैलाशनगर में प्रभावना

कैलाशनगर के भक्तों के आग्रह से चातुर्मास के बाद संघ वहां पहुचा । प्रतिदिन माताजी का उपदेश होता था और दोनों महाराजजी भी उपदेश किया करते थे । संघ की चर्या, अध्ययन, अध्यापन और उपदेश के निमित्त से बहुत ही प्रभावना हुई ।

अनन्तर माताजी दरियागंज, कूचासेठ, आर० के० पुरम, ग्रीन पार्क, भोगल आदि अनेको स्थानो पर विहार करती रहीं । सर्वत्र प्रभावना हुई और माताजी के उपदेश के लिए भक्त लोग लालायित रहे । दिल्ली मे सर्वत्र माताजी का विहार कराने मे डॉ ० कैलाशचन्द बहुत आगे रहे हैं ।

द्वितीय चातुर्मास दिल्ली में

सन् १९७३ में दोनो मुनिराज और माताजी के संघ का चातुर्मास दिल्ली के अन्तर्गत एक नजफगढ़ स्थान मे हुआ । यहाँ एक जिनमन्दिर है । और श्रावक भक्तिमान हैं । यहां के भक्तो में त्रिलोक शोध संस्थान के कार्यकर्ताओं से मिलकर जम्बूद्वीप रचना का निर्माण यहां कराना चाहा । माताजी ने यहां पर इस

रचना को शुरु करा दिया। चातुर्मास मे उपदेश विधान, स्वाध्याय और तत्त्व चर्चा से अच्छी प्रभावना रही। यहाँ के ला० उल्फतराय (सेल्स टेक्स आफीसर रिटायर्ड) ओमप्रकाश निरञ्जनलाल, मुरारीलाल, सागरचन्द, दरबारीलाल, शीतल प्रसाद आदि श्रावको ने सघ की बहुत ही भक्ति की थी।

यहाँ पर रत्नमती माताजी मध्याह्न मे सम्भवसागर जी आदि के पास बैठकर खूब धर्म चर्चा चौबीसठाणा चर्चा किया करती थीं।

मुनिश्री विद्यानन्द जी के दर्शन

निर्वाण महोत्सव की सफलता दि० जैन साधुओ के अधिक रूप मे दिल्ली आने से ही हो सकती थी। श्वेताम्बर मे तीनो सम्प्रदाय के साधुवर्ग प्राय दिल्ली आ रहे थे और सक्रिय भी थे। दिगम्बर सम्प्रदाय के मात्र आ० देशभूषणजी महाराज अपने सघ सहित विराजमान थे। मुनि श्री विद्यानन्दजी भी दिल्ली आ चुके थे। माताजी ने भी उनका दर्शन करना चाहा अत सघ नजफगढ से विहार कर दिल्ली शहर में आ गया। माताजी ने मुनिश्री के दर्शन किये। कई बार उनके पास मे इस निर्वाणोत्सव को प्रभावना से मनाने को रूपरेखाओ पर विचार विमर्श चलता रहा। माताजी की जम्बूद्वीप रचना की स्कीम भी महाराज ने सुनी। उन्होने त्रिलोक शोध सस्थान नाम सुना तब (त्रिलोक) शब्द से प्रभावित होकर एक तीन लोक का ही प्रतीक निर्धारित किया जिसे जैन मे चारो सम्प्रदायो ने एक स्वर से मान्य कर लिया वह 'तीन लोक प्रतीक' आज भी सर्वत्र जैन समाज मे प्रचलित है।

माधीनगर में प्रभावना

माधीनगर के श्रावकों के अतीव आग्रह से माताजी ने उधर विहार कर दिया। वहाँ भी भक्तो की भक्ति देखते ही बनती थी। आहार के समय १०-१२ चौके रहते थे। मुनि, आर्यिकायें, अब वृत्तपरिसंख्यान लेकर उस दूर-दूर तक चर्या के लिये घूमते थे तो बडा आनन्द आता था और बहुत मे जैन जैनेतरों की भीड़ एकत्रित हो जाती थी। यहाँ भी माताजी के उपदेश का बहुत ही प्रभाव रहा है। यहाँ पर भी श्री पडित प्रकाशचन्द जी, हितैषी भी माताजी के आकर बैठ जाते थे और ऊँची-ऊँची कर्म प्रकृतियो की, समयसार की चर्चा किया करते थे। प० लालबहादुर जी शास्त्री माताजी के अति निकट में रहते थे। उनके घर में भी चौका लगता था। उनकी पत्नि भी धर्मकार्यों में सतत आगे रहती हैं।

पचकल्याणक प्रतिष्ठा

दिल्ली में शक्तिनगर मे पचकल्याणक प्रतिष्ठा का विशाल आयोजन था। आ० श्री देशभूषणजी महाराज सघ सहित वहाँ विराजे थे। वहाँ के सेठ सुन्दरलाल जी (बीडी वाले) आदि कई महानुभावो ने माताजी से भी वहाँ पधारने का आग्रह किया। माताजी भी वहाँ पहुच गयी। वहाँ पर पडाल बहुत दूर था फिर भी प्रत्येक कल्याणको मे आ० रत्नमती माताजी पहुच जाती थी। प्रतिष्ठा के बाद पुनः माताजी गांधीनगर आ गई थी। इसी अवसर पर टिकैतनगर में पचकल्याणक प्रतिष्ठा होने वाली थी अत भाई कैलाशचन्द जी आदि के विशेष आग्रह से मैं और सघ को बाइया सुशीला, शीला, कला आदि टिकैतनगर पहुच

गये थे। वहाँ बहुत ही प्रभावनापूर्वक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुयी थी।

आचार्यश्री दिल्ली की ओर

इस निर्वाणोत्सव मे दिगम्बर जैनाचार्यों मे आचार्य धर्मसागरजी महाराज का भी नाम गौरव से अंकित था। अतः अनेक भक्तों के आग्रह से आ० महाराज संघ सहित दिल्ली को आ रहे थे। संघ अलवर में ठहरा था तब माताजी ने गान्धीनगर के श्रावकों को और खासकर प० लालबहादुर जी शास्त्री को विशेष रूप से प्रेरित करके संघ के पास दिल्ली आने की प्रार्थना करने के लिये भेजा था। आचार्य संघ को दिल्ली लाने में प० लालबहादुर जी बहुत ही रुचि ले रहे थे।

[२२]

हस्तिनापुर दर्शन

सन् १९७४ मे फाल्गुन मास मे माताजी ने हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्र की यात्रा के लिये विहार किया। साथ मे दोनों मुनिराजो ने भी विहार कर दिया। उस समय आ० रत्नमती माताजी पदविहार करते हुये यहाँ सकुशल आ गयीं। तीर्थक्षेत्र के दर्शन करके सभी का मन पुलकित हुआ। वहाँ के शांत वातावरण से सभी साधु प्रसन्न थे। रत्नमती माताजी ने भी चारो नशिया तक कई वन्दनायें कीं। आष्टाह्निक पर्व मे संघ यहीं ठहरा। इधर मेरठ और मवाना के भक्तो ने संघ की पूरी वैयावृत्ति की और आहार दान का लाभ लेते रहे। यहाँ मुनि श्री सम्भवसागर जी ने आष्टाह्निक पर्व में आठ उपवास किये थे। यहाँ क्षेत्र पर राय साहब लाला उल्फत राय जी दिल्ली जो कि क्षेत्र कमेटी के

अध्यक्ष थे और सुकुमारचन्द्र जी मेरठ जो कि क्षेत्र के महामन्त्री थे, ये कार्यकर्तागण उपस्थित थे।

गजफमढ़ में स्थान और समाज के कतिपय लोगों का वातावरण बढ़िया न होने की वजह से माताजी जम्बूद्वीप रचना के लिये शांतिप्रद स्थान चाहती थी। सो यह स्थान माताजी को बहुत ही जँच गया। क्षेत्र के कार्यकर्ताओं ने भी बड़े ही उत्साह से आगे होकर माताजी से प्रार्थना की कि—

"आप यह जम्बूद्वीप रचना यहीं हस्तिनापुर में कराइये। हम लोग सब तरह से आपकी आज्ञा का पालन करेंगे।"

यहाँ पर आष्टाह्निक पर्व मे अन्त में प्रतिपदा के दिन मेला भी भरता था। जिसमें पांडुक शिला पर भगवान के न्हवन के समय बाबू सुकुमारचन्द की प्रेरणा से मैंने जम्बूद्वीप का चित्र जो कि कपड़े पर बना हुआ है सो लोगो को दिखाया। समाज के सभी प्रतिष्ठित लोग गद्गद हो उठे और एक स्वर से बोले—

"यह रचना यहीं बननी चाहिये।"

इधर मेरठ और मवाना के श्रावकों की भक्ति को देखकर माताजी का मन बहुत ही प्रसन्न हुआ।

आचार्यश्री के दर्शन के लिये उतावली

इधर माताजी को यह समाचार मिला कि—

"आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज ससंघ दिल्ली पहुंच रहे हैं।"

माताजी ने हस्तिनापुर से मेरठ होते हुये शीघ्र ही विहार कर दिया। उस समय संघ दोनों टाइम चलने लगा। तब रत्नमती माताजी को किसी-किसी दिन मध्याह्न की चलाई में कष्ट का

अनुभव होने लगा । यद्यपि दोनो टाइम की १०-११ मील की चलाई उनकी शक्ति के बाहर थी फिर भी बड़ी माताजी ने इस बात पर ध्यान नही दिया चूंकि उन्हे यही धुन लग गई कि—

"आचार्यश्री के प्रवेश के अवसर पर हम लोग पहुच जाँय ।"

इस बात को लक्ष्य मे रखकर रास्ते मे पूज्य रत्नमती माता-जी भी गुरु भक्ति मे अपने शारीरिक कष्टो को न गिनते हुए उठते-बैठते चलती रही । एक दिन मोदीनगर के रास्ते मे मैं स्वय उनके साथ था । मोदीनगर मन्दिर के दो मील पहले ही वे काफी थक चुकी थी । वहीं बैठ गई किन्तु माताजी ने उन्हे आश्वासन देते हुए कहा—

"उठो, चलो मन्दिर आने वाला ही होगा, वही विश्राम कर लेना ।"

जैसे-तैसे वे मन्दिर तक पहुच गईं । इसी तरह उन्होने एक बार भी यह नही कहा कि—

"चलाई कम कर दो, दो दिन बाद पहुच लेंगे, इतनी जल्दी क्या है ।''' ' "

प्रत्युत् चलती ही रही ।

तब मैंने सोचा—

"इनके हृदय में भी गुरुभक्ति उमड रही है इसलिये ये अपने कष्टो को कष्ट न गिनकर समय पर पहुचना चाहती हैं ।"

अन्त मे माताजी सघ सहित आचार्यश्री के प्रवेश के समय पहुच गईं । दो वर्ष बाद गुरुदेव का दर्शन करके और सघ

के सभी साधुओ से मिलने पर इन साधु साध्वियो को ऐसा लगा कि —

"मानो हम लोग अपने माता-पिता और भाई-बहनों से ही मिल गये हैं।"

आ० रत्नमती माताजी तो इतनी प्रसन्न थी कि मानों उन्हें कोई निधि ही मिल गई है। चूंकि उन्हें दीक्षा देकर गुरु के सान्निध्य मे कुछ ही दिनों तक रहने का लाभ मिल पाया था। सघ यहाँ दिल्ली मे लालमन्दिर मे ठहरा हुआ था। सभी माताजी कूचासेठ के त्यागी भवन मे ठहरी हुई थी।

रत्नमती माताजी की दैनिक चर्या

प्रतिदिन आ० रत्नमती माताजी, ज्ञानमती माताजी के साथ प्रात काल मन्दिर गुरुओं के दर्शन करने जाती थीं। आहार के समय यहाँ बहुत दूर-दूर तक यानि शहर के इधर वेदवाडा इधर दरियागज तक चौके चल रहे थे। वहाँ तक भी रत्नमती माताजी आहार के लिय जाया करती थी। यद्यपि आ० ज्ञानमती माताजी आहार के लिये इतनी दूर जाने मे समर्थ नही थी, चूंकि उनको सग्रहणी की बीमारी है।

पुन हस्तिनापुर विहार

त्यागी भवन मे दि० जैन त्रिलोक सस्थान की मीटिंग हुई और यह निर्णय हुआ कि यदि पूज्य माताजी को हस्तिनापुर क्षेत्र पर जम्बूद्वीप रचना इष्ट है तो वही पर जगह क्रय कर शुभारम्भ कराया जाय। कार्यकर्ताओ ने पूज्य माताजी से पुन हस्तिनापुर के लिये विहार करने की प्रार्थना की। माताजी साथ मे यशोमती आर्यिका को लेकर वैशाख सुदी पूर्णिमा को

वहाँ से विहार कर १२–१३ दिन मे हस्तिनापुर आ गई।

आ० रत्नमती जी का दिल्ली में भ्रमण

इधर आचार्य संघ में ही आर्यिका रत्नमती माताजी संघस्थ अन्य आर्यिकाओ के साथ दिल्ली ही रहीं कूचासेठ से आचार्यश्री धर्मसागरजी के संघ का पहाड़ी धीरज, शाहदरा आदि कई स्थानो पर विहार होता रहा। साथ मे रत्नमती माताजी भी भ्रमण करती रहीं। संघस्थ आर्यिकाओ के साथ दिल्ली के अनेक मन्दिरो के दर्शन भी किये और संघ मे रहते हुये आचार्यश्री के उपदेश श्रवण का लाभ प्राप्त करती रही। इन्हें बड़े संघ मे रहने मे बडा आनन्द आ रहा था। दिन भर साधु-साध्वियों की धर्ममय व्यस्त चर्या को देखने के लिये और इतने बड़े विशाल संघ का दर्शन करने के लिये दिल्ली के क्या, आस-पास के तथा दूर-दूर देशों के भी यात्रीगण आते रहते थे।

सुमेरुपर्वत का शिलान्यास

यहाँ हस्तिनापुर आकर मैंने माताजी के मार्गदर्शन मे यहाँ पर जम्बूद्वीप रचना योग्य स्थान क्रय करने के लिये प्रयत्न कर कर रहा था। क्षेत्र के तथा मवाना के धर्मप्रेमी भक्तगण हमें पूरा सहयोग दे रहे थे। पुण्य योग से मन्दिर से उत्तर दिशा मे एक फर्लाङ्ग से निकट ही नशिया के रास्ते मे एक खेत संस्थान के नाम खरीद लिया गया और माताजी की आज्ञा से तथा आचार्यद्वय के शुभाशीर्वाद से आषाढ़ शुक्ला तीन को (सन् ७४ में) सुमेरुपर्वत-की शिलान्यास विधि मेरठ के धर्मात्मा सेठ जय-कुमार मूलचद सर्राफ ने सम्पन्न की। धर्म प्रभावना पूर्वक विधि सम्पन्न होने के अनन्तर उसी दिन माताजी ने दिल्ली की ओर

विहार कर दिया। यद्यपि गर्मी भयंकर पड़ रही थी फिर भी माताजी ने आचार्यसंघ के चातुर्मास करने हेतु अतीव शीघ्रता कर दी। मार्ग में दोनों समय विहार करके आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को दिल्ली कूचासेठ पहुंच गयीं।

चातुर्मास स्थापना

आचार्यश्री देशभूषणजी महाराज ने अपने संघ सहित कूचा-सेठ कम्मोजी की धर्मशाला में चातुर्मास स्थापना की। तथा इसी आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी की रात्रि के १० बजे आचार्यश्री धर्मसागरजी ने अपने चतुर्विध संघ सहित, लालमन्दिर में चातुर्मास की स्थापना की थी। उस अवसर पर साहू शांतिप्रसाद जी आदि प्रमुख श्रीमान्, विद्वान् और हजारों भक्तगण उपस्थित थे। यहां संघ की चर्या बहुत ही सुन्दर थी। प्रातःकाल जब साधु-साध्वी मन्दिर से एक साथ आहार के लिये निकलते थे तब वह दृश्य देखते ही बनता था। लालमन्दिर के बाहर चौक से लेकर कूचासेठ तक, चांदनी चौक, वेदवाड़ा और दरियागंज की सड़कों में श्रावकों के दरवाजों पर खड़े हुए स्त्री पुरुषों की उच्च स्वर में पडगाहन की ध्वनि बहुत ही अच्छी लगती थी।

हे स्वामिन् ! नमोऽस्तु ३, अत्र तिष्ठ २,……"

उसी प्रकार सायंकाल में सभी साधु-साध्वी आचार्यश्री को घेरकर बैठ जाते थे और दैवसिक प्रतिक्रमण पाठ पढ़ते थे। उस समय का दृश्य देखने के लिये भी बहुत से स्त्री-पुरुष आ जाते थे।

सम्यग्ज्ञान पत्रिका

पूज्य माताजी ने चारों अनुयोगों से समन्वित सम्यग्ज्ञान

पत्रिका तैयार की जो कि जैन समाज की अपने आप मे एक विशेष ही स्वाध्याय पत्रिका है। उस समय इस पत्रिका का विमोचन लालमंदिर मे आचार्य श्री धर्मसागर जी के कर-कमलो से सम्पन्न हुआ। आज दस वर्ष हो रहे हैं यह पत्रिका लाखो भव्यो को सम्यग्ज्ञान रूपी अमृत को बाँट रही हैं।

कुछ दिनो बाद सघ दरियागज बाल आश्रम मे आ गया। वहाँ का खुला स्थान आचार्यश्री को बहुत जँचा अतएव आचार्य श्री ने चातुर्मास वही व्यतीत करना निश्चित कर लिया।

रत्नमती जी का सघ प्रेम

उस अवसर मे दूसरे दिन माताजी रत्नमती माताजी आदि को साथ लेकर दरियागज का दर्शन करके वापस कूचासेठ (त्यागी भवन) मे आ जाती थीं। रत्नमती माताजी ज्ञानमती माताजी से स्वीकृति लेकर वहीं दरियागज मे ही ठहर गयीं और सघ के साधु साध्वियो के साथ अपना धर्म-ध्यान करने लगी।

मुनिश्री विद्यानन्द जी दरियागज में

मुनिश्री विद्यानन्द जी महाराज भी दरियागज मे आ गये थे। अब यहाँ प्राय प्रतिदिन निर्वाण महोत्सव के बारे मे ही विचार-विमर्श चलता रहता था। मुनिश्री की प्रेरणा से और श्रावको के आग्रह से पूज्य माताजी भी यहीं दरियागज आ गयी अब यहाँ धर्म प्रभावना का वातावरण बहुत ही सुन्दर दीख रहा था। दिन-पर-दिन भक्तो की भीड बढती जा रही थी।

निर्वाणोत्सव की गतिविधियो मे स्थानकवासी, तेरहपथी और मन्दिरमार्गी ऐसे तीनो सम्प्रदाय के श्वेताम्बर साधु-साध्वियाँ

भी समय-समय पर यहाँ आकर आचार्यश्री और मुनिश्री से वार्तालाप किया करते थे।

२५ सौवां निर्वाण महोत्सव

यह भगवान् महावीर का पच्चीस सौवाँ निर्वाण महोत्सव अखिल भारतीय स्तर पर मनाया जाना था। वह पुण्य तिथि आ गयी। रामलीला मैदान मे पूर्व निर्मित मच के अन्दर मच के अतिरिक्त दो और विशाल मच बनाये गये थे। जिनमे एक पर आर्यिकायें एव एक पर आचार्यगण मुनिश्री विराजमान हुये।

भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने पधार कर गुरुओं को नस्मकार किये। मुनियो एव आचार्यों के आशीर्वचन के उपरात प्रधानमन्त्री का भाषण हुआ। अनन्तर इन्दिराजी के कर-कमलो से धर्मचक्र का प्रवर्तन भी कराया गया। ऐसा स्वर्गिम महोत्सव जिसने भी देखा वह पुण्यशाली था और जिन्हे देखने को नही मिला वे इस पुण्य से वचित रह गये। उस समय वह धर्म मच ऐसा लग रहा था मानो धर्म ही मूर्तिमान होकर यहाँ आ गया है।

दीक्षा समारोह

इस निर्वाण महोत्सव के बाद मगसिर वदी दशमी भगवान् महावीर स्व.मी के तपकल्याणक दिवस आचार्य धर्मसागर जी के सघ मे कई दीक्षार्थियो की दीक्षायें हुई। उनमे ऐ० कीर्तिसागर मुनि बने, क्षु० गुणसागर, भद्रसागर मुनि बने। क्षु० मनोज्ञश्री आर्यिका हुई। ब्र० भागाबाई, कु० सुशीला और शीला की भी आर्यिका दीक्षायें हुई, इनके नाम क्रम से आ० विपुलमती,

श्रुतमती और शिवमती रक्खे गये। श्रुतमती, शिवमती, आ० ज्ञानमती माताजी की शिष्यायें थी। तथा एक ब्रह्मचारी व्रजभान ने क्षुल्लक दीक्षा ली। उस समय ऐसी ७ दीक्षायें हुई थी।

आर्यिकारत्न पदवी

इसी अवसर पर आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज ने अपने प्रभावशाली शिष्य विद्यानन्द मुनिराज को उपाध्याय पद से विभूषित कर दिया। तथा अपनी प्रभावशाली शिष्या ज्ञानमती माताजी को नूतन पिच्छिका और शास्त्र देकर आर्यिकारत्न और न्याय प्रभाकर की पदवी से अलकृत किया। पुन माताजी को बहुत आर्शीवाद देकर आचार्यश्री ने उसी दिन दक्षिण की ओर विहार कर दिया।

इसके अनन्तर कुछ दिन और दिल्ली रहकर आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज ने अपने विशाल सघ सहित हस्तिनापुर क्षेत्र की ओर विहार कर दिया। उस समय पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माताजी ने भी साथ ही विहार किया था।

इस प्रकार यह सन् १९७४ का दिल्ली का चातुर्मास स्वर्णाक्षरो मे लिखा जायेगा। इस समय यहा पर २३ मुनि थे। आर्यिका, क्षुल्लक, ऐलक मिलकर चौसठ साधु थे। दिल्ली मे इतने अधिक साधु समूह के एक साथ एकत्रित होने का इस शताब्दी का यह विशेष अवसर था।

जम्बूद्वीप स्थल पर मदिर का निर्माण

आचार्य सघ शीतकाल मे मेरठ के भक्तगणों के आग्रह से कुछ दिन के लिये यही ठहर गया। पूज्य ज्ञानमती माताजी

आचार्यश्री की आज्ञा लेकर हस्तिनापुर आ गई। इन्हीं के साथ आ० रत्नमती माताजी और आ० शिवमती जी भी आ गयीं। यहाँ पर माघ सुदी में पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा होनी थी। जम्बू-द्वीप स्थल पर मन्दिर में भव्यजनों के दर्शनार्थ अथवा जम्बूद्वीप रचना कार्य की निर्विघ्न सिद्धि के लिये भगवान् महावीर की ७ हाथ ऊँची जिनप्रतिमा यहाँ पर आ चुकी थी। माताजी की प्रेरणा और आचार्यश्री के आशीर्वाद से फरवरी १९७५ में लाला शामलाल जी ठेकेदार (दिल्ली) ने मन्दिर का शिलान्यास किया। प्रतिष्ठा का समय निकट आ गया। मुझे मिस्त्री मजदूर नहीं मिल पा रहे थे।

उस समय माताजी का शुभाशीर्वाद लेकर मैं माघ मास की रात्रियों में भयंकर ठण्डी में रजाई ओढ़कर आकर यहाँ खुले खेतों में बैठ जाता था और रात्रि में मिस्त्री मजदूरों से काम कराता था। मात्र १०-१२ दिनों में ही यह वीरप्रभु का छोटा सा मन्दिर (गर्भ-आकार) बनकर तैयार हो गया।

माताजी से परामर्श करके बाबू सुकुमार चन्द जी ने सोलापुर के पंडित वर्द्धमान शास्त्री को प्रतिष्ठाचार्य नियुक्त किया। प्रतिष्ठा की तैयारियां जोरों से हो रही थीं।

उधर आचार्यश्री का संघ मेरठ से सरधना पहुंच चुका था।

यन्त्र स्थापना

यहाँ बाहुबली मन्दिर में जब विशालकाय प्रतिमा को खड़ी कर रहे थे। उस समय बाबू सुकुमार चन्द की प्रार्थना से

माताजी ने अपने कर-कमलो से उस वेदी में मूर्ति के स्थिर होते समय अचल यन्त्र की स्थापना की थी। ऐसे ही जल-मन्दिर के महावीर स्वामी की मूर्ति के नीचे भी माताजी ने ही यन्त्र स्थापित किया था।

बसन्त-पचमी के शुभ अवसर पर अब यहाँ उपाध्याय मुनि विद्यानन्द जी आ चुके थे और बाबू सुकुमार चन्द आदि के विशेष अनुरोध से आचार्य सघ भी आ गया था।

यहाँ जम्बूद्वीप स्थल पर जब वीरप्रभु की मूर्ति खडी हो रही थी। उस दिन ११ बजे से लेकर आचार्यश्री अपने सघ सहित पाटे पर बैठे हुये थे और मुनि श्री विद्यानन्द जी भी महान् धर्मप्रेम से यहीं पर बैठे रहे थे। इस प्रतिमा जी के स्थिर होते क्षण ही उसके नीचे स्वय आचार्यश्री ने अपने कर-कमलो से अचलयन्त्र को स्थापित किया था।

यन्त्र महात्म्य

पचकल्याणक प्रतिष्ठा के लिये विशाल पडाल बनाया जा रहा था और वह आधी, तूफान से तीन बार उखड चुका था। सुकुमारचद जी, माताजी से बोली—'प्रतिष्ठा कैसे होगी।"

माताजी ने कहा—

"आप एक घण्टे बाद आवें, मैं एक यन्त्र भर्जपत्र पर बना हुआ दूंगी, उसे ले जाकर पडाल मे भगवान् के सिहासन के नीचे रख देवें प्रतिष्ठा होने तक कोई भी उसको नही खोलेगा। प्रतिष्ठा निर्विघ्न समाप्त होगी आप चिता न करे।'

एक घन्टे बाद सुकुमारचद ने आकर माताजी से वह यन्त्र लेकर भगवान् के सिहासन के नीचे रखा दिया। उस यन्त्र का

ऐसा अद्भुत चमत्कार हुआ कि उस क्षण से लेकर प्रतिष्ठा होने तक आँधी और वर्षा का नाम भी नहीं आया। प्रतिष्ठा के अनन्तर वह यन्त्र माताजी के एक भक्त अपने साथ ले गये थे।

सूरिमन्त्र आचार्यश्री द्वारा

इन तीनो विशाल प्रतिमाओ की प्राणप्रतिष्ठा के मन्त्र आचार्यश्री ने उन पर लिखे हैं तथा सूरिमन्त्र भी आचार्यश्री ने दिया है। यही कारण है कि इन प्रतिमाओ में सातिशयता आ गई है। इस जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित वीर प्रभु की प्रतिमा का तो प्रारम्भ से ही अद्भुत चमत्कार देखने को मिला है। जैसे कि सुमेरु पर्वत के बनने मे जितनी बार लेंटर पडे हैं प्राय बादल घिरे रहे हैं किन्तु लेंटर पडने के कुछ घन्टे बाद ही वर्षा हुई है, पडते समय नही। जिससे वह वर्षा उमृस निर्माण में अत-वर्षा का काम करती रही है और भी अनेक चमत्कार होते रहे हैं।

पचमेरुव्रत

आर्यिकाश्री रत्नमती माताजी गृहस्थाश्रम मे तो मुक्तावली आदि व्रत किये थे। अब पुन दीक्षित जीवन में भी उनके हृदय मे व्रत उपवास की भावना चल रही थी। अत शरीर के अतीव अशक्त होते हुए भी माताजी ने आचार्यश्री से पचमेरु के ८० उपवास करन का व्रत ग्रहण कर लिया था। जिसे वे रुचि से किया करती हैं।

गणधर वलय विधान

मुनिश्री ऋषभसागरजी की प्रेरणा से पहाड़ी धीरज दिल्ली के गिरधारीलाल के सुपुत्र विपिनचद ने जम्बूद्वीप स्थल पर गण-

धर वलय विधानमण्डल का आयोजन किया जिसमे उन्हे पूरे सघ का सांनिध्य प्राप्त हुआ था । इस छोटे से मन्दिर के सामने सुन्दर पडाल बनाया गया था और बहुत ही प्रभावनापूर्ण वातावरण मे यह विधान सम्पन्न हुआ था ।

सघ भक्ति

इस समय यहाँ हस्तिनापुर मे गुरुकुल मे सघ ठहरा हुआ था और सघ के दर्शनो के लिये बगाल, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मेरठ, मवाना, सरधना और दिल्ली आदि के भक्तगण आ रहे थे । आहारदान देने वाले भक्तगण यही ठहरे हुए गुरुओ को आहार देना, उनकी वैयावृत्ति करना, उपदेश सुनना आदि लाभ ले रहे थ ।

समाधिमरण

एक दिन आ० ज्ञानमती माताजी से परामर्श करते हुए मुनिश्री वृषभसागरजी ने कहा—

"माताजी ! मेरी सल्लेखना का समय आ चुका है मेरी इच्छा है कि आपके मार्ग दर्शन मे मेरा समाधिमरण हो । यहाँ क्षेत्र पर तथा आचार्य सघ क सांनिध्य मे मेरा अन्त सुन्दर बन जायेगा । परन्तु चिन्ता है–यहाँ २-४ महीने तक इतने बडे सघ की व्यवस्था कौन करेगा ? और आने वाले दर्शनार्थियो को कौन सम्भालेगा । "

माताजी ने कहा—

'महाराजजी ! आचार्यश्री के पुण्य से सघ की व्यवस्था हो जायेगी । आप चिन्ता न करें । आप अपनी अन्तिम इच्छा को पूर्ण करे । मैं आपकी सल्लेखना यही पर कराऊँगी ।"

माताजी का मनोबल प्रारम्भ से ही बहुत मजबूत है। वे आत्म विश्वास के साथ बड़े से बड़ा भी कार्य हाथ में ले लेती हैं। पुन दृढता से महामन्त्र की जाप्य के बल पर उसे पूर्ण करके ही छोडती हैं। यह बात आप सब पाठको को उनके कार्य-कलापो से ही दिख रही है। इसमे कहने की कोई आवश्यकता ही नही है।

अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार माताजी ने मुझे भी बुलाकर सारी बाते सुना दी। अपनी शिष्याओ से भी परामर्श किया। पुन आचार्यश्री के पास पहुच गई और भक्तिपूर्वक निवेदन किया। मुनिश्री वृषभसागरजी ने भी आचार्यश्री के समक्ष अपने उद्गार व्यक्त किये और पुन. प्रार्थना की कि—

"आप यही पर सघ सहित विराज कर हमारी सल्लेखना बढिया करा दीजिये।"

आचार्यश्री न हँसकर स्वीकृति दे दी और मुनिश्री ने विधि-वत् सल्लेखना ग्रहण कर ली। उस समय यहाँ पर सभी तरफ से भक्तो का ताता लगा हुआ था।

आर्यिका रत्नमती माताजी ने अपने जीवन मे पहली बार ही विधिवत् आदि से अन्त तक यह सल्लेखना देखी है। उन्होने दीक्षा लेकर भगवती आराधना का स्वाध्याय दो तीन बार कर लिया था। अत अब उन्हे मुनि वृषभसागरजी की सारी चर्या देखते समय ग्रन्थ का स्वाध्याय साकार दिख रहा है। वे प्रात काल से लेकर सायकाल तक सघ की प्रत्येक क्रिया मे रुचि से भाग लेती हैं और प्रसन्न होती हैं, कभी-कभी कहती हैं-

'मैंने अपने जीवन मे यह सयम पाया है। इसकी सफलता

अन्तिम सल्लेखना मरण से ही है। इतने विशाल चतुर्विध संघ के सान्निध्य में तीर्थक्षेत्र पर सल्लेखना का योग आना बड़ा ही दुर्लभ है। महाराजजी! आप धन्य हैं जो कि आपको यह सब पुण्य योग मिल रहा है।"

धर्म श्रवण

आर्यिका ज्ञानमती माताजी मध्याह्न मे दो घण्टे मुनिश्री को शास्त्र स्वाध्याय सुनाती थी। उसके मध्य उनका धर्मोपदेश बहुत ही मर्मस्पर्शी होता था। रत्नमती माताजी सुनते-सुनते विभोर हो जाती थी। सघ के मुनिगण भी समय-समय पर तथा अधिकतर रात्रि मे धर्मोपदेश सुनाते रहते थे। अन्य आर्यिकायें भी सतत धर्मचर्चा सुनाती रहती थी। इस धर्ममय वातावरण मे मुनिश्री वृषभसागरजी ने नश्वर शरीर को छोडकर स्वर्ग पद प्राप्त कर लिया। इस प्रकार यहाँ उनकी समाधि बहुत ही उत्तम हुई है। उनकी अन्त्येष्टि के बाद श्रद्धाजलि सभा हुई थी।

आचार्य श्री का आशीर्वाद और विहार

त्रिलोक शोध सस्थान के कार्यकर्ताओ ने माताजी से कुछ दिनो यही हस्तिनापुर रहकर इस रचना के कार्य मे मार्गदर्शन के लिये प्रार्थना की तब माताजी ने महाराजजी के सामने यह समस्या रक्खी कि—

"अब हमें क्या आज्ञा है!"

आचार्यश्री ने कहा—

"मुनि अथवा आर्यिकायें तीर्थक्षेत्र पर अधिक दिनो तक रह सकते हैं, कोई बाधा नहीं है। तुम्हे इस पुनीत धर्म प्रभावना

के कार्य में मार्गदर्शन देना चाहिये। तुम्हारे बिना यह इतना बड़ा कार्य होना सम्भव नहीं है। अतः तुम्हें रहना आवश्यक है।"

पुनः माताजी ने पूछा—

"महाराज जी! इस सुमेरु पर्वत का शिलान्यास होकर निर्माण कार्य प्रारम्भ नहीं हुआ था। निर्वाण महोत्सव और प्रतिष्ठा आदि के निमित्त से इस निर्माण कार्य में व्यवधान रहा है। अब इस कार्य को कब शुरु कराया जाय।"

आचार्यश्री ने कहा—

"अभी आने वाला अक्षय तृतीया दिवस सर्वोत्तमदिवस है। उसी दिन से कार्य शुरु करा दीजिये।"

अनन्तर बड़े मन्दिर के पीछे हॉल में आचार्यश्री ने सभा के मध्य माताजी को चातुर्मास यहीं करने की आज्ञा देकर इस रचना के लिये तथा माताजी के लिये भी बार-बार आशीर्वाद देकर आचार्यश्री ने अपने संघ सहित यहाँ से विहार कर दिया।

चातुर्मास स्थापना

आस-पास के कई एक गाँवों में धर्म प्रभावना करता हुआ आचार्य महाराज का संघ तो सहारनपुर पहुंच गया। वहीं पर आचार्यश्री के संघ का वर्षायोग हुआ। वहाँ से, संघ से विहार कर मुनि श्री सुपार्श्वसागर जी महाराज अनेक मुनि-आर्यिकाओं के साथ मुजफ्फरनगर आ गये। यहीं पर वर्षायोग स्थापित कर लिया। पूज्य माताजी ने आर्यिका रत्नमतीजी और शिवमतीजी सहित यहीं हस्तिनापुर क्षेत्र पर वर्षायोग ग्रहण कर लिया।

क्षेत्र पर स्वाध्याय विधान प्रभावना

जब से माताजी यहाँ पर आई थी। यहाँ के मुमुक्षु आश्रम के अधिष्ठाता प० हुकुमचन्दजी (सलावा वाले) की प्रार्थना से माताजी प्रात काल का स्वाध्याय बडे हॉल मे ही चलाती थी। उसमे प्रवचनसार पढती थी और सस्कृत की दोनो टीकाओ का सुन्दर विवेचन करती थी। मध्याह्न मे भी धवला प्रथम पुस्तक, गोम्मटसार आदि कई ग्रन्थो का स्वाध्याय प्राय सामूहिक सभा मे ही चलता था। जिससे यहाँ के व्रती जनो को, ब्रह्मचारिणी सुशीलाबाई को, बाबू महेशचन्दजी को, सभी को बहुत ही आनन्द आ रहा था।

भाद्रपद के दशलक्षण पर्व मे बाबू सुकुमारजी ने माताजी के सान्निध्य मे बडा ऋषिमण्डल विधान किया। वे प्रात ६ बजे से ही पूजन मे लग जाते थे। पुन टिकैतनगर से भाई सुभाषचन्दजी आये। उन्होने भी इस विधान मे रुचि से भाग लिया। सुकुमारचन्द जी उनसे विशेष प्रभावित रहे।

"यदि मैं मन भर भी घी पी जाऊ तो इतना आनन्द नही आयेगा कि जितना आनन्द दिन भर माताजी की अमृत वाणी से आता है।"

आर्यिका रत्नमती माताजी भी दिन भर की धर्मामृत वर्षा से बहुत ही सतुष्ट रहती थी। वे सोचा करती थी—

"मुझे इस वृद्धावस्था मे जिन वचनामृत को सुनने का अच्छा अवसर मिला है। मैंने पूर्वजन्म मे बहुत ही पुण्य सचित किया होगा कि जिससे यह प्रतिक्षण ज्ञानाराधना चारित्राराधना हो रही है। क्योकि थोडे पुण्य मे इस युग मे यह सामग्री भला कैसे

मिल सकती है ?"

इस प्रकार यहाँ क्षेत्र पर खूब ही प्रभावना हो रही थी। इसी मध्य मुनिश्री सुपार्श्वसागरजी का माताजी पास समाचार आया कि—

"मैं इस चातुर्मास मे सल्लेखना ले रहा हू। आप सघ की अधिक दिनो की दीक्षित अनुभवी आर्यिका हैं। आपने कई एक समाधि कराई भी हैं। अत मैं आपसे बहुत कुछ परामर्श करना चाहता हू और सल्लेखना मे आपका सहयोग चाहता हू।"

इस समाचार को प्राप्त कर माताजी ने रत्नमती माताजी से परामर्श कर यह निर्णय किया कि—

'हमे सघ सहित मुजफ्फर नगर चलना चाहिये। शास्त्र मे आज्ञा है कि सल्लेखना कराने के लिये अथवा उनके दर्शन के लिये साधु-साध्वी चातुर्मास मे भी ९६ मील तक जा सकते है पुन यह मुजफ्फर नगर तो यहाँ से ३२ बत्तीस मील ही दूर है।"

ऐसा निर्णय कर माताजी असोज मे ही विहार कर मुजफ्फर नगर पहुच गईं। वहाँ वयोवृद्ध, तपस्वी सुपार्श्वसागर महाराज जी के दर्शन कर मन प्रसन्न हुआ। महाराज जी भी बहुत ही प्रमुदित हुये और समय–समय पर माताजी से विशेष परामर्श करते रहे।

रत्नमती माताजी का सघ प्रेम

रत्नमती माताजी को तो सघ मे रहना बहुत ही अच्छा लगता था। वे सभी मुनि-आर्यिकाओ के मध्य बैठकर अपने कर्म-

और शरीर से भी बहुत सा काम ले लेती थी। उनका मनोबल बढ़ जाता था और प्रत्येक चर्या मे उत्साह द्विगुणित हो जाया करता था। यहाँ प्रेमपुरी तक दूर-दूर तक चौकों में आहार को चली जाती थी और गृहस्थ के घर मे ठण्डा अथवा गर्म, रूखा अथवा चिकना जैसा भी हो, प्रकृति के अनुकूल हुआ तो ठीक अन्यथा जो भी मिले आहार लेकर आ जाती थी फिर भी स्वस्थ थीं। क्योंकि उस समय उनका स्वास्थ्य अच्छा था और फिर दूसरी बात यह है कि—

मन की प्रसन्नता भी स्वस्थता के लिये बहुत बडा साधन है।

चारित्रशुद्धि साधन

सुपार्श्वसागरजी ने चारित्रशुद्धि व्रत पूर्ण कर लिये थे। उसके उपलक्ष्य मे चारित्रशुद्धि विधान का आयोजन किया गया। त्रिशला, माधुरी ने माडने पर एक बहुत बडा सुन्दर कमल बनाया उसमें १२३४ फूल बना दिये। यह मडल माताजी के मार्ग-दर्शन में बना था और उन्ही के मार्ग दर्शन में विधिवत् कराया गया था। इस कमलाकार मन्डल को देखने के लिये वहाँ आस-पास के श्रावको का ताता लग गया था। सारा विधि-विधान मैंने करवाया था।

रत्नमती माताजी मुजफ्फरनगर में

मुनिश्री ने अन्नादि का त्याग कर दिया था। सल्लेखना विधिवत् चल रही थी। अत अभी देरी होने से माताजी आ० शिवमती माताजी को साथ लेकर दीपावली के पूर्व हस्तिनापुर वापस आ गईं। किन्तु रत्नमती माताजी को पूरी सल्लेखना

देखने की इच्छा होने से माताजी से स्वीकृति लेकर वे वहीं संघ मे रुक गईं। चूंकि रत्नमती माताजी को संघ से बहुत ही वात्सल्य था, अत वे अभी कुछ दिन और संघ मे रहना चाहती थीं। दीपावली के बाद आचार्य संघ भी वहीं पर आ गया था। महाराज सुपार्श्वसागरजी की सल्लेखना चल रही थी। वे क्रम-क्रम से वस्तुओं का त्याग कर रहे थे। इसी मध्य एक दिन अकस्मात् संघस्थ वयोवृद्ध मुनि बोधिसागरजी को कुछ घबराहट सी हुई। साधुओ ने णमोकार मन्त्र सुनाना शुरू किया और उनकी समाधि हो गई। अनन्तर फाल्गुन वदी अमावस्या को मुनि श्री सुपार्श्वसागरजी ने चतुर्विध संघ के सान्निध्य मे अपने इस भौतिक शरीर को छोड दिया और स्वर्ग मे वैक्रियिक शरीर प्राप्त कर लिया।

आचार्यश्री द्वारा दीक्षा

वहाँ आचार्यश्री के करकमलो से दक्षिण प्रान्त सदलगा के मलप्पा श्रावक की मुनि दीक्षा हुई। उनकी पत्नी और दो पुत्रियो की आर्यिका दीक्षा हुई। कु० सुधा जो कि १६ वर्षीया थी उसकी आर्यिका दीक्षा हुई। और लाडनूं के मुनिभक्त श्रावक शिवचरणजी की क्षुल्लक दीक्षा हुई थी। इनके नाम से मुनि मल्लिसागर, समयमती, प्रवचनमती, नियममती, सुरत्नमती और क्षुल्लक का नाम सिद्धसागर रखा गया था।

इन दीक्षाओ को देखकर आर्यिका रत्नमतीजी सोचने लगी—

"ऐसी ही एक दिन मेरी पुत्री मैना ने दीक्षा ली थी। उस समय तो छोटी उम्र मे कुमारिकाओ के दीक्षा की पद्धति न होने

से कितना बड़ा विरोध हुआ था। सचमुच मे छोटी उम्र मे और कुमारिका मे दीक्षा का मार्ग मेरी मैना ने ही खुला कर दिया है।

इसके बाद आचार्यश्री से आज्ञा लेकर रत्नमती माताजी हस्तिनापुर माताजी क पास आ गई थीं, क्योकि अब सघ मे रह-कर मनन विहार करना उनके वश का नहीं था। दिन पर दिन उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था।

आर्यिका सघ का विहार

एक दिन माताजी ने आ० रत्नमती से विचार-विमर्श करके मुजफ्फरनगर के भक्तो के आग्रह से हस्तिनापुर से विहार कर दिया। सघ बहमूमा, मीरापुर होते हुए खतौली नगर मे पहुचा। वहाँ के श्रावको ने सघ का अच्छा स्वागत किया और महावीर जयन्ती निकट होने से आग्रह पूर्वक सघ को रोक लिया। वहाँ महावीर जयन्ती के त्रिदिवसीय कार्यक्रम में माताजी का उपदेश होने से धर्म प्रभावना अच्छी हुई। यहाँ पर समाज मे प्रमुख धनप्रकाशजी, शीतलप्रसादजी आढती- महेशचन्दजी, नरेन्द्रकुमार-जी सर्राफ, इन्द्रसेनजी, महेन्द्रकुमारजी आदि भक्तगण सघ की भक्ति मे आगे रहे। फलस्वरूप यहाँ ग्रीष्मावकाश मे १५ दिन के लिये शिक्षण शिविर लगाया गया। इस प्रान्त मे माताजी के मार्गदर्शन मे यह सन् १६७६ का शिविर बहुत ही सफल रहा। इसमे समाज के अमरचन्द सर्राफ आदि श्रावको ने, मैंने तथा रवीन्द्रकुमार ने भी अच्छा श्रम किया था। प्रमाण पत्र बाँटते समय जब वयोवृद्ध लाला शीतलप्रसादजी आढती जो कि विद्यार्थी बने थे वे शिविर सयोजक अमरचन्द से प्रमाण पत्र लेने

लगे तब सभा मे सभी लोगो ने तालियों की गड़गड़ाहट मे उनका स्वागत किया था । इस शिविर मे केकड़ी राजस्थान और गुजरात आदि से महानुभाव पधारे थे । वृद्ध, बालक, युवक, महिलाये और बालिकायें सभी ने शिविर मे तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला, बालविकास आदि पढकर परीक्षायें उत्तीर्ण की थी ।

इसके बाद माताजी ने खतौली से विहार कर आस-पास के शाहपुर आदि गाँवो मे उपदेश देकर जनता को धर्मामृत का पान कराया था । शाहपुर के जिनेन्द्रकुमार और सेठीमल आदि भक्तो ने सघ की बहुत सेवा की थी ।

चातुर्मास

पुन खतौली के प्रमुख भक्त गणो की विशेष प्रार्थना से माताजी ने सघ सहित अपना चातुर्मास वही पर स्थापित किया था ।

इस चातुर्मास की दैनिक चर्या बहुत ही उत्तम रही है और विशेष उपलब्धि हुई इन्द्रध्वज विधान की ।

प्रतिदिन प्रात माताजी ६ बजे से ७ बजे तक सघस्थ विद्यार्थियो को कातन्त्र व्याकरण पढाती थी । ७ से ८ तक समयसार का स्वाध्याय कराती थी । ८ से ९ तक समाज को धर्मोपदेश सुनाती थी । साढे नौ पर चर्या को निकलती थी । इसके बाद मौन लेकर इन्द्रध्वज विधान लिखती थी । पुन शाम को ६ बजे मौन छोडती थी । तब समाज के स्त्री-पुरुष धर्मशाला मे आ जाते थे और माताजी से कुछ चर्चा करके बहुत ही आनन्द का अनुभव करते थे ।

यदि दिन मे बाहर से कोई यात्री दर्शनार्थ आते थे तब

माताजी उन्हें ५-७ मिनट कुछ वार्तालाप करने का समय दे देती थी। जिसमे वे लोग अपना आना सार्थक समझ लेते थे। इधर मझौल शहर मे आचार्य धर्मसागरजी महाराज का ससंघ चातुर्मास था और मेरठ मे संघस्थ मुनि दयासागर आदि·· मुनि, आर्यिकाओ का संघ ठहरा हुआ था।

यहाँ बाहर से आने वालो मे माणिक चन्द्र भिसीकर कुंभोज (बाहुबली), सीताराम पाटनी कलकत्ता आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय रहे हैं। इस प्रकार यहाँ इन्द्रध्वज विधान की रचना का कार्य चातुर्मास प्रारम्भ मे शुरू करके माताजी ने उसे दीपावली के मंगल दिवस मे पूर्ण कर दिया था। उस दिन उस महाविधान के लिखित कागजो को चोकी पर विराजमान मानकर भक्तो ने उसकी पूजा की थी। आज यह विधान कितना प्रसिद्ध हुआ है यह जैन समाज को विदित ही है।

चातुर्मास के मध्य दशलक्षण पर्व मे श्रावको ने रामलीला मैदान मे बडा पण्डाल बनवाया। प्रतिदिन माताजी ने प्रात ८ से ९ तक धर्म पर प्रवचन किया। जिसमे जैन समाज के अतिरिक्त जैनेतर समाज ने भी भाग लिया और मध्याह्न मे तत्त्वार्थसूत्र का प्रवचन हुआ।

यहाँ पर आर्यिका रत्नमती माताजी मे महिलाएँ बहुत ही प्रभावित रहती थी। उनकी मधुर और मितवाणी सुनने के लिये लालायित हो उनके पास ही आ जाती थी और उनकी सेवा वैयावृत्ति करके पुण्य संचय किया करती थी। रत्नमती माताजी की चर्या बहुत ही सुव्यवस्थित थी। स्वाध्याय, उपदेश, प्रतिक्रमण आदि कार्यों मे रुचि से भाग लेती थी और मध्याह्न मे प्राय

मन्दिर मे बैठकर जाप्य, स्तोत्र पाठ किया करती थीं। माताजी स्वयं दो घण्टे पाठ करके कई घन्टो तक अनगारधर्मामृत आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय किया करती थी। पढते समय जहाँ कहीं शका होती तब माताजी से समाधान करा लेती थीं। यहाँ की बालिकाओ ने आ० शिवमतीजी से तथा मालती और माधुरी से बाल-विकास, द्रव्यसग्रह, पद्मावली, तत्त्वार्थसूत्र आदि का अध्ययन किया तथा अनेक बालिकाओ को माधुरी ने पूजा-विधि सिखा कर प्रत्येक रविवार को पूजन कराना शुरू कर दिया था।

रोहिणी व्रत आदि

यहाँ पर बहुत सी महिलायें सन्तोषी माता आदि मिथ्यात्व के व्रत कर रही थी। रत्नमती माताजी ने उन्हे सम्बोधित कर मिथ्यात्व का त्याग कराया। उन्हें रोहिणी व्रत, णमोकार मन्त्र व्रत, जिनगुणसम्पत्ति आदि व्रत लेने की प्रेरणा देकर माता जी से ये आगम सम्मत व्रत दिलवाया करती थी। इस प्रकार रत्नमती माताजी महिलाओ का मिथ्यात्व छुड़ाया करती थी तथा बालको को मद्य, मास, मधु का त्याग कराकर देवदर्शन की प्रेरणा दिया करती थी। इनकी प्रेरणा से यहाँ पर ५० से भी अधिक महिलाओ और बालिकाओ ने रोहिणी आदि व्रत ग्रहण किये थे।

यहाँ का चातुर्मास पूर्ण कर माताजी ने अपने सघ सहित वहाँ से विहार कर दिया। उस समय स्त्री–पुरुष और बालक-बालिकाओ के नेत्र अश्रु से पूरित हो रहे थे। भाव न होते हुये भी भक्तो ने सघ का विहार करवाया था। माताजी यहाँ हस्तिनापुर आ गईं।

सुमेरुपर्वत निर्माण कार्य प्रगति पर

मुजफ्फरनगर, दिल्ली आदि के इंजीनियर आर्चिटेक्ट इस सुमेरु पर्वत के निर्माण कार्य को करा रहे थे। इसमे नीचे टनो लोहा डाला गया था। नीचे तलघर भी बनाया गया है। अब यह पर्वत १६ फुट लगभग ऊपर बन गया—नन्दनवन तक ऊपर दिखने लगा था। आगे इसके निर्माण मे इन्जीनियर लोग ऊहा-पोह मे पड़े हुये थे कि एक श्रावक ने माताजी से कहा—

"माताजी! आर सी सी के बहुत बड़े विशेषज्ञ अपने भारत मे डा० ओ० पी० जैन रुड़की विश्वविद्यालय मे हेड आफ सिविल डिपार्टमेण्ट हैं। माताजी ने मुझे उनके पास भेजा। मैं नक्शा लेकर गया था। उन्होने मुझे समय दिया। बातचीत की। पुन खतौली आकर माताजी के दर्शन कर बहुत कुछ परामर्श किया। इसके बाद उन्होने हस्तिनापुर आकर बनते हुये सुमेरु पर्वत को भी देखा। उन्होने अपने ढग से नक्शा बनवाया और बहुत ही रुचि ली। जिससे इस सुमेरु का कार्य बहुत ही प्रगति से चलने लगा।

हस्तिनापुर में इन्द्रध्वज विधान

माताजी ने जो विधान बनाया था उसकी टाइप कापी कराई गयी और यहाँ हस्तिनापुर मे सन् १६७७ मे फाल्गुन अष्टाह्निका में दिल्ली के विपिनचन्द जैन, उग्रसेन जैन ने इन्द्र-इन्द्राणी बन कर यह विधान करना प्रारम्भ कर दिया। उस अवसर पर जिन की प्रेरणा से यह विधान रचा गया था वे मदनलालजी चाँदवाड, रामगज मन्डी भी सपत्नीक आ गये। विधान मे इतना आनन्द आया कि जो अकथनीय है। विधान के समापन पर श्री भगवान्

महावीर स्वामी का १००८ कलशो से महाभिषेक किया गया था। यहा हस्तिनापुर के इतिहास में सर्वप्रथम इन्द्रध्वज विधान का आयोजन अपने आप मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा।

अनन्तर पुस्तक छपने के बाद तो जगह-जगह इस विधान की धूम मच गयी है। दिल्ली मे माताजी के सान्निध्य में यह विधान १६ बार हो चुका है। और यहाँ भी ७–८ बार हो चुका है। जो भी इस विधान को करते हैं, पढ़ते हैं, वे यही लिखते हैं कि ऐसा सुन्दर विधान आज तक हमने न देखा था, न सुना था और न इससे बढ़िया विधान और कोई देखने को मिलेगा ही। माताजी ने इसमे ४० से अधिक छन्दो का प्रयोग किया है। इसकी भाषा बहुत ही सरल और बहुत ही मधुर है। इसमे तिलोयपण्णत्ति आदि आगम का सार भरा हुआ है। कोई कैसा ही क्यो न हो, विधान पढते समय उसको आनन्द आता ही आता है और इस विधान का फल भी तात्कालिक देखा जा रहा है। जिन्होंने भी विधिवत् इस इन्द्रध्वज विधान को किया है उन्हे इच्छित फल की प्राप्ति अवश्य हुई है।

हस्तिनापुर मे चातुर्मास

सन् १६७७ मे सस्थान के कार्यकर्ताओ की प्रार्थना से माताजी ने अपने सघ का चातुर्मास यही पर स्थापित कर दिया। माताजी प्रात. सामूहिक स्वाध्याय मे मूलाचार चलाती थीं। उसका हिन्दी अनुवाद करना भी प्रारम्भ कर दिया। इस समय माताजी सतत् अपने लेखन कार्य मे लगी रहती थी। सघस्थ बालिकायें पूजन, आहारदान आदि से निवृत्त होकर माताजी के पास मध्याह्न मे घण्टे, दो घण्टे पञ्चसग्रह आदि ग्रन्थो को पढती

थी। आ० रत्नमती माताजी इन सब स्वाध्यायो मे बैठती थी। पुन स्वय भी स्वाध्याय मे और चौबीस ठाणा की चर्चा मे लगी रहती थीं। इस प्रकार चातुर्मास धर्मध्यान पूर्वक चलता रहा था। यहाँ चातुर्मास के प्रारम्भ मे ही श्री सेठ हीरालालजी, रानीवाला जयपुर पधारे और कई दिनो तक रहकर सघ को आहारदान देते हुये माताजी से स्वाध्याय का लाभ लेते रहे। कलकत्ते से श्री चाँदमल जी बडजात्या सपत्नीक आये थे। कई दिनो रहकर आहारदान देते हुये पूजन और स्वाध्याय का लाभ ले रहे थे। समय-समय पर इस जम्बूद्वीप रचना के बारे मे माताजी से चर्चा भी किया करते थे। पुन आपने स्वय कहा—

"मैं इस सुमेरु पर्वत मे कुछ करना चाहता हू।"

तब मैंने कहा—

"इसके १६ चैत्यालय के दातार हो चुके हैं आप चूलिका को ले लीजिये।"

तब उन्होंने उसके १५०००) की स्वीकृति कर दी थी।

माताजी को ज्वर से अस्वस्थता

इस चातुर्मास मे माताजी को एकान्तर मे ज्वर आने लगा था जिससे माताजी बहुत ही कमजोर हो गई थी। फिर भी माताजी अपने आवश्यक क्रियाओ मे लगी रहती थी और लेखन कार्य भी नही छोडती थी।

आ० विमलसागर जी संघ का चातुर्मास टिकैतनगर में

ईसवी सन् १९७७ मे टिकैतनगर मे आ० श्री विमलसागर जी महाराज ने सघ सहित चातुर्मास किया था। उस समय वहाँ पर चतुर्थकाल जैसा दृश्य दिख रहा था। प्रत्येक घर मे श्रावक-

आर्यिकायें पडगाहन करने खडे हो जाते थे। इसके पहले सभी स्त्री-पुरुष मन्दिर जी मे भगवान् का अभिषेक पूजन बड़े उत्साह से करते थे। आचार्यश्री ने कहा—

"यहाँ जैसा धार्मिक दृश्य प्राय मुश्किल से ही अन्यत्र मिलेगा।"

आचार्य श्री की प्रेरणा से भाई कैलाशचन्द ने अपने घर में चैत्यालय स्थापित किया था। भाई प्रकाशचन्द ने तथा सुभाष-चन्द ने भी घर मे चैत्यालय बना लिया था। ये तीनो भाई नित्य ही भगवान् की पूजा करते हैं। समय-समय पर मुनि सघों मे जाकर आहारदान देते हैं। प्रतिवर्ष सम्मेदशिखर की वदना करते हैं और अपनी गाढी कमाई का कुछ अ श धर्म मे अवश्य लगाते रहते हैं। इन पुण्य कार्यों से ये लोग गृहस्थाश्रम का सफल सचालन करते हुये यहाँ सुखी हैं, यशस्वी हैं और आगे के लिये भी पुण्यानुबन्धी पुण्य का सचय कर रहे हैं।

सुमेरु की जिनप्रतिमायें

सुमेरु पर्वत का निर्माणकाल चल रहा था। इसमे भद्रसाल, नन्दन, सौमनस और पाडुक ये चार वन है। प्रत्येक मे चार-चार चैत्यालय होने से इस पर्वत मे सोलह चैत्यालय हैं। इनमे जो जिनबिम्ब विराजमान करने थे, माताजी की आज्ञा से शुभमुहूर्त मे जयपुर जाकर मैंने और रवीन्द्रकुमार ने मिलकर इन प्रतिमाओ के लिये आर्डर दिया। वह कार्य भी प्रगति से चल रहा था।

प्रशिक्षण शिविर की रूपरेखा

सन् १९७८, १४ मई से १८ मई तक मे भिण्डर (राज०) में पचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर मैं और रवीन्द्र कुमार जी

गये हुये थे। वहाँ आ० धर्मसागर-जी का विशाल संघ विद्यमान था। वहीं पर सिद्धांत संरक्षिणी सभा की मीटिंग में एक शिविर आयोजन की चर्चा चल रही थी। श्रावकों ने मेरे से निवेदन किया—

"पूज्य माताजी के निर्देशन में हमलोग एक प्रशिक्षण शिविर करना चाहते हैं।"

मैंने कहा—

"आप लोग चलकर माताजी से प्रार्थना करें, स्वीकृति अवश्य मिलेगी।"

शिविर संयोजक श्री त्रिलोकचन्द जी कोठारी और सभा के महामन्त्री श्री गणेशीलाल जी, रानीवाला (कोटा) ये दोनो महानुभाव यहाँ माताजी के सान्निध्य में आये और प्रार्थना की—

"माताजी! हम लोग सिद्धांत संरक्षिणी सभा के माध्यम से आपके मार्ग दर्शन में यहाँ आपके सान्निध्य में ही विद्वानों का एक प्रशिक्षण शिविर करना चाहते हैं।

माताजी ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। तब माताजी के मार्ग-दर्शन में यहीं बैठकर इन दोनों ने शिविर की रूपरेखा बनाई। दशहरा की छुट्टियों में करने का निर्णय लिया और पुन. माताजी से बोले—

"माताजी! आप कोई एक ऐसी पुस्तक तैयार कर दीजिये जो कि आगत सभी विद्वानों के लिये मार्गदर्शक होवे।"

माताजी ने उनकी यह प्रार्थना भी स्वीकार कर ली। तब ये लोग माताजी का शुभाशीर्वाद लेकर कोटा चले गये।

हस्तिनापुर चातुर्मास

संस्थान के कार्यकर्ताओं ने पुनः आग्रह किया कि—

"माताजी! इस सुमेरु पर्वत का निर्माण पूर्ण होने तक हम लोग और इन्जीनियर लोग भी आपका मार्ग-दर्शन चाहते हैं। अतएव यह सन् ७८ का चातुर्मास भी आप यहीं सम्पन्न करें।"

यहाँ माताजी का लेखन कार्य, स्वाध्याय और धर्मध्याय भी शहरों की अपेक्षा विशेष ही था, इसलिये माताजी ने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

प्रवचन निर्देशिका

माताजी पुस्तक लिख रही थीं। ज्वर आना शुरू हो गया। जब ज्वर उतर जाता, माताजी उठकर लिखने बैठ जातीं और जिस दिन ज्वर नहीं आता, उस दिन प्रायः दिन भर ही लिखती रहती थीं। अपने पास मे ६०–७० ग्रन्थ निकलवा कर रख लिये थे। उनके पन्ने पलटकर श्लोक ढूंढती और लिखती रहतीं। इनका इतना श्रम रत्नमती माताजी देखतीं तो उनसे नहीं रहा जाता वे कहतीं—

"एकान्तर बुखार आ रहा है। आहार छूटता जा रहा है। इतनी कमजोरी बढ रही है और उस पर इतने ग्रन्थों को देखना और इतनी मेहनत करना किसके लिये। थोड़ा शांति रखो, ज्वर चला जाने के बाद लिखना।"

किन्तु माताजी ने देखा—

श्रावण का महीना समाप्त हो रहा है पुस्तक पूरी करके रवीन्द्र को देना है। वे १५–२० दिनों से कम में कैसे मुद्रण करायेंगे। चूंकि आसोज में पुस्तक चाहिये।

इसलिये माताजी रत्नमती जी की बातो को सुनी, अनसुनी कर देती और स्वय लिखने मे लगी रहती थी। उन्होने पर्यूषण पर्व से पूर्व यह पुस्तक तैयार कर रवीन्द्र को दे दी। पर्व के मध्य भी मेरठ जाने-आने का श्रम करके रवीन्द्र कुमार ने समय पर यह प्रवचन निर्देशिका पुस्तक छपवाकर तैयार कर दी थी।

प्रशिक्षण शिविर

आर्ष परम्परा के अनुयायी दि० जैन समाज मे यह पहला प्रशिक्षण शिविर था जो कि पूज्य माताजी के दिशा निर्देश मे हो रहा था।

इस शिविर के कुलपति प० श्री मोतीलाल जी कोठारी फल्टन वाले थे। प्रशिक्षण देने के लिये प० हेमचन्द जी आदि पधारे थे। मध्य मे प० मक्खनलालजी शास्त्री मोरेना पधारे थे। इस शिविर मे बहुत ही सुन्दर व्यवस्था थी। शताधिक विद्वानो ने, ५० से अधिक श्रेष्ठी जनो ने तथा अनेक प्रबुद्ध महिलाओ ने प्रशिक्षण ग्रहण किया था। यह शिविर यहाँ हस्तिनापुर मे श्वेताम्बर के बाल आश्रम मे किया गया था।

विद्यापीठ के प्राचार्य

इस शिविर मे प्रशिक्षण हेतु पधारे श्री गणेशीलाल जी साहित्याचार्य आगरा वालो से उसी मध्य मे माताजी ने एक दिन सस्कृत मे वार्तालाप किया। माताजी प्रसन्न हुयी और मेरे से बोलीं—

"मोतीचद ! इन गणेशीलाल विद्वान से तुम बात-चीत कर लो। देखो इसी वर्ष हमे विद्यापीठ को चालू कर देना है अतः इन्हे प्राचार्य पद पर नियुक्त करना ठीक रहेगा।"

माताजी की आज्ञानुसार मैंने इन विद्वान् से बात-चीत करके तथा गणेशीलाल जी रानीवाला से परामर्श करके निर्णय कर दिया कि—

"आप यहाँ हस्तिनापुर आइये, हम अगले वर्ष से ही यहाँ आचार्य वीरसागर सस्कृत विद्यापीठ की स्थापना करेंगे। आपको उसका प्राचार्य पद सम्भालना होगा।"

ये विद्वान श्री गणशीलाल जी तबसे लेकर आज तक यहाँ रहकर इस विद्यापीठ को सुचारु रूप से चला रहे हैं।

जम्बूद्वीप की प्रगति और प्रतिष्ठा हेतु विचार

इस शिविर मे निर्मलकुमार जी सेठी, मदनलाल जी चाँदवाड, त्रिलोकचन्द जी कोठारी, गणेशीलाल जी रानीवाला आदि ने माताजी से जम्बूद्वीप की प्रगति पर बहुत विचार-विमर्श किया। इस मध्य प० बाबूलाल जी ने कहा कि—

"हमे इसी वर्ष सन् १६७६ मे ही सुमेरु की प्रतिष्ठा करानी है। बस हमे माताजी का शुभाशीर्वाद चाहिये।"

माताजी ने कुछ सोचकर आत्मविश्वास के साथ निर्णय दिया कि—

"सुमेरु पर्वत के जिनबिम्ब की पचकल्याणक प्रतिष्ठा आगे आने वाले सन् १६७६ मे ही होगी।"

इसके बाद दिल्ली के कार्यकर्तागण और निर्मलकुमार जी सेठी आदि प्रमुख लोगो ने माताजी से निवेदन किया कि—

"माताजी ! अब यहाँ पर सुमेरु पर्वत बन चुका है। इसमे कुछ ही पत्थर लगना शेष रहा है। अब आप कुछ दिनो के लिये दिल्ली की ओर विहार करें।"

माताजी ने कहा—

"चातुर्मास समाप्ति के बाद विचार करूंगी।"

यह शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ। कुछ दिनो बाद चातुर्मास पूर्ण कर पूज्य ज्ञानमती माताजी ने रत्नमती जी से विचार-विमर्श करके दिल्ली की ओर विहार कर दिया।

[२५]

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा निर्णय

माताजी सघ सहित दिल्ली पहुच गईं। राजेन्द्र प्रसाद (कम्मोजी) आदि महानुभावो ने शहर मे ही सघ को ठहराया। सस्थान की मीटिंग यहीं पर हुई जिसमे यह निर्णय लिया गया कि—

सुमेरु पर्वत के १६ जिन चैत्यालयो के जिनबिम्बो की प्रतिष्ठा आने वाले ७९ के अप्रैल, मई तक हो जानी चाहिये और प्रतिष्ठा समिति का गठन कर दिया गया।

सघ कुछ दिन धर्मप्रभावना के वातावरण मे कूचासेठ में ही रहा, अनन्तर भक्तो के आग्रह से दरियागज बाल आश्रम मे आ गया। यहाँ पर माताजी के सान्निध्य मे प्रतिष्ठा सम्बन्धी कई एक मीटिंगें हुईं और प्रतिष्ठा मे बहुत कुछ विशेषता लाने के लिये जोरदार तैयारियाँ शुरू हो गई। प्रतिदिन उपदेश और धर्म चर्चा से श्रावको ने माताजी से बहुत कुछ लाभ लिया।

तीनलोक मण्डल विधान

फाल्गुन मास मे कैलाशनगर के श्रावको ने माताजी के सान्निध्य मे तीनलोक मण्डल विधान करना चाहा सो प्रार्थना कर माताजी को कैलाशनगर ले गये। वहाँ बहुत ही प्रभावना

पूर्वक विधान हुआ। पुनः माताजी वापस दरियागंज को आ गईं।

वैशाख सुदी तीज—अक्षय तृतीया से प्रतिष्ठा होना निश्चित होने ही कुंकुम पत्रिका छप गई। तब संस्थान के कार्यकर्ताओं ने चैत्र सु० १ को पूज्य माताजी का विहार हस्तिनापुर की ओर करा दिया।

वसतिका में निवास

माताजी के हस्तिनापुर पहुचने के पहले ही जिनेन्द्र प्रसाद ठेकेदार आदि ने निर्णय करके यहाँ भगवान् महावीर के मन्दिर के पास ही दो वसतिकायें बनवाकर उन पर छप्पर डलवा दिये। हस्तिनापुर पहुचते ही स्वागत पूर्वक माताजी को जम्बूद्वीप स्थल पर वसतिका (झोपडी) मे ठहराया गया। किन्तु प्रतिष्ठा के अवसर पर श्री उम्मेदमल जी पाण्ड्या के आग्रह से माताजी को ऑफिस के पास फ्लैट मे ठहराया गया।

अभूतपूर्व प्रतिष्ठा समारोह

इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य संहितासूरि ब्र० सूरजमल जी थे। उनके पुरुषार्थ कुशल निर्देशन में शुभ मुहूर्त में झण्डारोहण पूर्वक प्रतिष्ठा का कार्य शुरू हो गया। इस प्रतिष्ठा में दो सबसे बडी विशेषतायें थीं। आफिस से लेकर सुमेरु तक लगभग ३५० फुट लम्बी ८४ फुट ऊँची लोहे के पाइप का पैंड बनी थी। भगवान् के जन्म कल्याणक के समय शुद्ध वस्त्र पहनकर हाथ मे अभिषेक के कलश लेकर उस पर चढते हुए इन्द्र-इन्द्राणी गण बहुत ही सुन्दर दिख रहे थे। इस ८४ फुट ऊँचे सुमेरु के पाडुक वन मे बनी हुई अर्धचन्द्राकार पाडुक शिला पर भगवान् का जन्मा-

मिषेक किया गया था। उसी समय हवाई जहाज से पुष्पवर्षा का दृश्य भी बहुत चित्ताकर्षक बन गया था। दूसरी विशेषता थी अन्तिम दिन गजरथ महोत्सव की। इस प्रान्त से पहली बार यह गजरथ का महान् आयोजन किया गया था।

इस सुमेरु पर्वत के जिनबिम्बो की इतनी प्रभावना पूर्ण पच-कल्याणक प्रतिष्ठा को देखकर रत्नमती माताजी को अपार आनन्द हुआ और उन्होने कहा कि—

"मेरा जीवन धन्य हो गया, मैंने ऐसी प्रतिष्ठा अपने जीवन मे कभी भी नही देखी थी यह सब ज्ञानमती माताजी के विशेष पुरुषार्थ का ही फल है।"

आचार्यश्री धर्मसागरजी महराज के आशीर्वाद से और आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के मगल सान्निध्य तथा तपस्या के प्रभाव से यह महान् प्रतिष्ठा पूर्णतया निर्विघ्न सम्पन्न हुई। इस अवसर पर आचार्य सघस्थ पूज्य मुनिश्री श्रेयाससागर जी अपने सघ सहित यहाँ विराजे। इससे प्रतिष्ठा मे चतुर्विध सघ का सान्निध्य बहुत ही मगलकारी हुआ।

प्रतिष्ठा के अवसर पर ही मोरीगेट दिल्ली की समाज ने माताजी से दिल्ली चातुर्मास के लिये विशेष आग्रह किया। यद्यपि इस समय गर्मी के अवसर पर पूज्य रत्नमती माताजी का स्वास्थ्य इधर उधर विहार के अनुकूल नही था फिर भी उनकी इच्छा न होते हुये भी समाज के आग्रह और माताजी की इच्छा से उन्होने सघ के साथ दिल्ली की ओर विहार कर दिया।

दिल्ली चातुर्मास

भगवान की कृपा से सघ सकुशल आषाढ़ सु० ५ को मोरी गेट (दिल्ली) पहुच गया और वहाँ के समाज ने सघ का भव्य

स्वागत किया । विशेष प्रभावना के साथ आषाढ़ सु० १४ की रात्रि मे माताजी ने सघ सहित वहाँ मन्दिर मे चातुर्मास स्थापित कर लिया । यहाँ समाज के स्त्री पुरुषों ने बहुत ही भक्ति भाव से सघ की सेवा की ।

दिल्ली में प्रथम बार इन्द्रध्वज विधान

मोरीगेट की समाज ने भाद्रपद मे पर्यूषण पर्व के अवसर पर पूज्य माताजी के सान्निध्य मे इन्द्रध्वज मण्डल विधान का आयोजन किया । इस विधान मे मन्डल पर मन्दिरो की स्थापना करके ध्वजायें चढ़ाई जाती हैं । इस विधान को देखने के लिये दिल्ली से हर स्थान से बहुत से श्रावक श्राविकायें आये थे । इसका प्रभाव दिल्ली मे बहुत ही फैला और हर किसी के मन मे इन्द्रध्वज विधान कराने की उत्कण्ठा जाग्रत हो गई । यहाँ के चातुर्मास मे तथा प्रत्येक धार्मिक कार्यो में महिलाओ मे श्रीमती शातिबाई, किरणबाई आदि आगे रहती थी । पुरुषो मे श्री रमेशचन्द जैन पी एस मोटर्स प्रत्येक रविवार को सपरिवार मन्दिर आकर पूजन करते हैं । वे भी माताजी के चातुर्मास मे विशेषतया सहयोगी रहे है । इनके सिवाय श्री उम्मेदमल जी पाडया, श्रीपाल जी मोटर वाले, श्रीचन्द्रजी चावल वाले, बाबूराम जी, शातिस्वरूपजी आदि पुरुषो ने बहुत रूचि से विधान मे भाग लिया था । युवको मे नरेन्द्र कुमार, जे एम जैना, कमलकुमार आदि ने बहुत ही धर्म लाभ लिया था ।

यहाँ भाद्रपद में महिलायें रत्नमती माताजी के सान्निध्य मे मध्याह्न २-३ घन्टे शास्त्र सभा करती थी । जिसमे उन्हे माताजी का विशेष मार्गदर्शन तथा आशीर्वाद मिल जाता था ।

शिक्षण प्रशिक्षण शिविर

इस चातुर्मास मे भी अक्टूबर मे प्रशिक्षण शिविर का विशेष कार्यक्रम रक्खा गया। रमेशचद जैन (पी एस) के आग्रह से यह शिविर दरियागंज आश्रम मे किया गया चूँकि वहाँ जगह पर्याप्त थी। इस शिविर के कुलपति प० मोतीलाल जी कोठारी थे। इस शिविर मे आगत विद्वानों ने, श्रीमानो ने तथा दरियागज के प्रबुद्ध श्रावक-श्राविकाओ ने और भी दिल्ली के हर स्थान के श्रावको ने बहुत ही अच्छा लाभ लिया था। इन दिल्लीवासियो के लिये यह एक पहला शिविर था। अत यह बहुत ही उत्साहपूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुआ था। इसमे प० बाबूलाल जी जमादार का सचालन विद्वानो को बहुत ही अच्छा लगा था।

रत्नमती माताजी इन विद्वानो के सम्मेलन को देखकर गद्‌गद् हो गई और समाज के उत्साह की बहुत ही सराहना की तथा उन्हें बहुत-बहुत आशीर्वाद प्रदान किया।

पुनः इन्द्रध्वज विधान

पुन डिप्टीगज की महिला रतनमाला ने बडे ही उत्साह से अपने यहाँ धर्मशाला मे पूज्या माताजी के सघ को ले जाकर विशालरूप मे इन्द्रध्वज विधान कराया। इस विधान मे प० गुलाबचद जी पुष्प (टीकमगढ) आये थे। इसमे लगभग १०० स्त्री, पुरुषो ने पूजन मे भाग लिया था। यह विधान भी इतिहास मे अमर रहेगा।

सर्वत्र धर्म प्रभावना करते हुये सघ वापस मोरीगेट आ गया। यहाँ पर दीपावली के दिन माताजी ने चातुर्मास समापन किया। इसी मध्य श्री रमेशचन्द जैन (पी एस) ने सपरिवार

पंचपरमेष्ठी मण्डल विधान का आयोजन किया। जिसमें उन्होंने तीन दिन तक बड़े ही आनन्द के साथ धर्माराधना की।

पुनरपि इन्द्रध्वज विधान

चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर वहाँ पर राजेन्द्र प्रसाद जी पहुंचे और उन्होंने प्रार्थना की कि—

"माताजी! मैं आपके सान्निध्य में दरियागंज बाल आश्रम के मन्दिर में इन्द्रध्वज विधान कराना चाहता हूं आप स्वीकृति दीजिये।"

उनके भक्तिभाव को देखकर माताजी संघ सहित पुनः दरियागंज आ गईं। यहाँ का विधान भी बहुत ही सुन्दर ढंग से हुआ। इस विधान में राजेन्द्रप्रसादजी गोटे वालों ने गोले को छीलकर उस पर केशर चढ़ाकर उसमें गोटे की तिलगी लगाकर चढ़ाये तथा मन्दिरों की स्थापना कर ध्वजा तो चढ़ा ही रहे थे। यह विधान मण्डल देखते ही बनता था। इसका टेलीविजन पर भी दृश्य दिखाया गया था।

ध्यान साधना शिविर

ग्रीन पार्क के श्रावक माताजी के पास श्रीफल चढ़ाकर प्रार्थना करने लगे—

"माताजी! आप संघ सहित ग्रीनपार्क पधारकर हम सभी को धर्मलाभ का अवसर देवें।"

रत्नमती माताजी की इच्छा से माताजी ने ग्रीनपार्क विहार कर दिया। यहाँ पर ध्यान साधना शिविर का आयोजन हुआ। इसमें माताजी ने "ह्रीं" बीजाक्षर का ध्यान करना सिखाया। इस "ह्रीं" में पाँच वर्ण हैं और उनमें चौबीस तीर्थंकर विराज-

मान हैं। इस तरह यह ध्यान शिविर १५ दिनों तक चलता रहा। प्रकाशचन्दजी जौहरी, डा० कैलाशचन्द, पन्नालालजी गगवाल आदि पुरुषों ने तो आगे होकर माताजी के उपदेश में और शिविर में लाभ लिया ही, यहीं पर श्री निर्मल कुमारजी सेठी जो कि अपने पिता श्री हरकचन्दजी का इलाज करा रहे थे उन्होंने भी प्रतिदिन आकर संघ की भक्ति की और हर एक धर्म कार्यों में भाग लिया।

इस ध्यान शिविर मे रत्नमती माताजी को बहुत ही आनन्द आया। यहाँ पर साहू अशोक कुमार जैन भी कई बार माताजी के दर्शनार्थ आये तथा उनकी धर्मपत्नी इन्दु जैन भी एक दो बार आईं उन्होंने माताजी से ध्यान के बारे में बहुत सी चर्चायें की।

यहाँ पर प्रतिदिन प्रात द्रव्यसंग्रह की कक्षा चलती थी। पुन माताजी का प्रवचन होता था। मध्याह्न मे भी सामायिक विधि का अध्ययन कराया गया था।

विधान का चमत्कार

यहाँ पर अनेक मण्डल विधान सम्पन्न हुये। उसमे श्री निर्मल कुमारजी ने महामन्त्र का अखण्ड पाठ और पच परमेष्ठी विधान-किया। इस अवसर पर उनके पिताजी हास्पिटल से अकस्मात् वहाँ आ गये। इन्होंने छह महीने से मन्दिर के दर्शन न किये थे। यहाँ आकर घन्टे भर बैठे, अर्घ्य चढाये, पुन माताजी का आशीर्वाद लिया। इसे निर्मलकुमारजी ने माताजी के विधान का चमत्कार ही समझा था।

जम्बूद्वीप का शिलान्यास

माघ सु० पूर्णिमा १९८० को साहू श्रेयासप्रसाद जी और

साहू अशोककुमार जैन के करकमलों से हस्तिनापुर मे बनने वाले भरत क्षेत्र आदि का शिलान्यास विशाल समारोह पूर्वक सम्पन्न कराया गया था। उस समय साहूजी ने इस रचना मे सहयोग हेतु एक लाख की राशि घोषित की थी। यह सब माताजी के आशीर्वाद से ही हो रहा था।

यहाँ पर नन्दलालजी, मेहरचन्द, प्रकाशचन्द जौहरी आदि के घरो मे सघ का आहार होता रहता था। इस प्रकार यहाँ की समाज ने दान, पूजन, उपदेश आदि का बहुत ही लाभ लिया था।

इन्द्रध्वज विधान नई दिल्ली में

यहाँ ग्रीनपार्क मे लगभग ढाई महीने तक सघ रहा। इसके बाद लाला श्यामलालजी ठेकेदार आदि के विशेष आग्रह से माताजी नई दिल्ली राजा बाजार मन्दिर मे आ गईं। यहाँ पर फाल्गुन की आष्टाह्निका मे इन्द्रध्वज विधान कराया गया। जिसमे ए० के० जैन (एक्सपोर्ट इडियन) और भीकूराम जैन के घर की महिलाओ ने विशेष लाभ लिया था।

यहाँ से पहाडगज के श्रावको ने अपने स्थान पर सघ का विहार कराया, वहाँ पर भी माताजी के उपदेश, शिविर और विधान के कार्यक्रम सम्पन्न हुए। यहाँ पर पूज्य रत्नमती माताजी की प्रेरणा से अनेक महिलाओ ने, बालिकाओ ने माताजी से णमोकार व्रत, जिनगुणसम्पत्तिव्रत आदि ग्रहण किये थे। बहुतो ने अणुव्रत आदि के नियम लिये थे।

यहाँ पर बम्बई से सौ० उषा बहन, और कु० रजनी माताजी के पास धर्म ध्यान के लिये आई थी जो वर्षों तक सघ मे

रहकर धार्मिक पढ़ाई की और संघ की भक्ति, वैयावृत्ति का लाभ लिया।

संघ कूचासेठ में

पुनः राजेन्द्रकुमारजी, पन्नालालजी, मेहताब सिंहजी आदि के आग्रह से संघ कूचासेठ मे कम्मोजी की धर्मशाला मे आ गया। वहाँ पर महावीर जयंती पर त्रिदिवसीय कार्यक्रम मे माताजी के उपदेश से विशेष प्रभावना हुई थी।

शिक्षण शिविर

यहाँ ग्रीष्मावकाश में माताजी की प्रेरणा से शिक्षण शिविर लगाया गया। जिसके कुलपति प० हेमचन्द जी अजमेर रहे। इसमे बाहर से आगत अनेक विद्वानो ने तथा सघस्थ विद्वानो ने यहाँ के बालक, बालिकाओ को, प्रौढ पुरुष और महिलाओ को अध्ययन कराना। प० बाबूलालजी ने अपने उपदेश से सभा मे सारी समाज को प्रभावित कर दिया इससे प्रसन्न हो बेदवाडा की समाज ने पर्यूषण पर्व मे पण्डितजी से अपने यहाँ आने की स्वीकृति ले ली थी।

रत्नमती माताजी अस्वस्थ

यहाँ पर गर्मी के भीषण प्रकोप से रत्नमती माताजी का स्वास्थ्य बिगड गया। इन्हे पीलिया हो गई और पित्त का प्रकोप अधिक हो गया। माताजी का इलाज भी बहुत ही सीमित था। हर किसी वैद्य की औषधि लेती भी नही थी और जो कुछ दी भी जाती थी वह गुण नही कर रही थी। धीरे-धीरे एक बार पीलिया ठीक हो गई पुन कुछ दिन बाद हो गई। थोड़े बहुत उपचार से रोग कुछ शान्त हुआ। पुन पीलिया का प्रकोप बढ

गया। तीसरी बार पीलिया के प्रकोप से माताजी बहुत ही कम-जोर हो गई थी। डाक्टर, वैद्यो ने कहा कि—

"अब इनके स्वस्थ होने की कोई आशा नही है।"

फिर भी रत्नमती माताजी का मनोबल बहुत ही दृढ़ था। वे अपनी आवश्यक क्रियाओ में सावधान थी। बराबर प्रतिक्रमण और सामायिक पाठ को सुनती थीं। तथा लेटे-लेटे ही महामन्त्र का जाप्य किया करती थी।

सम्यक्त्व की दृढ़ता

कई एक श्रावको ने कहा कि—

'पीलिया रोग बिना झाडे नही जाता।" अत वे लोग झाडा देने वाले को बुला लाये। रत्नमती माताजी ने कथमपि उससे झाडा नही कराया और माताजी से बोली—

"मैं मिथ्यादृष्टियो के मन्त्र का झाडा नही कराऊगी। आप अपने मन्त्र को पढकर भले ही झाड देवें।"

तब माताजी ने उनके पास बैठकर अपने विशेष मन्त्र को पढकर पिच्छिका फिरा दी। दो दिन बाद रत्नमती माताजी को स्वास्थ्य लाभ होने लगा। सचमुच मे असाता कर्म के उदय को नष्ट करने में महामन्त्र और उससे सम्बन्धित मन्त्र ही समर्थ हैं। जब ये ससार रोग को नष्ट कर सकते हैं तो ये पीलिया आदि छोटे-छोटे रोगो को नष्ट नही कर सकते क्या ?

गुणकारी ठण्डाई

दिल्ली कूचासेठ मे ही एक अमरसेन जैन वैद्यजी रहते हैं। ये बहुत ही वृद्ध हैं, अच्छे अनुभवी हैं। श्रावको ने उन्हें बुलाया उन्होंने माताजी को बहुत ही कमजोर देखा साथ ही पीलिया का

प्रकोप बढ़ा हुआ था। उनकी बताई हुई एक साधारण सी ठण्डाई भी माताजी के लिये रसायन बन गई तब से सन् १९८० से लेकर आज सन् १९८३ तक यह ठण्डाई गर्मी, सर्दी और वर्षा इन ऋतुओ मे माताजी को दी जाती है। पौष, माघ की ठण्डी में सघस्थ सभी कहते हैं कि—

"इतनी ठंडी मे भी रत्नमती माताजी को ठंडाई चाहिये।"

और गर्मी मे भी इस ठण्डाई का किंचित् गर्म कर ही दिया जाता है तब भी सब लोग हँसते हैं कि—

"रत्नमती माताजी गर्म ठण्ड ई लेती हैं।"

चूंकि ठण्डाई शब्द और गरम शब्द का परस्पर मे विरोध है। परन्तु इनके लिये यह ठण्डाई किंचित गर्म करके ही सदा काल दी जाती है। यह ठण्डाई कासनी के बीज सौंफ आदि ४–५ वस्तुओं से ही बनी है। इसमे और कोई विशेष चीजें नही हैं किन्तु यह रसायन से भी अधिक गुणकारी औषधि है।

इस प्रकार माताजी के मन्त्र और इस ठण्डाई से रत्नमती माताजी स्वस्थ हो गई। पीलिया रोग खत्म हो गया। तब वैद्य, डाक्टरो ने बहुत ही आश्चर्य व्यक्त करते हुये कहा—

"साधुओ के पास जो साधना है वही सबसे बडा इलाज है। हम लोग भला उनका क्या इलाज कर सकते है।'

महशांति विधान

इस वर्ष दो ज्येष्ठ हुये थे। द्वितीय ज्येष्ठ का शुक्ल पक्ष १६ दिन का था। विजेन्द्रकुमार जी ने माताजी के पावन सान्निध्य मे विधिवत् १६ दिन का शांति विधान किया। इतनी गर्मी मे उनके परिवार के नवयुवको, बालको ने भी तथा समाज के वृद्ध

मेहताब सिंह जौहरी आदि महानुभावो ने विधान का अनुष्ठान किया था। दिन मे भी सयम और रात्रि मे सर्वथा चतुराहार (जल का भी) त्याग यह नियम शहर के नवयुवको के लिये गर्मी के दिनो मे १६ दिन तक बहुत ही सराहनीय था। इनका विधान इनकी इच्छा के अनुसार बहुत ही सफल रहा है।

पुन चातुर्मास दिल्ली मे

पुनरपि दिल्ली समाज के विशेष आग्रह से माताजी ने सन् १९८१ मे यही पर चातुर्मास स्थापित कर लिया था। इस चातुर्मास मे भी यहाँ पर धर्म प्रभावना के अनेक सफल आयोजन हुए थे।

मेरु मन्दिर मे इन्द्रध्वज विधान

यहाँ मेरु मन्दिर के श्रावको ने पूज्य माताजी के सान्निध्य मे इन्द्रध्वज विधान का आयोजन किया। विधानाचार्य प० लाडली प्रसाद जी, सवाईमाधोपुर वाले थे। यह विधान आषाढ़ की आष्टाह्निका पर्व मे हुआ था।

यहाँ मस्जिद खजूर मोहल्ला मे एक मेरु मदिर नाम से प्रसिद्ध मदिर है। इसमे नन्दीश्वर के बावन चैत्यालयो की बडी सुन्दर रचना है। इन प्रत्येक चैत्यालयो मे धातु की चार-चार जिन प्रतिमायें विराजमान हैं। मध्य मे पाँच-पाँच मेरु बने हुये हैं। "दिल्ली मे नन्दीश्वर रचना बनी हुई है" यह बात यहाँ के बहुत कम जैनो को मालूम है। माताजी ने कई बार इन लोगो को कहा कि इसका प्रचार करना चाहिये।

इन्द्रध्वज विधान

यहाँ पर पूज्य माताजी के सान्निध्य मे पन्नालालजी सेठी

डीमापुर वालो ने बहुत ही प्रभावना के साथ इन्द्रध्वज मण्डल विधान कराया। जिसमे अनेक दिल्ली के स्त्री पुरुषो ने भी भाग लिया।

चातुर्मास के पुण्य अवसर पर यहाँ माताजी के सान्निध्य मे छोटे-बडे सभी २५ से भी अधिक विधान सम्पन्न हुये थे।

पर्यूषण पर्व

पर्यूषण पर्व मे यहाँ प० सुमेरुचन्द दिवाकर आये हुये थे। प्रतिदिन पूज्य माताजी का प्रात धर्मशाला मे दशधर्म पर विशेष प्रवचन हुआ तथा मध्याह्न मे बडे मन्दिर जी मे विद्वानो द्वारा तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचन हुये और माताजी का प्रवचन भी हुआ। इस पर्व से जैन समाज को माताजी के सान्निध्य से विशेष लाभ रहा है।

समयसार शिविर

माताजी की विशेष भावना के अनुसार यहाँ अक्टूबर मे दस दिन के लिये प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। इसमे ८० से अधिक विद्वानो ने लाभ लिया था। डा० पन्नालालजी साहित्याचार्य को कुलपति निर्धारित किया गया। इस शिविर मे प० कैलाशचन्दजी शास्त्री, प्रो० लक्ष्मीचन्द जैन आदि भी आये और उनके भी सारगर्भित भाषण हुये थे। यह शिविर भी अपने आप मे बहुत ही सफल रहा।

इस शिविर मे शरद् पूर्णिमा के दिन माताजी के जन्मदिवस के उपलक्ष्य मे पन्नालालजी सेठी ने प्रीतिभोज का आयोजन किया जिसमे ५ हजार से अधिक स्त्री-पुरुष आये थे। तथा प्रकाशचन्द सेठी गृहमत्री ने माताजी के जन्म-दिवस पर 'दिगम्बर

मुनि' पुस्तक का विमोचन कर दीप प्रज्ज्वलित कर शिविर का उद्घाटन किया था।

सहस्राब्दी महोत्सव

इस वर्ष भगवान् बाहुबली की प्रतिमा को प्रतिष्ठित हुये एक हजार वर्ष पूर्ण हो रहे थे। श्रवणबेलगोल के भट्टारक चारुकीर्ति, एलाचार्य विद्यानन्दजी महाराज आदि के सत्प्रयत्न से बहुत बड़े रूप मे महामस्तकाभिषेक महोत्सव होने वाला था। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर धर्म का प्रचार प्रसार हो रहा था।

इस अवसर पर त्रिलोक शोध सस्थान के लोगो ने भी माताजी से अनुरोध किया कि—

"आप भगवान बाहुबली सम्बन्धी साहित्य लिखे।" कामदेव बाहुबली, बाहुबली नाटक आदि कई पुस्तकें तैयार कर दी। माताजी द्वारा रचित पद्यमय भगवान् बाहुबली का ६० मिनट का एक सगीतमय कैसेट तैयार कराया गया। और इस महोत्सव के उपलक्ष्य मे सस्थान ने एक लाख की सख्या मे साहित्य प्रकाशित किया था। उसमे चित्रकथा के रूप मे एक भरत बाहुबली पुस्तक भी माताजी द्वारा तैयार की गई थी। जिसे श्री रमेशचद पी० एस० जैन की प्रेरणा से इन्द्रजाल कॉमिक्स टाइम्स आफ इण्डिया वालो ने डेढ लाख करीब प्रकाशित कराई थी। जो कि हिन्दी इगलिश दोनो मे छपी है।

मगल कलश प्रवर्तन

इस महोत्सव मे इन्दौर के देवकुमार सिंह काशलीवाल कैलाशचन्द चौधरी आदि ने मगल कलश प्रवर्तन योजना बनाई। पूज्य माताजी की उपस्थिति मे विशाल पण्डाल मे श्री इन्दिरा

गांधी ने इस मगल कलश का प्रवर्तन किया। इससे पूर्व मिश्रीलालजी गगवाल, कैलाशचन्द चौधरी आदि ने पूज्य माताजी से प्रार्थना करके उनके करकमलो से एक यन्त्र लेकर इस कलश मे स्थापित कर दिया था। जिसका प्रभाव अभूतपूर्व रहा है यह बात आज भी इन्दौर के कार्यकर्ता लोग कहते रहते हैं। इस अवसर पर माताजी का ५ मिनट का प्रवचन भी बहुत ही प्रभावशाली हुआ था।

इस प्रसग पर आ० रत्नमती माताजी ने भी बड़े ही उत्साह से इस सभा मे पधार कर मगल कलश प्रवर्तन मे अपना शुभाशीर्वाद प्रदान किया था।

सघ महिलाश्रम में

चातुर्मास समाप्ति के बाद श्री मखमलीजी, माताजी आदि के विशेष अनुरोध से सघ का पदार्पण महिलाश्रम (दरियागज) मे हुआ था। वहाँ पर भी महिलाओ ने तथा आश्रम की बालिकाओ ने माताजी के प्रवचन का बहुत ही लाभ लिया था। वहाँ के धार्मिक और सुन्दर वातावरण से रत्नमती बहुत ही प्रभावित रही थीं।

महामस्तकाभिषेक के अवसर पर दिल्ली विराजने से हजारो यात्रियों ने माताजी के दर्शनो का और उपदेश का लाभ लिया।

गजरथ महोत्सव दिल्ली में

दिल्ली के एक दाना बेचने वाले प्रेमचन्द नाम के श्रावक ने उदारमना होकर अपने श्रम की कमाई से एक नया रथ बनवाया। माताजी के पुन पुन प्रार्थना कर लालमदिर मे इन्द्रध्वज विधान का पाठ कराया। पुन फाल्गुन सुदी ११ के उत्तम मुहूर्त मे उस

गये रथ में श्री जी विराजमान किये गये। पुन उसमे हाथी लगा कर गजरथ महोत्सव यात्रा निकाली गई। यह अवसर दिल्ली के इतिहास मे पहला ही था।

इसके बाद महामस्तकाभिषेक से आये भक्तो ने वीडियो पर लिये गये भगवान् बाहुबली के अभिषेक का सारा दृश्य टेलीविजन द्वारा माताजी को दिखाया जिसे देखकर ज्ञानमती माताजी, रत्नमती माताजी और शिवमती माताजी तीनो ही माताजी गद्गद हो गई।

[२६]

संघ का मंगल पदार्पण हस्तिनापुर मे

माताजी के मन मे कितने ही दिनो से यह भावना चल रही थी कि—

"इस जम्बूद्वीप का सुन्दर मॉडल बनवा कर एक रथ पर स्थापित कर उसे सारे भारतवर्ष मे घुमाया जावे और भगवान् महावीर के उपदेशो का जन-जन में विशेष प्रचार किया जावे।"

दिल्ली से विहार करते समय माताजी ने अपनी यह भावना जयकुमारजी एम० ए० भागलपुर, निर्मलकुमारजी सेठी आदि के सामने कही थी।

ज्ञानज्योति प्रवर्तन की रूपरेखा पर ऊहापोह

यहाँ हस्तिनापुर में माताजी का चैत्र सुदी ५ के दिन प्रात मंगलप्रवेश हुआ और मध्याह्न मे श्रीमान् अमरचन्द जी पहाडिया कलकत्ते वाले सपत्नीक आये। साथ मे उम्मेदमलजी पाड्या भी थे। इस विषय में माताजी ने सारी बातें बताई। अमरचन्द बहुत ही प्रभावित हुये और बोले—

"माताजी ! कलकत्ते पहुंचकर मैं अन्य लोगों से बातचीत करके कुछ कह सकूंगा। लेकिन यह आयोजन की रूपरेखा तो बहुत ही बढ़िया है।"

पुन कतिपय श्रीमन्तो ने माताजी से निवेदन किया कि—

"माताजी ! इस प्रवर्तन कार्य मे बहुत ही श्रम होगा, सहज कार्य नही है। आपको तो यह जम्बूद्वीप रचना पूरी करानी है। हम श्रीमान् लोग आपस मे एक एक लाख की राशि का दान लिखा देगे। ऐसे १५-२० लोगो के नाम की लिस्ट बनाये लेते हैं। जिससे एक डेपुटेशन लेकर आपस मे मिलकर इस कार्य को पूर्ण करा लेंगे। अत इस जम्बूद्वीप के भारत भ्रमण की योजना को हाथ में लेने के लिये सोचना कठिन है।"

माताजी ने कहा—

"मुझे मात्र जम्बूद्वीप पूर्ण कराने की ही भावना हो ऐसा नही है प्रत्युत् मैं चाहती हू कि सारे भारतवर्ष मे जम्बूद्वीप क्या है ? इसकी जानकारी हो और साथ ही जैन धर्म का खूब प्रचार हो। जैन क्या जैनेतर लोग भी और जैनधर्म से अच्छी तरह परिचित हो जाएँ इस महती प्रभावना के लिये ही मेरा यह अभिप्राय है।"

मैंने माताजी के सान्निध्य मे लगभग १६ वर्षो मे यह अनुभव किया है कि माताजी जो भी सोच लेती हैं वह अवश्य करती हैं। उनका आत्म-विश्वास, मनोबल बहुत ही ऊँचा है। और कार्य को प्रारम्भ करने के बाद उसमे कितनी ही विघ्न बाधायें क्यो न आ जावें, कितने ही विरोधी खडे हो जावे किन्तु माताजी उनको कुछ भी नहीं गिनती हैं।

यहाँ भी यही बात रही। रूपरेखा बनते-बनते चातुर्मास स्थापना के प्रसंग पर आषाढ़ सु० १५ को इसके लिए मीटिंग रखी गई। इसी अवसर पर इस आषाढ़ की आष्टाह्निका में श्री निर्मलकुमार जी सेठी लखनऊ और पन्नालाल जी सेठी डीमापुर वालों ने इन्द्रध्वज मण्डल विधान का विशाल रूप से आयोजन किया था। इस विधान में जो आनन्द आया सो अकथनीय है। इस विधान में प० बाबूलाल जी, प० कुञ्जीलाल जी भी पधारे हुये थे।

चातुर्मास स्थापना और इन्द्रध्वज विधान

इस पर्व में आषाढ़ सुदी १४ को पूर्व रात्रि में माताजी ने संघ सहित यहाँ चातुर्मास स्थापना की। १६ जौलाई को मीटिंग में अनेक श्रीमान् और विद्वानों ने माताजी के सान्निध्य में बैठ कर निर्णय किया कि—

"यह प्रवर्तन कार्य अवश्य किया जाय और इस भव्य मॉडल का नाम 'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति' रक्खा जाय। इसके लिये सुन्दर मॉडल बनाने का आर्डर किया जाय और अक्टूबर में एक जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार नाम से विद्वद्गोष्ठी की जाय। तदनुरूप सारी रूपरेखा बना ली गई। और इस कार्य की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं। ज्योतिप्रवर्तन के लिये एक कमेटी का गठन किया गया जिसमें प० बाबूलाल जी को ज्योति के संचालन का भार सौंपा गया।

इस चातुर्मास में अनेक विधि विधान होते रहे। भाद्रपद में श्री प्रेमचंद जी महमूदाबाद वाले लगभग २५ स्त्री पुरुष आये और दिल्ली से आनन्द प्रकाश (सोरम वाले) आये। इन लोगों

ने यहाँ पर्यूषण पर्व मे तीस चौबीसी विधान किया और दशधर्म तथा तत्त्वार्थसूत्र का प्रवचन सुना।

जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार

इस सेमिनार के उद्घाटन के बाद प० बाबूलाल जी जमादार का अभिनन्दन ग्रन्थ विमोचन कर उसे माताजी को समर्पित किया गया था। पुन माताजी ने पडित जी को वह अभिनन्दन ग्रन्थ देकर बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया था।

अक्टूबर के इस सेमिनार मे डॉ० पन्नालाल जी साहित्याचार्य आदि अनेक विद्वान पधारे और यूनिवर्सिटी कालेज आदि से अनेक प्रोफेसर विद्वान तथा अनेक श्रीमान् आदि एकत्रित हुए। युवा परिषद् की अनेक शाखाओ के युवकगण आये। इस सेमिनार मे अनेक निबध पढे गये और हर सम्प्रदाय मे मान्य 'जम्बूद्वीप' पर पर्याप्त ऊहापोह हुआ। इस के मध्य इस जम्बूद्वीप प्रवर्तन की मीटिंग मे सभी विद्वानो, श्रीमानो और युवको ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये। जिसमे सभी ने इस योजना की मुक्तकठ से प्रशसा की थी और अधिक से अधिक प्रभावना की अपेक्षा की थी। इसी मध्य डॉ० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल ने कहा कि—

पौराणिक और आधुनिक विद्वान्, श्रीमान् तथा युवावर्ग इन सबको एक मच पर लाने का श्रेय आज पूज्य माताजी को है। यहाँ का आज का यह त्रिवेणी सगम इतिहास मे अमर रहेगा।

इस सभा का सचालन प० बाबूलाल जी जमादार कर रहे थे। पुन सभा मे उल्लास और उमग का क्या कहना। उनके उत्साह से सभी का उत्साह बढ रहा था और प्रत्येक के मुख से

मे माताजी के सर्वतोमुखी कार्य की प्रशंसा सुनी जा रही थी।

इस प्रकार सभी ने ज्योति मे अपने-अपने अनुरूप सहयोग देने को कहा। कुल मिलाकर यह सेमिनार बहुत ही सफल रहा। इस मध्य श्री त्रिलोकचन्द कोठारी ने अपने भाषण मे बार-बार माताजी से दिल्ली विहार करने के लिये प्रार्थना की किन्तु माताजी ने मात्र हँस दिया। उस समय दिल्ली विहार के बारे मे भी विचार नही किया।

आ० रत्नमती अभिनन्दन ग्रन्थ रूपरेखा

इन सभी धर्म प्रभावना के प्रसग मे कतिपय विद्वानो ने मिलकर विचार किया कि—

"जिन आर्यिका ज्ञानमती माताजी से समाज को इतना बडा लाभ मिल रहा है उनकी जन्मदात्री माता यही पर स्वय आर्यिका के ही रूप मे विद्यमान हैं। १३ सन्तानो को जन्म देकर पाल, पोसकर आज इस वृद्धावस्था मे वे इस कठोर सयम साधना मे रत है। हम लोगो को तो इनका परिचय भी मालूम नही है जबकि इनके उपकारों से समाज कभी भी उऋण नही हो सकता है। अत बडे उत्साह के साथ इनका अभिनन्दन होना चाहिये।"

उन विद्वानो ने पडित बाबूलाल को आगे किया। पडित जी ने पूज्य ज्ञानमती माताजी से स्वीकृति लेकर सभा मे ही यह घोषित कर दिया कि—

"आर्यिका रत्नमती माताजी का अभिनन्दन करना है। अत एक अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार करना है।"

साथ ही एक सम्पादक मण्डल भी निश्चित कर दिया गया। जिसमें—

१ डॉ० पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर
२ प० कुँजीलालजी, गिरीडीह
३ डॉ० कस्तूरचन्द जी कासलीवाल, जयपुर
४ प० बाबूलाल जी जमादार, बडौत
५ ब्र० प० सुमतिबाई शहा, सोलापुर
६ ब्र० प० विद्युल्लता शहा, सोलापुर
७ कु० माधुरी शास्त्री, सघस्थ
८ अनुपम जैन

इधर जम्बूद्वीप का मॉडल तैयार कराया जा रहा था। संस्थान के कार्यकर्तागण यह सोच रहे थे कि—

"इस ज्ञानज्योति प्रवर्तन को हम दिल्ली से ही प्रारम्भ करें तथा भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिराजी के हाथों इसका उद्घाटन हो तो राष्ट्रीय सहयोग विशेष रहने से धर्म प्रभावना बहुत होगी।"

इसके लिये इन लोगो ने पुन मातजी से दिल्ली विहार करने के लिये प्रार्थना की और बोले—

"मानाजी ! यह जम्बूद्वीप ज्ञानज्योनि प्रवर्तन दिल्ली से ही हो चूंकि वह भारत की राजधानी है। उस अवसर पर हम लोग आपका सान्निध्य अवश्य चाहते हैं। इसलिये आप सघ सहित दिल्ली विहार कीजिये।"

माताजी ने आ० रत्नमती माताजी से विचार-विमर्श किया किन्तु उनका स्वास्थ्य अब बहुत कमजोर हो चुका था अत उन्होने कहा कि—

जब रत्नमती माताजी ने यह सुना तो उन्होंने कहा कि—

"मेरा अभिनन्दन ग्रन्थ बिल्कुल नहीं निकालना चाहिये। जो भी अभिनन्दन करना हो आप लोग आ० ज्ञानमती माताजी का ही करें।"

किन्तु प० बाबूलालजी ने कहा कि—

"ये साधु-साध्वियां तो मना करते ही रहते हैं, हम लोगो को तो अपना कार्य करना है।"

रत्नमती माताजी ने कहा—

"अब मेरा शरीर इधर-उधर विहार के लायक नहीं रहा है और मेरी दिल्ली जाने की इच्छा नहीं है। क्योकि शहर का हल्ला-गुल्ला अब हमारे दिमाग को सहन नहीं होता। इसलिये मैं यही रहूंगी आप दिल्ली जाकर ज्योति प्रवर्तन कराकर आ जाना।"

माताजी ने विचार किया कि—

"इनका स्वास्थ्य अब अकेले छोडने लायक भी नहीं है। अभी-अभी दो महीने पूर्व भी अकस्मात् चक्कर आने से गिर गईं तो हम लोगो ने णमोकार सुनाना शुरू कर दिया था। क्या पता किस समय शरीर छूट जाय अत इन्हे यहाँ अकेली कैसे छोड कर जाना ।"

इसी ऊहापोह में महीना निकल गया पुन. माताजी ने कहा—

"धर्मप्रभावना की दृष्टि से श्रावक लोग हमारा सान्निध्य चाहते हैं वे मेरी अनुपस्थिति मे ज्योति प्रवर्तन कराने को कथमपि तैयार नही हैं। आपको अकेले छोडना कुछ समझ मे नहीं

आता क्योकि मैंने महावीर जी के रास्ते में स्वय अनुभव किया था। समस्त सुबुद्धिसागरजी के पैर में फोडा हो जाने से वे सवाईमाधोपुरा रुकने को तैयार हो गये किन्तु आचार्य शिवसागर जी महारज ने उन्हे डोली में बैठने का आदेश दिया और साथ ही लिया चूँकि अस्वस्थ साधु को अकेले छोडना सघ के प्रमुख साधु का कर्तव्य नही है अत. आपको एक बार कष्ट झेलकर भी दिल्ली चलना चाहिये।"

इस प्रकार की समस्या को देखकर रत्नमती माताजी ने सोचा कि—

"यदि मैं इस समय दिल्ली नही जाती हू तो ये भी नही जा रही हैं इतने महान् धर्म प्रभावना के कार्य मे व्यवधान पड रहा है। अत यद्यपि मुझे विहार मे कष्ट है फिर भी जैसे हो वैसे सहन करना चाहिये। मैं इनके द्वारा होने वाली धर्म की इतनी बडी प्रभावना मे बाधक क्यो बनूं।"

यही सोचकर रत्नमती माताजी ने विहार करना स्वीकार कर लिया तब फाल्गुन बदी चतुर्थी को यहाँ से दिल्ली के लिये माताजी ने सघ सहित मगल विहार कर दिया।

पुनः इन्द्रध्वज विधान दिल्ली मे

मोरीगेट की समाज का विशेष आग्रह था कि प्रारम्भ मे सघ वही ठहरे। कुछ रत्नमती माताजी की कृपा भी उन पर विशेष थी। इसमे यह भी कारण था कि यहाँ पर मन्दिर मे बाहर का शोरगुल सुनाई नही देता है। जिससे रत्नमती माताजी को शाति रहती थी। इसीलिये माताजी ने भी मोरीगेट के भक्तो की प्रार्थना स्वीकार कर ली। ये लोग मोरीगेट पर आये और शाति बाई ने कहा—

"माताजी ! आपके मंगल पदार्पण के साथ ही आष्टाह्निक पर्व आ रहा है। कोई न कोई विधान कराना है।"

माताजी ने इन्द्रध्वज विधान की राय दी चूंकि माताजी को इस पर बहुत ही प्रेम है। भक्त मण्डली ने भी माताजी की राय को अच्छी समझकर विधान की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

माताजी मोरीगेट पर आ गई और इन्द्रध्वज विधान शुरु हो गया। विद्यापीठ के विद्यार्थी कमलेश विशारद ने यह विधान कराया।

ज्ञानज्योति प्रवर्तन की तैयारियां

यहां पर सस्थान की मीटिंगें होती रही और इधर मॉडल को पूर्ण कराने की, उसके लिये नई ट्रक खरीदने, मार्ग निर्धारित करने की तथा प्रधानमन्त्री को लाने की गतिविधि चलती रही। इधर माताजी के सान्निध्य मे मवाना, मेरठ, दिल्ली आदि के भक्तगण कोई न कोई विधान कराते ही रहे।

जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति प्रवर्तन समारोह

माताजी की तपस्या के प्रभाव से हम लोग इतने बडे कार्य को प्रारम्भ करने में सफल हुये। ज्येष्ठ सुदी तेरस दि० ४ जून १९८२ को लालकिला मैदान दिल्ली के सामने विशाल पडाल बनाया गया। जे० के० जैन ससद सदस्य के सक्रिय सहयोग से प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी पधारी। मच पर पधारने के पहले ही माताजी की कुटिया मे प्रवेश कर उन्होने माताजी को नमस्कार किया और पास मे बैठ गयी, पूर्व निर्धारित कार्यक्रम अनुसार वहाँ कोई नही रहा। जैन समाज में आर्यिकाओ में रत्न ऐसी साध्वी के पास बैठकर भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाधी

ने एक अपूर्व आनन्द का अनुभव किया।

"राजनैतिक और धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक सघर्षों की शांति कैसे हो ?"

इ दिराजी ने अपनी समस्या रखी उस पर पूज्य माताजी ने कहा कि—

"सही उपाय महापुरुषो के उपदेश अहिंसा और नैतिकता ही है।"

इत्यादि प्रकार मे माताजी ने धर्म का महत्व बतलाते हुये चर्चायें की। यद्यपि ५ मिनट का समय निर्धारित था फिर भी इन्दिराजी १५ मिनट तक माताजी से बातचीत करती रही।

अनन्तर माताजी और इन्दिराजी दोनो के मच पर आते ही जनता ने जयघोष और बैंड बाजो के साथ स्वागत किया। जे के. जैन के कुशल सचालन मे सारे कार्यक्रम सम्पन्न हुए। और इन्दिराजी ने विधिवत् इस जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति के वाहन पर स्वस्तिक बनाकर आरती करके श्रीफल चढ़ाया और अपने कर कमलो से प्रवर्तन किया। आर्यिका ज्ञानमती माताजी के शुभाशीर्वाद से इस ज्योति का प्रवर्तन प्रारम्भ हो गया जो अभी महाराष्ट्र मे हो रहा है।

इसके अनन्तर यहाँ पर तीस चौबीसी का विधान कराया गया।

कूचासेठ में चातुर्मास

पुन राजेन्द्र प्रसाद जी आदि शहर वालो के विशेष आग्रह से माताजी सघ सहित अतिथि भवन (कम्मोजी की धर्मशाला) में आ गयी। यही पर चातुर्मास स्थापित कर लिया। यहाँ पर

माताजी के सान्निध्य में विधान तो होते ही रहते थे। बड़े मन्दिर में उपदेश भी होते रहे।

पर्यूषण पर्व

दशलक्षण पर्व मे डॉ० पन्नालालजी सागर आये थे। उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचन किया और माताजी के मुख से दशधर्म का प्रवचन सुनने को मिला। इससे पूर्व चारित्र च० आचार्य शान्तिसागर जी की पुण्य तिथि के अवसर पर वेदवाड़ा में माता जी का उपदेश हुआ। इस तरह विशेष अवसरों पर दिल्ली मे जनता को माताजी के उपदेश का लाभ मिलना ही रहा है।

इन्द्रध्वज विधान पहाड़गंज

सम्थान के कार्यकर्ता श्री हेमचन्द जी ने माताजी को पहाड़ गंज चलने के लिये प्रार्थना की। वहाँ पर इन्द्रध्वज विधान का बड़े रूप मे आयोजन किया। अच्छी सफलता रही, यहाँ की समाज ने माताजी से अनेक व्रत आदि भी ग्रहण किये। यह विधान भी विद्यापीठ के शास्त्री प्रवीणचंद ने बड़े अच्छे ढंग से कराया था।

रत्नमती माताजी अस्वस्थ

यहाँ रत्नमती माताजी को ज्वर आने लगा। उस प्रसंग मे इतनी कमजोर हो गईं कि एक दिन आहार मे उनका हाथ छूट गया और चक्कर आ गया। माताजी को णमोकार मन्त्र सुनाती रहीं। उस समय उनकी स्थिति ऐसी हो गई थी कि समाधि हो जायेगी। किन्तु महामन्त्र के प्रभाव से धीरे-धीरे उन्हें स्वास्थ्य लाभ हुआ।

इन्द्रध्वज विधान शाहदरा में

इधर नवीन शाहदरा के रमेशचन्द जैन ने आकर माताजी

से बहुत ही आग्रह किया तब माताजी सघ सहित वहाँ भी पहुच गईं। वहाँ पर भी इन्द्रध्वज विधान के होने से बहुत धर्मप्रभावना हुई। विधान के अन्त मे उन्होने रथयात्रा निकाली। पूरे विधान की इन लोगों ने फिल्म तैयार कराई।

इसी मध्य महमूदाबाद से प्रेमचद जी लगभग २०–२५ लोगो के साथ आये। उन्होने भी माताजी के सान्निध्य मे तीस चौबीसी विधान किया।

मन्दिर का शिलान्यास

भोगल के श्रावको ने माताजी से विशेष प्रार्थना करके स्वीकृति ले ली। माताजी के सान्निध्य मे श्री प्रकाशचद सेठी गृहमन्त्री के कर कमलो से मन्दिर का शिलान्यास करवाया था। यह कार्य भी समाज मे अच्छी धर्म प्रभावना सहित सम्पन्न हुआ।

जम्बूद्वीप सेमिनार

जे० के० जैन के सफल प्रयास से इस सन् ८२ के जम्बूद्वीप सेमिनार का उद्घाटन फिक्की आडीटोरियम मे विशाल जन मेदिनी के बीच ससद सदस्य श्री राजीव गांधी ने किया। इस सेमिनार मे पौराणिक विद्वानो और आधुनिक प्रोफेसर विद्वानो ने बहुत ही रुचि से भाग लिया। जैन तथा जैनेतर विद्वान भी आये। इसके बाद मेरू मन्दिर के भक्तगण आष्टान्हिका पर्व मे सिद्धचक्र विधान मे माताजी का सान्निध्य चाहते ही रहे किन्तु सस्थान के पदाधिकारियो की प्रार्थना से माताजी ने हस्तिनापुर की ओर विहार कर दिया और कार्तिक शुक्ला १३ दि० २९ नवम्बर को माताजी ने इस जम्बूद्वीप स्थल पर मगल प्रवेश किया।

हस्तिनापुर में इन्द्रध्वज विधान

यहाँ दिसम्बर मे सरधना के देवेन्द्र कुमार, मोहनलाल आदि भक्तो ने माताजी के सान्निध्य मे जम्बूद्वीप स्थल पर इन्द्रध्वज विधान किया। अनन्तर फरवरी मे मेरठ के पवनकुमार जैन ने इन्द्रध्वज विधान किया था। पुन मार्च मे फाल्गुन आष्टान्हिकी पर्व मे यही रहने वाले अनन्तवीर जैन ने यहाँ इन्द्रध्वज विधान करके विशेषरीत्या धर्मप्रभावना की।

डायनिंग हाल का उद्घाटन

६ मार्च १९८३ को जे० के० जैन ससद सदस्य के कर-कमलो से यहाँ जम्बूद्वीप स्थल पर यात्रियो के भोजन की सुविधा के लिये हरिश्चन्द्र जैन शकरपुर दिल्ली के द्वारा नव निर्मित विशाल डायनिंग हाल का उद्घाटन समारोह मनाया गया।

रत्नत्रय निलय उद्घाटन

अक्षय तृतीया के पावन अवसर पर भगवान आदिनाथ की रथयात्रा निकाली गई। अनन्तर श्री उग्रसेन जैन सुपुत्र हेमचन्द जैन ने सपरिवार आकर साधुओ के ठहरने के लिये स्वय द्वारा बनवाये गये इस रत्नत्रय निलय का उद्घाटन किया। जिसमे माताजी के सघ का प्रथम मगल प्रवेश कराया गया। यह समारोह भी प्रभावना पूर्वक सम्पन्न हुआ।

सिद्धचक्र विधान

श्री कैलाशचन्द जी सरधना ने सपरिवार आकर सिद्धचक्र मण्डल विधान किया और माताजी का धर्मोपदेश सुनकर प्रसन्न हुये।

प्रशिक्षण शिविर

ग्रीष्मावकाश मे यहाँ पर ५ जून से १५ जून तक प्रशिक्षण

शिविर का आयोजन किया गया। जिसमे कुलपति का भार डॉ. पन्नालाल जी ने ग्रहण किया। अन्य अनेक विद्वान प्रशिक्षण देने वाले थे। तथा लगभग ४० विद्वानो ने तत्त्वार्थसूत्र, दशधर्म, प्रवचन निर्देशिका और जैन भारती इन ग्रन्थो का प्रशिक्षण ग्रहण किया। इस प्रशिक्षण मे कतिपय अध्यापिकाओ और प्रबुद्ध महिलाओ ने भी भाग लिया था। यह प्रशिक्षण शिविर भी वर्तमान समय मे बहुत ही उपयोगी रहा।

अनन्तर सस्थान के पदाधिकारियो की प्रार्थना से माताजी ने सन् ८३ का चातुर्मास यही करने का निश्चय किया।

सिद्धचक्र विधान और चातुर्मास स्थापना

महमूदाबाद से श्रेयांसकुमार जी, धर्मकुमार जी सपरिवार लगभग १५–२० लोग आये और मेरठ के चन्द्रप्रकाश, गुलाबचन्द जी आदि अनेक भक्त आये। यहाँ जम्बूद्वीप स्थल पर दोनो पार्टियो ने सिद्धचक्र मण्डल विधान किया। प्रतिदिन प्रात और मध्याह्न मे माताजी का धर्मोपदेश हुआ।

आषाढ सुदी चौदस की पूर्व रात्रि मे माताजी ने सघ सहित चातुर्मास स्थापना क्रिया सम्पन्न की।

यहाँ पर जब से माताजी पधारी हैं बराबर राजस्थान, बिहार, बगाल, आसाम, गुजरात, महाराष्ट्र और यू० पी० के यात्रियों का ताता लगा रहता है।

प्राय· हर सप्ताह मे एक दो मण्डल विधान होते रहते हैं।

[२८]

सफल गार्हस्थ्य जीवन

रत्नमती माताजी ने बचपन में अपने पिता से धार्मिक पढाई

की थी। उसमें से तत्वार्थसूत्र, भक्तामर, समाधिमरण आदि अनेकों पाठ आज भी कठाग्र याद हैं। बचपन मे ही 'पद्मनदिपचविंशतिका' ग्रन्थ का स्वाध्याय करके आजन्म शील-व्रत ग्रहण कर लिया था और पर्वों में ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया था। वही ग्रन्थ आपको दहेज मे मिला था। जिसका पुन: पुन स्वाध्याय करते हुये अपनी सतान मे धार्मिक सस्कार डाले थे।

जिस प्रकार रानी मदालसा ने अपने पुत्रो को पालना मे शिक्षा दी थी कि-- 'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरजनोऽसि, ससार-माया परिवर्जितोऽसि।" हे पुत्र! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरजन है और ससार की माया से रहित है। ऐसा सुन-सुनकर उसके सभी पुत्र युवा होकर विरक्त हो घर से चले जाते थे। उसी प्रकार इन रत्नमती माताजी ने भी अपने गार्हस्थ्य जीवन मे सभी धार्मिक सस्कार डाले थे। फलस्वरूप उनकी प्रथम पुत्री मैना आज आ० ज्ञानमती माताजी हैं एक अन्य पुत्री मनोवती आर्यिका अभयमती हैं। चतुर्थ पुत्र रवीन्द्रकुमार आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले चुके हैं। मालती और माधुरी भी आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर साधु सेवा तथा आत्मकल्याण मे रत हैं और जो पुत्र पुत्रियाँ विवाहित हैं सभी शुद्ध जल का नियम लेकर साधुओ को आहार देते रहते हैं। भगवान् की नित्य पूजा करते हैं, तीर्थ यात्रायें करते हैं, स्वाध्याय करते हैं और सदा साधु सघो की वैयावृत्ति मे आनन्द मानते हैं।

इन्होंने गार्हस्थ जीवन मे भगवान् नेमिनाथ जी की प्रतिमा का तथा सुमेरु पर्वत का (ढाई फुट ऊँचा है इसमे सोलह चैत्या-लय मे १६ जिनबिम्ब हैं) प्रतिदिन इच्छानुसार खूब पचामृत अभिषेक किया है तथा खूब ही पूजा की है।

अनन्तर सन् १९७१ मे आचार्य धर्मसागर जी महाराज से अजमेर मे आर्यिका दीक्षा लेकर आत्मसाधना मे रत है।

आर्यिका दीक्षा के चातुर्मास

रत्नमती माताजी ने आर्यिका के १२ चातुर्मास पूर्ण किये हैं।

१.	दिल्ली, पहाडी धीरज	सन् १९७२
२	दिल्ली, नजफगढ	१९७३
३.	दिल्ली, दरियागञ्ज	१९७४
४.	हस्तिनापुर	१९७५
५	खतौली	१९७६
६	हस्तिनापुर	१९७७
७	हस्तिनापुर	१९७८
८	दिल्ली, मोरीगेट	१९७९
९	दिल्ली, कूचासेठ	१९८०
१०	हस्तिनापुर	१९८१
११	दिल्ली, कूचासेठ	१९८२
१२	हस्तिनापुर	१९८३

स्वाध्याय

इन्होंने दीक्षा के पूर्व तो अनेक ग्रन्थों के स्वाध्याय किये ही थे। अभी आर्यिका दीक्षा के बाद प्रथमानुयोग के महापुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण, पांडवपुराण, हरिवंशपुराण, श्रेणिक-चरित आदि अनेक चरित ग्रन्थ भी पढ़े हैं। चरणानुयोग में भगवती आराधना, आचारसार, चारित्रसार, मूलाचार, अनगार-

धर्मामृत, मूलाचार प्रदीप, सागारधर्मामृत, वसुनन्दिश्रावकाचार आदि अनेक ग्रन्थों का स्वाध्याय किया है। करणानुयोग में तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप पण्णत्ति, गोम्मटसार, पचसग्रह ग्रन्थो का स्वाध्याय किया है तथा द्रव्यानुयोग मे सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, द्रव्यसग्रह, समाधिशतक, परमात्म-प्रकाश, प्रवचनसार, नियमसार, समयसार, आत्मानुशासन आदि ग्रन्थो का अच्छी तरह स्वाध्याय किया है।

धर्मोपदेश

ये समय-समय पर आगत यात्रियो को, महिलाओ को, बालिकाओ को धर्म का उपदेश देकर उन्हे सम्बोधन कर देव-दर्शन, पूजन के लिये प्रेरणा देती रहती हैं। कितने लोगो को रात्रि मे भोजन का त्याग करा देती है, कितने को स्वाध्याय का नियम देती रहती हैं।

कभी-कभी यहाँ क्षेत्र पर आगत जैनेतर लोगो को धर्मोपदेश देकर उनसे मद्य मास मधु का त्याग करा देती हैं और उन्हे माताजी द्वारा लिखित जीवनदान आदि पुस्तको को पढ़ने की प्रेरणा देती रहती हैं।

जम्बूद्वीप रचना में सहयोग

रत्नमती माताजी का स्वास्थ्य पित्त प्रकोप की बहुलता से युक्त है। अतः इन्हें यहाँ जम्बूद्वीप स्थल पर चारों तरफ खुला स्थान होने से गर्मी के दिन मे गर्मी की लू लपट की अधिक बाधा होती है, सर्दी में यहाँ रात्रि मे खुले मे पानी रख देने से वह बर्फ बन जाता है ऐसे सर्दी के दिनो मे इन्हें भी ठण्ड की बाधा बहुत ही असह्य महसूस होती है। कमरो को बन्द करके

भले ही चावल या कोदो की घास ले लेवें किन्तु उसमे भी एक साडी मात्र मे हाथ पैर ठण्डे हो जाते हैं। तथा वर्षा ऋतु मे गर्मी और डाँस, मच्छर के उपद्रव बहुत ही परेशान करते हैं। इस तरह रत्नमती माताजी यहाँ पर इन सर्दी, गर्मी, डाँस, मच्छर से परेशान हो कई बार कहती हैं कि यहाँ से अन्यत्र विहार कर छोटे-छोटे गाँवो मे चलो किन्तु सघ के कार्यकर्तागण यही चाहते हैं कि इस जम्बूद्वीप रचना के पूर्ण होने तक माताजी यही पर रहें जिससे हम लोग उनसे प्रेरणा प्राप्त कर इस निर्माण कार्य को जल्दी पूर्ण कराने मे समर्थ हो जावें यही कारण है कि रत्नमती माताजी उनकी प्रार्थना को ध्यान मे रखकर यहाँ के कष्टो को सहनकर यहाँ रह रही हैं। यह इनका इस जम्बूद्वीप रचना मे बहुत बडा सहयोग है।

आहार और पथ्य

इनका आहार बहुत ही थोडा है। मूंग की दाल के पानी मे रोटी भिगो दी जाती है। उसे ही ये लेती हैं। उसमे लौकी का उबाला हुआ साग मिला दिया जाता है। थोडी सी दलिया दूध मे मिलाकर दी जाती है और थोडा सा दूध तथा अनार का रस और कभी-कभी जरा सा पका केला बस ये ही इनके आहार हैं। इनके इतने अधिक पथ्य को देखकर कभी-कभी वैद्य भी हैरान हो जाते हैं। वे भी कहते हैं कि माताजी! आप आहार मे श्रावक जो भी देवें सो यदि आपका त्याग न हो तो ले लिया करो। मौसम में आने वाले फल आम, मौसमी आदि खिचडी चावल भी आप लिया करो किन्तु ये किसी की भी नहीं सुनती हैं। घर में भी ये अपनी सन्तानो को भी ऐसे ही बहुत कडा

पथ्य कराती रहती थी । यही कारण है कि इनके पुत्र-पुत्रियो में खाने मे जिह्वा लोलुपता नही दिखती है । आर्यिका ज्ञानमती माताजी को प्राय सब त्याग ही है । वे मात्र गेहू और चावल ये दो ही अन्न लेती हैं और रसो में मात्र दूध ही लेती हैं । फलो मे सेव, केला, अनार के सिवा सब त्याग है । इन वस्तुओं में भी प्रतिदिन सभी नही लेती हैं ।

रत्नमती माताजी की साध्वी चर्या

माताजी प्रात ३–४ बजे उठकर अपने आप स्वय महामन्त्र का जाप्य करके अपर रात्रिक स्वाध्याय में तत्त्वार्थसूत्र का पाठ-कर बाद मे मदिर जाकर देवदर्शन करके आकर सहस्रनाम, भक्तामर, त्रिलोक वदना, निर्माणकाण्ड आदि स्तोत्रो का पाठ करती हैं । अनन्तर ७ से ८ या ८ से ९ बजे तक सामूहिक स्वा-ध्याय चलता है जिसमें बैठकर स्वाध्याय सुनती हैं । अनन्तर आहार के बाद विश्राम लेती हैं । पुन मध्याह्न की सामायिक करके जाप्य करती हैं । यदि बैठने की शक्ति नही रहती है तो लेटे-लेटे जाप्य किया करती हैं । पुन २ बजे से ४ बजे तक विद्यापीठ के विद्यार्थीगण और प्राचार्य श्री यहाँ आकर माताजी के सान्निध्य मे स्वाध्याय शुरू कर देते हैं उसे सुनती हैं । अनन्तर कुछ देर शरीर की सेवा करानी पडती है । बाद मे दैवसिक प्रतिक्रमण करती हैं । पुन सायकाल में भगवान के दर्शन करके सामायिक करती हैं । रात्रि में सर्दी के दिनो में तो पूर्व रात्रिक स्वाध्याय के स्थान पर ही ये छहढाला का पाठ सुनती हैं । इन्हें छहढाला सुनने का बहुत प्रेम है जिस दिन कारणवश ये छहढाला न सुन सकें उस दिन इन्हे ऐसा लगता है कि मानो आज कुछ सुना ही नही है ।

इस प्रकार जो साधु साध्वी के २८ कायोत्सर्ग बतलाये गये हैं उन्हें ये विधिवत् करती रहती हैं। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

तीन बार देववदना (सामायिक) के २ – २ मिलकर ६, + दोनो समय के प्रतिक्रमण के ४ – ४ मिलकर ८ + पूर्वाह्न, अपराह्न, पूर्वरात्रिक और अपर रात्रिक इन चारो स्वाध्याय के प्रत्येक के ३–३ ऐसे १२ + तथा रात्रियोग प्रतिष्ठापन और निष्ठापन मे योग भक्ति सम्बन्धी १—१ ऐसे २+ ये सब मिलकर २८ कायोत्सर्गों को रत्नमती माताजी बडी सावधानी से करती रहती हैं।

यदि कदाचित् ये पित्त प्रकोप आदि से विशेष अस्वस्थ रहती हैं तो सघस्थ आर्यिकाओ द्वारा इन क्रियाओ को सुनकर विधिवत् क्रिया मे लगी रहती हैं।

इन्हे ऋषिमण्डल स्तोत्र और मन्त्र का भी बहुत प्रेम है। ये स्वय स्तोत्र का पाठ करके इस मत्र की एक माला जप लेती हैं।

जिनमदिर दर्शन की भक्ति

इनकी अस्वस्थता के कारण प्राय सघ मे चैत्यालय रहता है। फिर भी मदिर जाकर भगवान का दर्शन करके ही इन्हें सतोष होता है। आजकल पैर में सूजन आ जाने से चलने तथा सीढ़ी चढ़ने मे कष्ट होता है फिर भी चाहती हैं कि एक बार मदिर का दर्शन अवश्य हो जावे। यहाँ हस्तिनापुर में तो प्रात· और सायकल दोनो समय ही इन्हें दर्शन का योग मिल जाता है।

निरभिमानता

आर्यिका रत्नमती माताजी ने जब-जब अभिनदन ग्रन्थ की चर्चा सुनी है तब-तब रोका है तथा यही कहा है कि—

' मेरा अभिनन्दन ग्रन्थ नहीं निकालना । जो कुछ भी करना है, माताजी का करो ।"

ये कभी भी ज्ञानमती माताजी का नाम न लेकर हमेशा "माताजी" ही कहती हैं । उनको बडी मानकर सदा उन्हे सम्मान देती हैं । उन्हे दीक्षा में बडी होने से प्रथम नमस्कार करती हैं और उनके पास ही प्रतिक्रमण, प्रायश्चित आदि भी करती हैं ।

भावना

अब इस ७० वर्ष की उम्र में इनकी यही इच्छा रहती है कि मेरा सयम निरतिचार पलता रहे और साधु साध्वियो के सान्निध्य में ही मेरी समाधि अच्छी तरह से होवे । यह हस्तिनापुर तीर्थ है । यही पुण्य भूमि में मेरा अन्तिम समय पूरा हो । ये सतत यही इच्छा व्यक्त किया करती हैं । मेरी जिनेन्द्रदेव से यही प्रार्थना है कि यह आपकी भावना सफल होवे । इससे पहले आप सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर हम लोगो को अपना वरदहस्त प्रदान करती रहे, इसी भावना के साथ मैं आपको शतश नमन करता हू ।

श्रीमान् लाला छोटेलाल जी

ब्र० मोतीचन्द शास्त्री, हस्तिनापुर
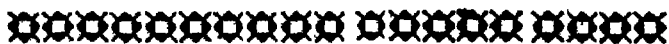
अयोध्या के निकट जिला बाराबकी के अन्तर्गत टिकैतनगर नाम का एक सुन्दर ग्राम है। यह लखनऊ शहर से २५ कोश दूर है। वहाँ पर बहुत ही सुन्दर जिनमन्दिर है जिसके सामने के मुख्य द्वार के ऊपर दो सिहराज ऐसे बने हुए हैं कि जो मानो मन्दिर के साथ-साथ सारे गाँव की रक्षा ही कर रहे हैं। इस मन्दिर का शिखर भी बहुत ऊँचा है जो कि गाँव के बाहर से ही दिखने लगता है। इसके चारो तरफ जैन श्रावको के ५०—६० घर हैं। आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व वहाँ पर स्वनाम-धन्य लाला धन्यकुमारजी रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम फूलदेवी था। इनकी जाति अग्रवाल थी और गोत्र गोयल था। ये प्रारम्भ से ही जैनधर्मी थे। ये दम्पति मदिर के निकट ही रहते थे अत इनमे धार्मिक सस्कार बहुत ही अच्छे थे। इन्होने चार पुत्र और तीन पुत्रियो को जन्म दिया था। पुत्रो के नाम क्रम से १ बब्बूमल, २ छोटेलाल, ३ बालचन्द्र, ४ फूलचन्द्र थे। पुत्रियो के नाम कुनकादेवी, रानीदेवी और प्यारीदेवी था। आज इनका परिवार वृक्ष बहुत ही हरा-भरा दिख रहा है।

पिता धन्यकुमारजी ने अपने पुत्रियो को धार्मिक पाठशाला मे ही पढाया था। ये सभी लोग प्रतिदिन प्रात. मदिर जाकर दर्शन करते थे अनन्तर ही नाश्ता लेते थे।

बब्बूमलजी—इनके बड़े पुत्र बब्बूमलजी का विवाह महमूदाबाद के लाला शिखरचन्द की बहन छुहारादेवी के साथ हुआ था। इनके एक पुत्र और पाँच पुत्रियाँ हुईं। पुत्री बिट्टोदेवी, २ पुत्र लल्लूमल (इन्द्रमल) ३ जैनमती ४ विद्यामती ५ चन्द्रमणी और ६ इन्द्रमणी।

ये बड़े भाई बब्बूमलजी कपड़े का व्यापार करते थे। इन्होंने प्रारम्भ मे गाँव के बाहर जाकर भी व्यापार किया है। सन् १९६२ मे इनका स्वर्गवास हो गया था। इनकी पत्नी छुहारादेवी ने आर्यिका ज्ञानमती के पास सन् १९७० से १९८० तक रहकर धर्म साधना की है। पाँच प्रतिमा के व्रत लेकर दानपूजन से बहुत ही पुण्य का सचय किया है।

बालचन्द्र—तृतीय पुत्र बालचन्द्रजी भी बहुत सरल प्रकृति के व्यक्ति थे। इनके तीन पुत्र और छह पुत्रियाँ हुईं। उनके नाम १ मोगादेवी, २ केतादेवी, ३ देवकुमारी, ४ शीलादेवी, ५ यशोमती, ६ अनन्तमती, ७ चन्द्रकुमार, ८ वीरेन्द्र कुमार ९ सनत्कुमार। ये सभी पुत्र-पुत्रिया भी विवाहित हैं। तथा पुत्र पौत्रो से सम्पन्न हैं। चतुर्थ भाई फूलचदजी १९ वर्ष की अविवाहित अवस्था मे ही स्वर्गस्थ हो गये थे।

बहनो में कुनकाजी सबसे बड़ी थी। ये टिकैतनगर ही विवाही थी। इनके पति का बहुत ही छोटी अवस्था में स्वर्गवास हो गया था। किंतु पुण्योदय से उस समय ये गर्भवती थी। नव महीना पूर्ण होने पर इन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम शिखरचन्द्र रखा गया। ये शिखरचन्द्र बहुत ही होनहार और धर्मात्मा रहे हैं। कुनकाजी वहाँ टिकैतनगर में बाजार वाली ?जी के नाम से ही प्रसिद्ध थीं।

दूसरी बहन रानीदेवी मोहोना में बाबूराम को ब्याही गयीं। इनके भी दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं। जिनके नाम सन्तलाल, विजयकुमार, रतनादेवी, मुन्नीदेवी और प्रवीणादेवी हैं सन्तलाल युवावस्था मे स्वर्गस्थ हो गये थे। विजयकुमार अपने परिवार समेत लखनऊ रहते हैं।

तीसरी बहन प्यारीदेवी त्रिलोकपुर मे ब्याही गयी। इनके पति का नाम अनन्त प्रसाद था। इनके भी दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं।

अब मैं आपको आर्यिका ज्ञानमती माताजी के गृहस्थावस्था के पिता श्री छोटेलालजी का परिचय कराता हू।

इन्होने बचपन मे स्कूल मे ३-४ कक्षा तक ही अध्ययन किया था कि व्यापार की रुचि अधिक होने से कपडे का व्यापार करने लगे। इन्हें जैनधर्म और अच्छे सस्कार विरासत मे ही मिले थे। ये बचपन से ही प्रतिदिन मन्दिर जाते, पानी छानकर पीते और रात्रि मे भोजन नही करते थे। पिता धन्यकुमार ने परम्परा के अनुसार इन्हें आठ वर्ष की उम्र मे ही आठ मूल गुण दिलाकर जनेऊ पहना दिया था। इन्होने व्यापारिक मूडिया भाषा अच्छी सीख ली थी। १४, १५ वर्ष की उम्र मे ही घोडा चलाना सीख गये। और दो चार साथी साथ मे मिलकर घोडे पर कपडा लाद कर टिकैतनगर के बाहर गाँवो में व्यापार करने लगे। कुछ ही दिनो मे ये कुशल व्यापारी बन गये और अपने भुजबल के श्रम से अच्छा धन कमाया।

युवा होने पर इनका विवाह महमूदाबाद के लाला सुखपाल-दासजी की पुत्री मोहिनीदेवी के साथ सम्पन्न हुआ। मोहिनीदेवी

ने अपने पिता से धार्मिक अध्ययन किया था। गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर ये दम्पत्ति धर्मध्यान पूर्वक अपना काल यापन करने लगे। इनके चार पुत्र और नव पुत्रियाँ ऐसी १३ सन्तान हुई हैं-- १ मैना, २. शांति, ३ कैलाशचन्द, ४ श्रीमती, ५ मनोवती, ६ प्रकाशचन्द, ७ सुभाषचन्द, ८ कुमुदनी, ९ रवीन्द्रकुमार, १० मालती, ११ कामिनी, १२ माधुरी और १३ त्रिशला। सबसे बडी पुत्री मैना थी जो कि आज आर्यिका ज्ञानमती माता हैं। इनकी एक पुत्री मनोवती ने भी आर्यिका दीक्षा ले ली है। पृथक् पृथक् इन सबका परिचय दिया गया है।

कैसी ही व्यापारिक व्यस्तता क्यो न हो, भले ही दिन में १२, १ बज जाय किन्तु घर में आकर मन्दिर जाकर दर्शन करके ही भोजन करते थे। घर में ही स्वाध्याय किया करते थे। अपनी बडी पुत्री मैना की प्रेरणा से स्वाध्याय की रुचि हुई थी। बाद में कभी-कभी तो शास्त्र पढते-पढते गद्‌गद हो जाते और जिस प्रकार से उन्हें बहुत आनन्द आता वह घर में भी पत्नी और बच्चों को सुनाने लगते थे।

वे अक्सर कहा करते थे---भाई! तुम चाहे धर्म कम करो, व्रत उपवास मत करो, किन्तु झूठ मत बोलो, दूसरो का गला मत काटो अर्थात् बेईमानी करके दूसरो का पैसा मत हडपो, किसी को कडुवे वचन मत बोलो, ये ही सबसे बडा धर्म है। यह धर्म ही मनुष्य की मनुष्यता को कायम रखता है। अन्यथा मनुष्य मनुष्य न रहकर पशु अथवा हैवान बन जाता है।

उन्हे यह दृढ विश्वास था कि तीर्थ-यात्रा करने से, दान देने से, मन्दिर में धन लगाने से, धार्मिक उत्सवो में बोलियाँ आदि लेने से व्यापार बढ़ता है। इसीलिये वे सदा इन कार्यों में भाग

लिया करते थे। उधर धर्मनाथ की जन्मभूमि नगरी का धर्मपुरी प्रसिद्ध है। एक बार उसकी वेदी प्रतिष्ठा के अवसर पर छोटेलाल जी ने वेदी का पर्दा खोलने की बोली ले ली। जब भगवान् विराजमान कराने का समय आया तब कु० मैना से पर्दा खुलवाया गया। मैना में धार्मिक सस्कार कुछ विशेष ही थे अत उन्होंने ज्यों ही महामन्त्र का स्मरण कर पर्दा खोला कि अकस्मात् वहाँ पर एक दिव्य प्रकाश चमक उठा। वहाँ पर खड़े हुये सभी की आँखो में चकाचौंध सा हुआ और सबने उच्चस्वर मे जय-जयकार के नारे लगाना शुरू कर दिया।

लाला छोटेलाल जी को मन्दिर की धार्मिक मीटिंगो मे भी बहुत ही प्रेम था। वे प्राय सभी मीटिंगो मे जाते और वहाँ से आकर समाज की सारी गतिविधियाँ घर मे आकर सुनाते रहते थे। तथा दूकान की भी खास बातें घर आकर मैना पुत्री को सुनाया करते थे। जब से घर में मैना ६–१० वर्ष की हुई थी तभी से ये छोटेलाल जी अपनी पुत्री मैना को अपने पुत्र के समान समझते थे यहाँ तक कि उन्होने घर की और दुकान की तिजोरी की चाबियाँ, रुपये पैसे आदि सब मैना को सभला रक्खे थे।

इन्होने जब अपना नया घर बनवाना शुरू किया तो खड़े रहकर बनवाया। पिता धन्यकुमार इनके श्रम से बहुत ही प्रसन्न रहते थे अत वे वृद्धावस्था मे अपने इन्हीं पुत्र छोटेलाल की बैठक मे रहते थे। ये भी अपने पिता की सेवा अपने हाथ से किया करते थे। सन् १९३९ मे पिता स्वर्गस्थ हुए हैं।

श्री छोटेलाल जी ने अपनी माँ के वचनो का सदा ही सम्मान

किया था। कभी भी उन्हें अपमान जनक शब्द स्वय कहना तो बहुत दूर अन्य किसी को कहने भी नही दिया था, उनके मन को भी दु ख हो ऐसा कार्य कभी नही करते थे। माँ की इच्छा के अनुसार अपनी बहनो को बुलाते रहते थे और उन्हें यथायोग्य मान-सम्मान वस्तुएं दिया करते थे। ये घर के प्रत्येक कार्यों मे तथा व्यवहार के भी हर एक कार्यों मे अपने बड भाई बब्बूमल और छोटे भाई बालचद से सलाह करके ही कार्य करते थे। इन्होने यह आदर्श अपने घर मे भाइयो के जीवित रहने तक बराबर जीवित रक्खा था। आज के युग मे प्रत्येक भाई के लिये यह उदाहरण अनुकरणीय है। इनमे एक गुण तो बहुत ही विशेष था जब उनके चार पाँच पुत्रियाँ ही थीं तभी यदि कोई भी यह कह देता कि लाला छोटेलाल जी! आपके पाँच पुत्रियाँ हैं ये एक-एक लाख की हुन्डा हैं। तो वे उसी समय चिढ जाते और नाराज होकर कहते—भाई! मेरी पुत्रियो की तुम गिनती क्यो करते हो? ये सब अपना-अपना भाग्य लेकर आई हैं इत्यादि। यहाँ तक कि अन्त मे उनके नव पुत्रियाँ होने पर भी उन्होने मन मे किंचित् सोचना तो दूर रहा किसी के मुख से भी कन्याओ के बारे मे एक शब्द भी नही सुना है। बल्कि जो लोग कन्या के जन्म से दु खी होते या चिता व्यक्त करते तो उन्हे भी समझाया ही है। वे कहते—भाई! कन्या भी एक रत्न है, अपनी सतान है उसे भार क्यो समझते हो। उसके जन्म के समय दु खी क्यो होते हो। जन्म लेते ही सब अपना-अपना भाग्य साथ लाई हैं वे किसी के भाग्य का रत्ती भर भी नही ले जायेंगी।

यह उदाहरण भी आज के माता-पिता के लिये अनुकरणीय

ही नहीं सर्वथा ग्रहण करने योग्य है। इससे कन्या का मन तो जीवन भर प्रसन्न रहता ही है साथ ही भाई-बहनों का भी आपस में जीवन भर सच्चा प्रेम बना रहता है।

यही कारण है कि आज भी उस हरे-भरे परिवार मे बहुत सी कन्यायें हैं। सबको अपने माता-पिता का प्रेम उतना ही मिल रहा है कि जितना उनके भाइयो को मिलता है। इतना ही नही कभी-कभी तो पिता छोटेलाल जी ने पुत्र से भी अधिक पुत्रियो को प्यार दिया था। पुत्रो को गलती होने पर फटकार भी देते थे किंतु पुत्रियो को स्वप्न में भी नही फटकारा था। प्रत्युत् अपना पुत्र भी यदि कदाचित् पुत्री को कुछ कह दिया तो उसे फटकार कर बहुत कुछ सुना दिया था।

मैना को जब वैराग्य हो गया और अनेक प्रयत्नो के बावजूद भी उन्होने दीक्षा ले ली तब पिता छोटेलाल जी को बहुत ही दुःख हुआ था। उसके बाद में वे साधुओ के सघ मे आते आते रहते थे किन्तु कुछ जन्मातर के सस्कार ही समझना चाहिये कि इनके सभी पुत्र पुत्रियो ने जीवन मे त्याग के लिये कदम उठाया है। उनमे जिनका पुरुषार्थ फल गया वे निकल गये और जो नही भी निकल सके वे घर मे दान, पूजा, स्वाध्याय आदि मे निरत हैं। इन पुत्र पुत्रियो के सघ मे रहने के प्रसग पर ये बहुत ही दुखी हो जाते थे। लाखो प्रयत्नो से उन्हे रोकना चाहते थे। इन्हे अपनी प्रत्येक सतान पर बहुत ही मोह था। इन सबका दिग्दर्शन आर्यिका रत्नमती जी के जीवन दर्शन में दिखाया गया है।

सन् १९६९ मे इन्हे पीलिया हो गया था जिससे काफी

अस्वस्थ रहने लगे थे। समय-समय पर आ० ज्ञानमती माताजी ने घर के सभी लोगों को यही शिक्षा दी थी कि पिता के अन्त समय उनके पास कोई रोना नही। उनकी सल्लेखना अच्छी तरह से करा देना। इस प्रकार माताजी की प्रेरणा से सभी पुत्र-वधुयें और पुत्रियाँ भी उनके पास धार्मिक पाठ भक्तामर स्तोत्र, समाधिमरण आदि सुनाया करते थे। माता मोहिनी जी ने पतिसेवा करते हुये उनकी बीमारी में अन्त समय जानकर बहुत ही सावधानी से उन्हें सबोधा था। उनकी अस्वस्थता में गाँव में आचार्य सुमतिसागर जी महाराज सघ सहित आ गये थे। मोहिनी जी ने आचार्यश्री से प्रार्थना की थी कि "महाराज जी! आप इन्हे सम्बोधन कीजिये। तब महाराज जी ने भी वहा बैठकर उन्हे सम्बोधा था कि लालाजी! तुमने आर्यिका ज्ञानमती जैसी पुत्री को जन्म देकर अपना जीवन धन्य कर लिया है, सभी यात्रायें कर ली हैं और सभी साधुओं के दर्शन करके उनका उपदेश भी सुना है, उन्हें आहार भी दिया है। अब अपने कुटुम्ब से मोह छोडकर शरीर से भी मोह छोडकर अपना अगला भव सुधार लो।" इत्यादि प्रकार से महाराज जी ने बहुत कुछ किया था। उनके सामने ऊपर मे ज्ञानमती माता जी की पुरानी पिच्छी टगी हुई थी उसे देखकर वे हाथ जोडकर नमस्कार करते थे। उनका अन्त समय निकट जान औषधि अन्न आदि का त्याग करा कर उन्हें धर्मरूपी अमृत ही पिलाया जा रहा था। उन्होंने मोहिनी जी से अपने सभी पुत्र पुत्रवधू आदि परिवार जनो से क्षमा याचना करके स्वय क्षमा भाव धारण कर लिया था।

मरण से एक घण्टे पहले उन्होंने कहा—मुझे मेरी ज्ञानमती माताजी के दर्शन करा दो। जब उन्होंने यह इच्छा कई बार व्यक्त की तब मोहिनी जी ने और कैलाशचन्द जी ने कहा कि इस समय माताजी यहाँ से बहुत दूर जयपुर मे विराजमान हैं। उन्होने आपके लिये आशीर्वाद भिजवाया है। पुनरपि जब उन्होंने कहा—मुझे मेरी ज्ञानमती माताजी के दर्शन करा दो। तब घर के लोगो ने उनके सामने एक महिला को जो कि ब्रह्मचारिणी थी, श्वेत साडी पहनी थी उसे लाकर खडी कर दी और कहा कि ये आपकी ज्ञानमती माताजी आ गई हैं। दर्शन कर लो। तब उन्होंने आँख खोलकर देखा और सिर हिलाकर धीरे से कहा "ये हमारी माताजी नही हैं।" इतना कहकर पिताजी ने आँख बन्द कर ली पुन वापस नही खोली। सभी लोग उनके पास मौजूद थे और णमोकार मन्त्र बोल रहे थे। इस प्रकार आर्यिका ज्ञानमती की स्मृति हृदय मे लेकर सभी परिवार के मुख से णमोकार मन्त्र सुनते हुए पिता छोटेलालजी ने २५ दिसम्बर १९६९ के दिवस इस नश्वर शरीर को छोड दिया और स्वर्गधाम को सिधार गये। इधर उनकी धर्मपरायणा धर्मपत्नी मोहिनी जी, सुपुत्र कैलाशचन्द आदि, पुत्रियाँ मालती, माधुरी आदि सभी इनके प्राण निकल जाने के बाद भी एक घन्टे तक णमोकार मन्त्र बोलते रहे। कोई भी वहाँ पर रोया नही। अनन्तर जब शरीर ठण्डा हो गया तब रोना-धोना चालू हुआ। सभी ने पूज्य आ० ज्ञानमती माताजी की आज्ञा को ध्यान में रखकर पिता के जीवित क्षणो तक धैर्य धारण कर णमोकार मन्त्र सुनाया। उनकी सच्ची सेवा की तथा अच्छी सल्लेखना कराकर

एक आदर्श उपस्थित किया है ।

श्रीमान् पिता छोटेलाल जी अपने इस जीवन मे सघ दर्शन, आहारदान, तीर्थयात्रा और गुरुओं के उपदेश तथा आशीर्वाद ग्रहण आदि से जो पुण्य सचित किया जाता है इसी के फल-स्वरूप उनकी अच्छी आयु बँध गई होगी । यही कारण है कि अन्त समय घर के अन्दर इतन बड़े परिवार के बीच मे रहते हुए भी उनको इतनी अच्छी समाधि का लाभ मिला है। ऐसी समाधि का योग हर किसी गृहस्थ को मिलना दुर्लभ ही है ।
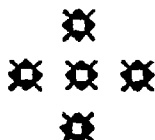
मेरी मां की पाक शुद्धि

लेखिका—कुमुदनी जैन, कानपुर

जैन धर्म मे भगवान् महावीर ने २ प्रकार के मार्ग बतलाये हैं मुनि मार्ग और गृहस्थ मार्ग। ये दोनो ही एक दूसरे के पूरक हैं अर्थात दोनो के सम्मिलन से ही मोक्ष का मार्ग साकार हो सकता है। जहाँ पूर्ण महाव्रत रूप मुनिधर्म साक्षात् मोक्ष का दिग्दर्शन कराता है वही बारह व्रत या पांच अणुव्रत रूप एक देश त्याग रूप श्रावक धर्म भी परम्परा से मोक्ष की सिद्धि कराने वाला है। अनादि काल से ये दोनो ही धर्म चले आ रहे हैं। यदि गृहस्थ न हो तो मुनिचर्या का पालन नही हो सकता तथा यदि मुनि न होते तो मिथ्यात्व अधकार मे डूबे हुये ससारी प्राणियो को सम्यक्त्व की साधना करने का अवसर न प्राप्त होता। ससार के दुःखो से भयभीत हुआ प्राणी जब शांति की खोज मे महामुनियो की शरण मे आता है तो सबसे पहले वे उसे मुनि धर्म का उपदेश देते हैं। जैसा कि पुरुषार्थ सिद्धयुपाय मे आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने कहा है—

> यो यतिधर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थधर्ममल्पमति।
>
> तस्य भगवत्प्रवचने प्रदर्शित निग्रहस्थानम्॥

अर्थात जो मुनि अपनी शरण मे आये हुए गृहस्थ को पहले मुनि धर्म का उपदेश न देकर गृहस्थ धर्म का ही उपदेश देते हैं वे जिन शासन मे दोष के भागी कहे गये हैं। क्योकि हो सकता है

वह श्रावक मुनि लिंग को ग्रहण करने का इच्छुक हो और गृहस्थ धर्म के उपदेश से वह वही तक अपने भावो को सीमित कर ले। यदि उसमे अधिक योग्यता न नजर आये तब उसके योग्य श्रावक धर्म का उपदेश देना चाहिये। जैसे किसी दूकानदार के पास जब ग्राहक पहुंचता है तो सबसे पहले वह उसको अच्छी से अच्छी वस्तु दिखाता है किन्तु जब ग्राहक अपनी असमर्थता व्यक्त करता है तब दुकानदार मध्यम या निम्न श्रेणी की वस्तु भी प्रदर्शित करता है। ग्राहक अपनी योग्यतानुसार चयन करता है। ठीक उसी प्रकार जैन धर्म की विराटता मे मनुष्य अपनी योग्यतानुसार मार्ग चयन करता है।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीनगुप्ति इन तेरह प्रकार के चारित्र रूप मुनि धर्म हैं। इसका विशेष वर्णन मूलाचार, अनगार धर्मामृत आदि से द्रष्टव्य है। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रत रूप श्रावक धर्म हैं। चूंकि श्रावक गृहस्थी मे रहता हुआ दान पूजा आदि षट्क्रियाओ को करके पञ्चसूना कार्यों को भी करता है व्यापार भी करता है। इसलिये वह पूर्ण हिंसा से विरत नही हो सकता है। अहिंसा सर्वमान्य धर्म है पर उसकी सर्वरूपेण सूक्ष्म व्याख्या जैसे भगवान् महावीर ने की वैसी अन्यत्र कही नहीं मिलती। उन्होंने एक सिद्धांत दिया, उसे स्वय अपनाया तथा औरों को उसमें प्रवृत्त किया। उससे महावीर की महानता मे अभिवृद्धि हुई। इस प्रकार महावीर के उपदेश सर्वग्राह्य बने। बाद मे चलकर व्यक्ति मे स्वार्थबुद्धि के उदय से वे भिन्न रूप हो गये यह एक पृथक् बात है।

जीवो के भेद-प्रभेद बतलाते हुये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति तथा अन्य सूक्ष्मतम जीवो के सन्दर्भ मे जो विवेचन महावीर की वाणी मे उपलब्ध है वह अत्यन्त अद्वितीय है। सूक्ष्म जीवो के बाबत जो तथ्य वैज्ञानिक आज खोज रहे हैं महावीर ने उन्हे सदियो पूर्व प्रमाणित कर दिया था। भगवान महावीर के निर्धारणो को ही जीवतता है कि आज भी जैन साधुओ का आचार इतना उच्चकोटि का है। सारे ससार मे अन्य किसी धर्म के साधु-सन्तो मे अहिंसा के प्रति इतनी उत्कट श्रद्धा नही दिख पडती। अहिंसा प्राणी मात्र को अभय बनाती है।

हिंसा के चार भेद हैं—सकल्पी हिंसा आरभी हिंसा, उद्योगी हिंसा और विरोधिनी हिंसा। आरभी, उद्योगी और विरोधी इनसे तो गृहस्थ प्राणी विरत नही हो सकता है किन्तु सकल्पी हिंसा का वह पूर्ण त्यागी होता है। तभी देशव्रती सज्ञा को प्राप्त होकर पचम गुणस्थान व्रती श्रावक कहलाता है। गृहस्थ कार्यों को करने मे भी हमे विवेक की आवश्यकता है अन्यथा स्थावर जीवो की व्यर्थ हिंसा तो होगी ही साथ मे अनेको त्रस जीवो का प्रमादवश विघात हो जाने से हम पूर्ण अहिंसक नही कहला सकते। आज हम देखते है प्राणियो को भक्ष्य अभक्ष्य का विवेक नही है। लोग आँख खोलकर खाद्य पदार्थों का अवलोकन नही करना चाहते। यह केवल आलस्य से उत्पन्न हुआ अविवेक है। मैं भी एक गृहिणी हू अत इन बातो का उल्लेख करना आवश्यक समझती हू चूंकि जिन पवित्र सस्कारो मे मेरा पालन हुआ उनमे मैं झाक कर देखती हू तो मिलता है पूज्य

माँ का असीम उपकार जो माँ आज रत्नमती माताजी के नाम से जगत् विख्यात् हैं।

जब आज से २० वर्ष पूर्व गृह कार्य के सचालन मे माँ की शोध, चतुराई, विवेकपूर्ण पाकशुद्धि को मैं देखती थी वे मुझे तभी इन कार्यों मे लक्ष्य देने के लिये आग्रह करतीं तो मुझे बडी झुझलाहट महसूस होती और मैं मन मे सोचती कि इन सब क्रिया-काण्डों मे क्या रखा है क्या इसके बिना आत्म-कल्याण नहीं हो सकता। लेकिन जब मेरी बडी बहन श्रीमती सासारिक परपरानुसार विवाह होकर ससुराल चली गई तब माँ की गृहस्थचर्या का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर आ पडा। प्रारम्भ में तो मुझे कुछ घबडाहट हुई चूँकि बडी बहन के रहते हुये मेरी इस विषय में कोई विशेष दिलचस्पी नही थी। लेकिन माँ की सेवा करना सन्तान का परम कर्तव्य होता है तथा लडकी के लिये गृहकार्य की हर क्रिया में दक्ष होना अनिवार्य होता है इस दृष्टि से भी मैंने गृह-कार्य को सभाला। मेरी शादी होने से पूर्व तक जो मेरे अनुभव रहे शायद मैंने ऐसी पाकशुद्धि आज तक कहीं नहीं देखी। मेरे अन्दर भी आज तक वे ही सस्कार हैं अत· मैं भी यथासम्भव उसी प्रकार की शुद्धि पालन करने में अपना हित समझती हू। क्योंकि एक कहावत हमेशा स्मृति में आया करती है कि "जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन"। "जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी"। अत अपने विचारो को पवित्र बनाने के लिये प्रत्येक खाद्य वस्तु की शुद्धि आवश्यक है। प्रसगोपात्त में थोडा सा इस विषय पर प्रकाश डालती हू जो कि हर कुशल गृहिणी के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

सर्वप्रथम आप दाल चावल, गेहू आदि को शोधने के कार्य मे चतुराई बर्ते गेहू के जिन दानो मे छोटे-छोटे छेद दिखा करते हैं उन्हे नाखून से कुरेद कर देखें अन्दर से छोटा सा जीव जिसे घुन कहते हैं वह निकलता है। यदि साफ किये हुए गेहू में दो चार इस प्रकार छेद वाले गेहू रह जाते हैं तो दो तीन दिन बाद उस गेहू को छलनो से छानकर देखें तो कितने ही घुन निकलेंगे तथा बहुत सारे गेहू भी छेद वाले हो जाते हैं। अत. इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि घुने गेहू या किसी भी घुने अन्न को काम मे नही लेना चाहिये। चना, मटर, लोबिया, राजमा आदि किसी भी अन्न को रात्रि मे पानी मे भिगो दीजिये सुबह साफ करते समय आप पायेंगी कि सजीव चना या मटर के ऊपर एक काला गोल निशान मिलेगा उसके छिलके को उतारने पर जीव बाहर निकल आता है। बरसात मे इन चीजो में जीव अधिक पाये जाते हैं। बाजार मे बनी हुई चीजो को खाने से इसलिये अनेकों प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाया करती है क्योंकि वहाँ बिना देखे, शोधे चीजो को पकाकर कमाई का साधन बनाया जाता है। अत घर का बना हुआ शुद्ध सात्विक और सन्तुलित भोजन ही स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद है। यह तो सूखे अन्न से सम्बन्धित शुद्धि है इसके साथ ही आप सब्जियां बनाती हैं उसमे भी शोधन क्रिया की अत्यन्त आवश्यकता है। जैसे कि सर्दी के सीजन की फलिया आती हैं उनको छीलते समय कभी आप ध्यान से देखें किन्ही-२ मटर के दानो पर बहुत सूक्ष्म छोटे-छोटे मटर के रग के ही हरे जीव चिपके नजर आयेंगे कभी-कभी वे चलने भी लगते हैं। मटर की फली मे जो मोटी लटे होती हैं वे तो आसानी

से दिख जाती हैं और उन्हें हम निकाल देते हैं किन्तु ये सूक्ष्म जीव मैं समझती हूं शायद ही कोई दृष्टिपात करता हो। अब आप प्रत्यक्ष मे ये जीव देख लेंगी तो उसके बाद किसी दूसरे के द्वारा शोधित वस्तु के प्रति आपकी ग्लानि बनी रहेगी और जब तक आप स्वय अपनी दृष्टि से उसका शोधन नही करेंगी उसे खाने की इच्छा नही हो सकती। पत्तियों के साग मे आप बथुआ पालक, मेथी, सरसो सभी कुछ प्रयोग मे लाती होगी। खास तौर से इनकी शोधन क्रिया और भी सूक्ष्म है। जैसे बथुआ को ले लें इसमे पत्तियो से मिश्रित सफेद छोटे-छोटे फूल भी होते हैं उन फूलों मे अनन्तकायिक जीव जैनागम में बताये गये हैं। बथुआ की चार पत्तियो के आस-पास ४-५ फूल तो अवश्य मिलते हैं मैंने आज तक किसी को भी फूल तोडकर बथुआ सवारते नहीं देखा। हाँ यह मैं अवश्य मानती हू कि इन कार्यों मे समय काफी नष्ट होता है किन्तु दोषास्पद अभक्ष्य वस्तुओ से तो अच्छा है कि उसके स्थान पर किसी दूसरी सब्जी का चयन किया जाये कि जिसे सरलता से अचित किया जा सके। अनन्तकायिक जीवो का ही पिण्ड गोभी को बतलाया है जिसे आज भी जैन समाज के बहुत से व्यक्ति अभक्ष्य मानकर नही खाते हैं। गोभी के फूल को सूरज की रोशनी मे जमीन पर एक बारीक सफेद कपडा बिछा-कर उस पर रख दीजिये। थोडी ही देर मे साक्षात् त्रस जीव उस कपडे पर चलते नजर आयेंगे। सूखे मसाले तैयार करत समय भी विशेष चतुराई की आवश्यकता है। जैसे कि सौंफ धनिया मे बारीक छेद या काला निशान देखने मे आता है जिन्हे टुकड़े करने पर जीव या अण्डा बाहर निकलता है। लाल मिर्ची

के टुकड़े करके देखिये कई मिर्चियों मे फफूंदी तथा जाले मिलेंगे जिनमें बारीक जीव भी पाये जाते हैं। इन्हें सूक्ष्मता से साफ किये बिना प्रयोग मे नही लेना चाहिये। अब आप स्वयं ही सोच सकती हैं कि हमे कितनी चतुराई पूर्वक गृहस्थ कार्यों का संचालन करना चाहिये। घर के पुरुष वर्गों के, बड़े बुजुर्गों के स्वास्थ्य का उत्तरदायित्व हम महिलाओ पर ही आधारित है। ये तो थोडी सी बातें मैंने बताईं जो नित्य दैनिक प्रयोग में आती हैं। कन्दमूल, आलू, गाजर, मूली, आचार, बडी, पापड आदि तो अभक्ष्य हैं ही। इनके बारे में तो आप लोग भी जानती ही होंगी। ये कुछ मेरे निजी अनुभव हैं जैसा कि मैंने माँ के गृहस्थावस्था के जीवन से पाकशुद्धि की क्रियायें सीखी हैं। साधुओ की आहार शुद्धि श्रावको के आश्रित होती है। उन्हे तो मात्र नवधा भक्ति पूर्वक जो शुद्ध प्रासुक आहार दाता द्वारा दिया जाता है वे ३२ अन्तरायो को टालकर अपने स्वास्थ्य के अनुकूल आहार करके समताभाव धारण करते हैं।

माता रत्नमती जी का स्वास्थ्य अस्वस्थ होते हुए भी आप जिस प्रकार अपने संयम में सजग हैं जिनेन्द्रदेव से यही प्रार्थना है कि पूज्य माँ श्री इसी प्रकार निर्बाध रूप से संयम की आराधना करते हुए हम सभी के ऊपर अनुकम्पा दृष्टि बनाये रखें।

वंदन अभिनन्दन है

श्री गोकुलचन्द्र "मधुर" हटा

¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤

जिनकी त्याग साधना से, पावन हो जाता मन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वदन अभिनन्दन है ।।

पावन भारत वसुन्धरा का, है इतिहास गवाही।
जिसको मिटा न पाया कोई, ऐसी अमिट है स्याही ।।
जिस नारी की शक्ति मे, सुरपति भी हिल जाता है।
रत्नमती माता जी का, चरित्र ये बतलाता है ।।
भौतिक सुख को ठोकर मारी, धन्य किया जीवन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वदन अभिनन्दन है ।।

पिछी कमण्डल आभूषण, तप माथे का सिन्दूर है।
लीनी पहिन ज्ञान की चूनर, दर्प, मोह मे दूर है ।।
शिव भर्तार मिलन का केवल, लक्ष्य रहा बस शेष है।
सासारिक सुख त्याग इसी से, धारण कीना भेष है ।।
अडिग साधना से जिनकी, काया हो गई कचन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वदन अभिवन्दन है ।।

जिन्हें वासना के बंधन ने, किञ्चित बाँध न पाया।
आत्म तपोबल से अपना, जीवन आदर्श बनाया ।।
चंदनबाला, राजुल सा, इनमें संयम का पानी।
युग युग तक युग दुहरायेगा, इनकी विशद कहानी ।।
लख संसार असार, सभी को, पहिचाना क्रन्दन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनन्दन है ।।

प्रान्त अवध का धन्य है, जिस पर माँ ने जनम लिया है।
जैन धर्म का ध्वज फहराकर, निज उत्थान किया है ।।
इसी धरा की पुण्य धरोहर, सच्चरित्र हितकारी।
गौरवशाली, महा मनीषी, मृदुभाषी सुखकारी ।।
हस्तिनापुर की माटी ये, "मधुर" हुई चंदन है।
पूज्य आर्यिका रत्नमती को, वंदन अभिनन्दन है ।।